MODERN INDIAN HISTORY

आधुनिक भारत का इतिहास

Class Notes(Hindi)

KHAN GLOBAL STUDIES

Most Trusted Learning Platform

Modern Indian History (आधुनिक भारत का इतिहास)

History of 18th Century 18वीं शताब्दी का इतिहास	Colonialism उपनिवेशवाद	Nationalism राष्ट्रवाद	India after Independence (after-1947) स्वतंत्रता उपरांत भारत(1947 के बाद)
1st half of 18th century 18वीं शताब्दी का पूर्वार्ध	Mercantile Phase (1757-1813) वाणिज्यिक चरण (1757-1813)	भारत में राष्ट्रवाद का उदय	-
2nd Half of 18th century 18वीं शताब्दी का उत्तरार्ध	Industrial Phase (1813-1858) औद्योगिक चरण (1813-1858)	आधुनिक राष्ट्रीयकरण और सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन	-
	Financial Phase (after 1858) वित्तीय चरण (1858 के बाद)	भारतीय कांग्रेस की स्थापना , नरमपंथी तथा चरमपंथी चरण (1885-1907)	-
		सूरत के विभाजन से लेकर प्रथम विश्वयुद्ध तक (1907-1914)	-
		भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव (1914-1919)	-
		भारतीय राजनीती में गाँधी जी का उदय , असहयोग आंदोलन, स्वराजी एवं परिवर्तनवादी (1919-1924)	-
		भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की प्रवृतियां (1924-1929)	-
		भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की प्रवृतियां (1929-1935)	-
		भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की प्रवृतियां (1935-1939)	-
		भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन तथा द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-1945)	-
		भारत स्वतंत्रता एवं विभाजन की ओर (1945-1947)	-

प्रश्नों से जुड़ी हुई शब्दावलियाँ एवं उनका अर्थ-विस्तार:-

1. Discuss (विवेचन कीजिए)- किसी विषय पर विभिन्न विचार एवं दृष्टिकोण पर चर्चा करते हुए फिर अपना विचार देना।
2. Explain & Elucidate (व्याख्या कीजिए)- अधिक सूचनाएँ प्रदान कर किसी तथ्य को, जिसे समझना थोड़ा कठिन है अधिक स्पष्ट करना।
3. Analyse (विश्लेषण करना)- किसी तथ्य का परीक्षण अथवा गहराई से विचार करना ताकि इसका अर्थ स्पष्ट हो जाए।
4. Criticise (आलोचना करना)- किसी भी तथ्य के अच्छे एवं बुरे पक्ष पर अपना निर्णय देना।
5. Comment (टिप्पणी करना)- किसी कथन अथवा कार्य का मूल्यांकन करना अथवा परीक्षण करना।
6. Describe (वर्णन करना)- किसी तथ्य अथवा व्यक्ति के विषय में विस्तार से लिखना ताकि उसका स्वरूप स्पष्ट हो जाए।
7. Evaluate (मूल्यांकन करना)- किसी तथ्य पर सावधानी से विचार करना तथा यह निर्धारित करना कि यह हद तक महत्वपूर्ण और उपयोगी है।
8. Do you agree? (क्या आप सहमत हैं?)- अधिकतर स्थितियों में असहमति ही जतानी होती है।
9. In the light of above statement (अमुक कथन के प्रकाश में)- आपको उस कथन की सीमा में बंध कर ही लिखना है।
10. Examine (परीक्षण कीजिए)- पाठक के लिए समान्यत: उस पहलू को उजागर करना जो वह नहीं जानता है।

8वीं कक्षा की एन.सी.ई.आर.टी. पुस्तक

- एनसीईआरटी की पुस्तकें सामाजिक विज्ञान से जुड़े हुए महत्वपूर्ण विषयों पर संक्षिप्त परंतु स्तरीय ज्ञान प्रदान करती हैं। नई एनसीईआरटी की पुस्तकें नेशनल एजुकेशनल फ्रेमवर्क (NCF), 2005 के निर्देशन पर आधारित है।
- एनसीएफ, 2005 का बल बच्चों में रटने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित कर सोचने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना है। इसका बल विभिन्न मानविकी विषयों के बीच की दीवारों अथवा घेरे को तोड़कर अंतर्अनुशासनात्मक दृष्टिकोण को प्रोत्साहन देना भी है।
- अत: एनसीईआरटी की पुस्तकें केवल ज्ञान का स्रोत ही नहीं बल्कि बच्चों में विश्लेषणपरक सोच को प्रोत्साहित करने का साधन भी है।

कैसे, कब और कहां?

- इतिहास में तिथियां क्यों महत्वपूर्ण हैं?
- इतिहास में विभाजन का आधार क्या हो? जेम्स मिल द्वारा किए जाने वाले विभाजन का दोष क्या है?
- 'औपनिवेशिक' से क्या तात्पर्य है?
- पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर 'हमारा अतीत' की जगह 'हमारे अतीत' शब्द का प्रयोग क्यों हुआ है?
- ब्रिटिश आधिकारिक रिकॉर्ड को क्यों सुरक्षित रखना चाहते थे? क्या इन रिकॉर्ड के आधार पर जनसामान्य का इतिहास लिखा जा सकता है?

व्यापार से साम्राज्य तक कंपनी की सत्ता स्थापित होती है

- किन परिस्थितियों में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी का पूर्वी व्यापार पर एकाधिकार मिला? किस कारण से इसका अन्य यूरोपीय कंपनियों से प्रतिस्पर्द्धा शुरू हुई?
- बंगाल में कंपनी ने व्यापार का विस्तार क्यों किया तथा यह किस प्रकार नवाब के साथ मतभेद का कारण बना?
- बंगाल की दीवानी से कंपनी को क्या लाभ मिला?
- ब्रिटिश कंपनी तथा मैसूर के टीपू के बीच संघर्ष के क्या कारण थे? क्या टीपू ब्रिटिश चुनौती का जवाब दे सका?
- 19वीं सदी के आरंभ में ब्रिटिश सर्वोच्च सत्ता की अवधारणा क्या थी? विभिन्न गवर्नर जनरलों ने इस नीति को किस प्रकार आगे बढ़ाया?
- किस प्रकार कंपनी का प्रशासन भारतीय शासकों के प्रशासनिक ढांचे से भिन्न था?

ग्रामीण क्षेत्र पर शासन चलाना

- बंगाल का दीवान बनने के पश्चात कंपनी ने भूमि सुधार के लिए कौन से कदम उठाए?
- राजस्व व्यवस्था की मुनरो पद्धति क्या थी तथा उसके क्या दोष थे?
- महालवाड़ी पद्धति स्थाई बंदोबस्त से किस रूप में भिन्न थी?
- किसानों को नील की खेती की ओर आकर्षण क्यों नहीं था तथा किन कारणों से बंगाल में नील की खेती का अवसान हुआ?

आदिवासी, दीकू तथा स्वर्ण युग की कल्पना

- क्या आदिवासी समूह किसी एक पेशे से जुड़े हुए थे अथवा उन्होंने अलग-अलग पेशे अपनाए थे?
- ब्रिटिश शासन ने आदिवासियों के जीवन में क्या परिवर्तन लाए?
- ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आदिवासियों ने क्या प्रतिक्रिया दिखाई?

- बिरसा ने किस प्रकार आदिवासियों को संगठित किया?

जब जनता बगावत करती है

- 1857 के महाविद्रोह में किन सामाजिक वर्गों ने भागीदारी निभाई तथा ब्रिटिश शासन के विरुद्ध उनके असंतोष के क्या कारण थे?
- किस प्रकार इसका प्रसार और भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हुआ?
- 1857 के महाविद्रोह ने ब्रिटिश नीति में क्या परिवर्तन लाए?

उपनिवेशवाद और शहर

- ब्रिटिश शासन के अंतर्गत विनगरीकरण से क्या तात्पर्य है?
- ब्रिटिश प्रशासन ने दिल्ली को किस प्रकार प्रभावित किया?

बुनकर, लोहा बनाने वाले और फैक्ट्री मालिक

- ब्रिटेन के औद्योगीकरण और भारत पर ब्रिटिश विजय और औपनिवेशिक करण का आपस में क्या संबंध था?
- इंग्लैंड के ऊन और रेशम उत्पादकों ने 18वीं सदी की शुरुआत में भारत से आयात होने वाले कपड़े का विरोध क्यों किया था?
- ब्रिटेन में सूती कपड़ा उद्योग के विकास का भारत के कपड़ा उत्पादकों पर क्या प्रभाव पड़ा?
- औपनिवेशिक शासन के दौरान स्थापित भारतीय कपड़ा कारखानों को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा?
- 19वीं सदी में भारतीय लौह प्रगलन उद्योग का पतन क्यों हुआ?
- प्रथम विश्व युद्ध का भारत के उद्योगों पर क्या प्रभाव पड़ा?
- जापान का औद्योगिकरण भारत के औद्योगीकरण से कैसे अलग था?

देसी जनता को सभ्य बनाना, राष्ट्र को शिक्षित करना

- प्राच्यवादियों ने भारतीय इतिहास, दर्शन और कानून का अध्ययन क्यों किया?
- 19वीं सदी के आरंभ के ब्रिटिश अधिकारी और प्राच्यवादी अधिकारियों के दृष्टिकोण में क्या अंतर देखने को मिलता है?
- वुड डिस्पैच क्या था?
- औपनिवेशिक शासन के दौरान स्थानीय पाठशाला में शिक्षा का स्वरूप क्या था?
- शिक्षा के विषय में महात्मा गांधी एवं रविंद्र नाथ टैगोर के विचार क्या थे? इनमें समानताएं और असमानताएं क्या थीं?

महिलाएं, जाति एवं सुधार

- 19वीं सदी के समाज की क्या विशेषताएं थी?
- 19वीं सदी के आरंभ में सामाजिक परंपराओं, रीति-रिवाजों और मूल्य मान्यताओं से संबंधित बहसों एवं चर्चाओं के स्वरूप में किस कारण से परिवर्तन आया?
- विधवाओं की जिंदगी में बदलाव लाने के लिए भारतीय समाज सुधारकों ने क्या कदम उठाए?
- स्त्री शिक्षा के लिए समाज सुधार के द्वारा किए गए कार्यों की चर्चा करें।
- औपनिवेशिक काल में जाति के विरुद्ध भारतीय सुधारकों के द्वारा आंदोलन क्यों किए गए? उनके द्वारा कौन-कौन से आंदोलन किए गए?
- अम्बेडकर ने मंदिर प्रवेश आंदोलन क्यों शुरू किया?
- ज्योतिबा फूले और रामास्वामी नायकर राष्ट्रीय आंदोलन की आलोचना क्यों करते थे? उनकी आलोचना का राष्ट्रीय आंदोलन पर क्या प्रभाव पड़ा?

दृश्य कलाओं की बदलती दुनिया

- यूरोपीय चित्रकारों ने भारतीय चित्रकला शैली में किन परिवर्तनों को जन्म दिया?
- औपनिवेशिक शासन के दौरान किन भारतीय राज्यों में दरबार में कलाकारों को संरक्षण प्रदान किया था?
- 19वीं सदी में भारत के शहरों में जन्मी नई लोक कलाओं के विषय में बताइए?
- 19वीं सदी के अंत में कला और राष्ट्रवाद के मध्य स्थापित हुए संबंध के विषय में बताइए?

राष्ट्रीय आंदोलन का संघटन : 1870 के दशक से 1947 तक

- भारत में राष्ट्रवाद के उदय में राजनीतिक संगठनों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
- भारत में राष्ट्रवाद के उदय में ब्रिटिश नीतियों की भूमिका क्या रही?
- आरंभिक 20 वर्षों तक कांग्रेस को मध्य मार्गी पार्टी क्यों माना जाता था? इन वर्षों में कांग्रेस ने किन मुद्दों को उठाया था?
- कांग्रेस में आमूल परिवर्तनवादी की राजनीति मध्यम मार्गियों की राजनीति से किस तरह भिन्न थी?
- बंगाल विभाजन का राष्ट्रीय आंदोलन पर क्या प्रभाव पड़ा?
- प्रथम विश्व युद्ध से भारत पर पड़ने वाले आर्थिक प्रभावों की चर्चा कीजिए।
- राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भूमिका के विषय में चर्चा कीजिए।
- 1937 से 47 तक की उन घटनाओं पर चर्चा करें जिनके फलस्वरूप पाकिस्तान का जन्म हुआ?
- राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गांधी की भूमिका की चर्चा करें।
- महात्मा गांधी को जनता का महात्मा क्यों कहा जाता था?

- राष्ट्रीय आंदोलन में सुभाष चंद्र बोस की भूमिका की चर्चा करें।
- राष्ट्रीय आंदोलन में भगत सिंह के योगदान की चर्चा करें।

स्वतंत्रता के बाद

- 15 अगस्त 1947 में जब भारत को स्वतंत्रता मिली तो उसके सम्मुख कौन सी चुनौतियां थी?
- संविधान सभा द्वारा निर्मित भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं के बारे में बताइए।
- भारत में सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार को अपनाना क्रांतिकारी कदम क्यों माना गया?
- संविधान सभा के द्वारा भारतीय संविधान में आरक्षण का प्रावधान क्यों जोड़ा गया?
- अंग्रेजों के भारत से जाने के पश्चात भी संविधान सभा ने अंग्रेजी भाषा को संविधान में क्यों जगह दी?
- स्वतंत्रता से पहले भाषाई आधार पर पृथक प्रांतों के गठन का समर्थन करने वाली कांग्रेस पार्टी स्वतंत्रता के बाद भाषा के आधार पर प्रांतों के गठन से क्यों सहमत नहीं थे?
- आजादी के बाद आरंभिक दशकों में देश के आर्थिक विकास के लिए उठाए गए कदमों की चर्चा करें।
- स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक हम संविधान द्वारा तय किए गए आदर्शों को किस हद तक साकार कर पाए हैं?
- गुटनिरपेक्षता
- भारत में भाषा के आधार पर राज्यों का गठन किस प्रकार देश की एकता और अखंडता के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ? इसकी चर्चा श्रीलंका के संदर्भ में करें।

भारतीय विरासत और संस्कृति एवं आधुनिक भारत (मुख्य परीक्षा पाठ्यक्रम)

- **भारतीय संस्कृति** में प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के कला के रूप, साहित्य और वास्तुकला के मुख्य पहलू शामिल होंगे।
- **18वीं सदी के लगभग मध्य से लेकर वर्तमान समय तक** का आधुनिक भारतीय इतिहास-महत्त्वपूर्ण घटनाएँ, व्यक्तित्त्व, विषय।
- **स्वतंत्रता संग्राम**- इसके विभिन्न चरण और देश के विभिन्न भागों से इसमें अपना योगदान देने वाले महत्त्वपूर्ण व्यक्ति/उनका योगदान।
- **स्वतंत्रता के पश्चात्** देश के अंदर एकीकरण और पुनर्गठन।

भारतीय इतिहास का विभाजन

- सर्वप्रथम जेम्स मील ने 19वीं सदी में भारतीय इतिहास का अध्ययन किया तथा उसे हिन्दू, मुस्लिम एवं ब्रिटिश काल में बाँटा। इस प्रकार उसने भारतीय इतिहास का साम्प्रदायीकरण किया।
- आगे राष्ट्रवादी लेखकों ने नामकरण को बदलकर यूरोपीय मॉडल पर प्राचीन काल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल का नाम दिया। परंतु विभाजन का आधार पूर्ववत् ही बना रहा, यथा- तुर्की शासन की स्थापना के साथ मध्ययुग तथा प्लासी के युद्ध के साथ आधुनिक युग का आरंभ।
- 1960 तथा 1970 के दशक में मार्क्सवादी लेखकों ने पूर्व-मध्यकाल की अवधारणा दी तथा उसका काल निधरिण सामंतवाद के उद्भव के साथ 750 ई. से 1200 ई. के बीच किया।
- 1980 तथा 1990 के दशक में संशोधनवादी विद्वानों ने एक पूर्व आधुनिक काल की अवधारणा दी है तथा उसकी शुरूआत प्लासी के युद्ध से बहुत पहले मानी है।
- **अतः भारत के इतिहास का विभाजन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है:**
  - प्राचीन काल
  - पूर्व मध्यकाल
  - मध्यकाल
  - पूर्व आधुनिक काल
  - आधुनिक काल

आधुनिक काल

आधुनिक काल के इतिहास को निम्नलिखित खण्डों में बाँटकर अध्ययन किया जा सकता है-

1. 18वीं सदी का इतिहास
2. उपनिवेशवाद
3. राष्ट्रवाद
4. स्वतंत्रता के उपरांत भारत

18वीं सदी का इतिहास

इसे हम दो भागों में बांटकर देखेंगे -

1. 18वीं सदी के पूर्वार्द्ध
2. 18वीं सदी का उत्तरार्द्ध

18वीं सदी का पूर्वार्द्ध

इस काल के अध्ययन में हमारा बल निम्नलिखित पहलुओं पर होगा -

1. मुगल साम्राज्य का पतन तथा क्षेत्रीय राज्यों की स्थापना।
2. मराठे मुगल साम्राज्य को स्थापित करने में क्यों विफल रहे?
3. 18वीं सदी के पूर्वार्द्ध के काल को पतन अथवा अवनति का काल माना जाये अथवा प्रगति या नयी संभावनाओं का काल माना जाये।

मुगल साम्राज्य के विघटन के पश्चात् भारत का राजनीति परिदृश्य?

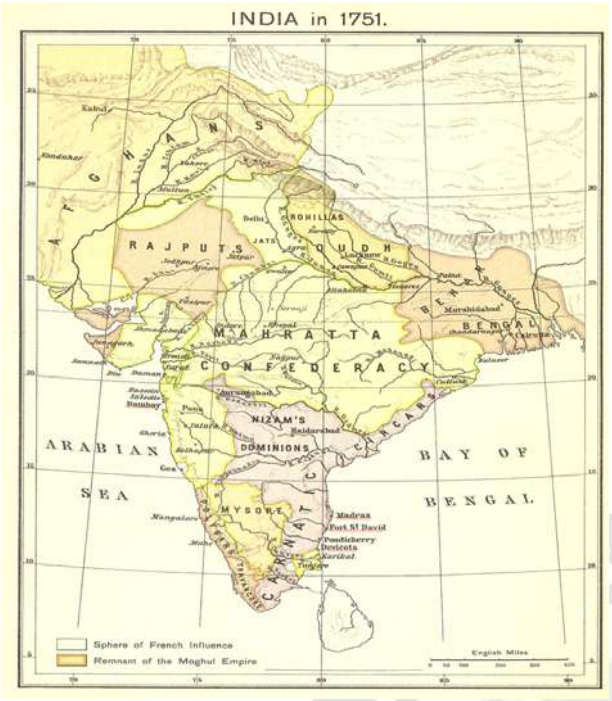

मुगल साम्राज्य के विघटन के पश्चात् अनेक क्षेत्रीय राज्य स्थापित हुए; इन्हें निम्नलिखित उपसमूह में बाँटकर देख सकते हैं -

1. उत्तराधिकारी राज्यः-

- इन राज्यों के संस्थापक पुराने मुगल अधिकारी थे इन्होंने मुगल साम्राज्य की कमजोरी का लाभ उठाकर स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर ली थी। इन्हें हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं -
- **बंगाल** :- स्वतंत्र बंगाल राज्य का संस्थापक मुर्शिद कुली खान था, जो 1780 में बंगाल के दीवान के पद पर नियुक्त हुआ था, परंतु औरंगजेब की मृत्यु का फायदा उठाकर उसने बंगाल के सूबेदार का पद भी ग्रहण कर लिया। अतः उसे नवाब कहा गया।
- 1727 ई. में उसका उत्तराधिकारी उसका दामाद शुजाउद्दीन (1727-1739 ई.) हुआ। फिर उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र सरफराज खान (1739-40 ई.) हुआ। सरफराज खान को मारकर अलीवर्दी खान ने 1740 ई. में गद्दी प्राप्त कर ली और 1756 ई. तक शासन किया।
- **अवध** :- 1722 ई. तक 'सआदत खान' नामक मुगल वजीर ने इसे व्यावहारिक रूप में स्वतंत्र बना दिया। 1739 ई. में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी सफदरजंग हुआ, उसे मुगल-वजीर का पद मिला। अतः अवध के नवाब को 'नवाब-वजीर' कहा गया। सफदरजंग का उत्तराधिकारी शुजाउद्दौला हुआ जिसने बक्सर के युद्ध में हिस्सा लिया।
- **हैदराबाद** :- स्वतंत्र हैदराबाद राज्य का संस्थापक निजाम-उल-मुल्क था। 1722 ई. और 1724 ई.के बीच वह मुगल वजीर के पद पर रहा, परंतु आगे वह असंतुष्ट होकर 1724 ई. में हैदराबाद चला गया तथा वहाँ स्वतंत्र राज्य बना लिया।

2. विद्रोही राज्य :-

- **सिख राज्यः**- सिख पंथ गुरूनानक के द्वारा एक शांतिपूर्ण पंथ के रूप में स्थापित किया गया। इसमें आरंभ से ही दो कारणों से सामूहिकता की भावना मजबूत हो गई थी-
  1. संगत लगाना।
  2. लंगर छकना (सामूहिक भोज)
- आगे जब मुगल साम्राज्य से इसकी टकराहट हुई, तो फिर यह सैनिकीकरण की ओर मुड़ गया। आगे गुरू गोविंद सिंह ने खालसा की स्थापना कर सिख पंथ को एक मजबूत सैन्य संगठन में बदल दिया, परन्तु न तो गुरू गोविंद सिंह और न ही उनके शिष्य बंदा बहादुर, सिख राज्य को स्थापित कर सके।
- आगे 1761 ई. में पानीपत के तृतीय युद्ध से उत्पन्न खालीपन को भरने के क्रम में 1764 में अमृतसर में एक स्वतंत्र सिख राज्य की स्थापना हुई। आगे रंजीत सिंह के अंतर्गत सिख राज्य भारत की प्रमुख शक्ति बन गया।
- **मराठा राज्य** :- मराठे महाराष्ट्र के जमींदार थे, उन्हें राज्य के रूप में संगठित करने का काम 1774 ई. में शिवाजी ने किया था। शिवाजी ने एक मराठा राज्य की स्थापना की। उसने पेशवाओं के अधीन एक बड़े साम्राज्य का रूप ले लिया। परंतु पेशवा बालाजी बाजीराव के काल तक एक मराठा परिसंघ अस्तित्व में आ चुका था। इसके केन्द्र में पूना का पेशवा था तथा इसके अन्य घटक ग्वालियर के सिंधिया, इंदौर के होल्कर, नागपुर के भौंसले एवं बड़ौदरा के गायकवाड़ थे।
- **जाट राज्य** :- जाट सामान्यतः किसान थे तथा वे दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि एवं उसके आस-पास फैले हुए थे। उनके बीच कुछ महत्वाकांक्षी जमींदार भी थे। इन्हीं में से एक गोकुल जाट ने 1667 ई. में मुगल साम्राज्य के विरूद्ध विद्रोह किया। परन्तु इस विद्रोह को दबा दिया गया। फिर 1685 ई. में राजाराम जाट ने विद्रोह किया, इस विद्रोह को भी कुछ कठिनाईयों के बावजूद दबा दिया गया। परन्तु आगे चूड़ामन जाट एवं बदन सिंह के अंतर्गत जाट राज्य की स्थापना हो गई।
- **अफगान** :- रूहेला राज्य की स्थापना अवध के उत्तर में रूहेला अफगानों द्वारा की गई। इस राज्य से जुड़े हुए कुछ महत्वपूर्ण रूहेला सरदार नजीबुद्दौला और हाफिज अहमद खान थे।

3. मुगल साम्राज्य की परिधि के बाहर के राज्य :-

- **मैसूर** :- यह विजयनगर साम्राज्य का उत्तराधिकारी राज्य था और ओड्यार वंश का शासन था, परन्तु एक सैनिक कमांडर हैदर अली ने उसकी सत्ता छीन ली और हैदर अली तथा उसके उत्तराधिकारी टीपू सुल्तान के अधीन एक शक्शिाली मैसूर राज्य की स्थापना हुई।
- **कालीकट** :- कालीकट में जमोरिन की सत्ता स्थापित थी। यह राज्य विदेश व्यापार के लिए प्रसिद्ध था।
- **त्रावणकोर** :- केरल क्षेत्र में त्रावणकोर, मार्तण्ड वर्मा एवं राम वर्मा के अधीन एक महत्वपूर्ण राज्य के रूप में स्थापित हुआ। मार्तण्ड वर्मा को यह श्रेय जाता है कि उसने डचों को पराजित कर भारत से बाहर खदेड़ दिया।

18वीं शताब्दी का विवाद

इस युग को अंधकार युग के रूप में चित्रित करने के आधार–

1. इस अवधि (18वीं सदी का पूर्वार्द्ध) को राजनीतिक विघटन के काल के रूप में चिह्नित किया जाता है।
2. इसे आर्थिक विघटन का काल भी समझा जाता था।

परंतु अंधकार युग की धारणा को निम्नलिखित आधार पर अस्वीकृत कर दिया गया–

1. यद्यपि मुगल साम्राज्य विघटित हो रहा था परंतु उत्तराधिकारी राज्य और साथ ही साथ कुछ अन्य राज्य अपने संबंधित राज्य क्षेत्र में कुशल सरकार प्रदान कर रहे थे।
2. यहाँ तक कि आर्थिक मोर्चे पर भी इसे निम्नलिखित कारणों से विघटन के काल के रूप में नहीं देखा जाना चाहिये–

- यूरोपियन कंपनियों की भूमिका के कारण व्यापार का विस्तार हुआ था।
- नकदी फसलों के उत्पादन में विस्तार हुआ था।

प्रश्नः मराठे, मुगल साम्राज्य को विस्थापित कर भारत को एक वैकल्पिक साम्राज्य देने में क्यों विफल रहे हैं?

उत्तरः मराठा राज्य का दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर तेजी से विस्तार हुआ, एक समय ऐसा आया कि यह एक अखिल भारतीय आकार लेता प्रतीत हुआ। फिर ऐसा लगने लगा कि यह मुगल साम्राज्य का विकल्प दे सकेगा, परन्तु अपनी संस्थागत कमजोरी या संस्थागत दुर्बलता या नीतिगत कमियों के कारण यह साम्राज्य बनाने में विफल हो गया। इसे निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है–

1. मराठा परिसंघ का सामंती चरित्र :- मराठा परिसंघ के केन्द्र में पेशवा था तथा उसके इर्द-गिर्द अन्य घटक सिंधिया, गोखले, होल्कर तथा गायकवाड़ थे। धीरे-धीरे इनकी शक्ति एवं महत्वाकांक्षा बढ़ती गई तथा केन्द्रीय शक्ति कमजोर पड़ने लगी।

2. कमजोर वित्तीय आधार :-चूंकि मराठा राज्य का वित्तीय आधार कमजोर था। इसलिए अतिरिक्त आमदनी के लिए वे चौथ एवं सरदेशमुखी पर निर्भर हो गये। इस कारण मराठा राज्य का चरित्र सैनिक एवं सामंती हो गया।

3. मराठा राज्य के द्वारा आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहन नहीं– रोमन साम्राज्य की तरह मराठा साम्राज्य भी बाहर से प्राप्त धन पर निर्भर बना रहा। इसने कृष्णा-तुंगभद्रा दोआब एवं गंगा-यमुना दोआब के उपजाऊ भू-भाग पर प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित कर कृषि के विकास में रूचि नहीं दिखाई।

4. संकट के समय भी मराठा सरदार संयुक्त मोर्चा बनाने में विफल रहे। इसका ज्वलंत उदाहरण है पानीपत का तृतीय युद्ध।

प्रश्नः सुस्पष्ट कीजिए की मध्य 18वीं सदी का भारत विखंडित राजतंत्र की छाया से किस प्रकार ग्रसित था? (150 शब्द, यूपीएससी 2017)
अथवा क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

उत्तरः 18वीं सदी के मध्य में भारत के राजनीतिक परिदृश्य का महत्वपूर्ण लक्षण था बहुराज्यीय व्यवस्था का उद्भव। यह वह काल था जब एक तरफ शक्तिशाली मुगल साम्राज्य विघटित हो गया था तथा अनेक छोटे-छोटे क्षेत्रीय राज्य स्थापित हो चुके थे। इन राज्यों को हम दो समूह में बाँटकर देख सकते हैं :-

1. उत्तराधिकारी राज्य
2. विद्रोही शक्तियों द्वारा स्थापित राज्य

पहले समूह में हम अवध, बंगाल, हैदराबाद जैसे राज्यों की गणना कर सकते हैं। ये राज्य स्वयं मुगल अधिकारियों के द्वारा स्थापित किये गये थे। उदाहरण के लिए, बंगाल में मुर्शिद कुली खान, अवध में सआदत खान एवं हैदराबाद में निजाम-मुल-मुल्क आदि।

इसी प्रकार विद्रोही राज्य में हम सिक्ख राज्य, मराठा राज्य, जाट राज्य एवं अफगान राज्य की गणना करते हैं। इन राज्यों की स्वतंत्रता के बाद मुगल साम्राज्य महज नाम का रह गया था। उसकी वास्तविक संप्रभुता समाप्त हो चुकी थी। सबसे बढ़कर इन राज्यों के बीच प्रतिस्पर्द्धा एवं वैमनस्या थी। इसका लाभ ब्रिटिश कंपनी ने उठाया, अपितु उनके बीच व्याप्त अनेकता से फायदा उठाते हुए कंपनी ने अपने को राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित कर लिया।

इस प्रकार, उपर्युक्त आधार पर यह हम ऐसा कह सकते हैं कि अठारहवीं सदी का भारत विखण्डित राजतंत्र की छाया से ग्रसित था।

18वीं सदी का उत्तरार्द्ध

इस काल की विशेषता है भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों की गतिविधियाँ, उनका आपस में तथा भारतीय राज्यों के साथ संबंध तथा ब्रिटिश कम्पनी का व्यापारिक कम्पनी से राजनीतिक शक्ति के रूप में ढलना।

भारत में यूरोपीय कम्पनियों का आगमन

1. पुतर्गाली कम्पनी :-

- पुर्तगालियों ने भारत में वैकल्पिक मार्ग की खोज के पश्चात् भारत में अपने व्यापार का विस्तार किया। सर्वप्रथम उन्होंने कोच्चि (केरल) में एक किला बनवाया तथा 1505 में गवर्नर का पद स्थापित किया। पहला गवर्नर डी-अल्मीडा बना फिर आगे चलकर उसका उत्तराधिकारी अल्बुकर्क हुआ।
- 1509 में पुर्तगीजों ने ओरमुज पर कब्जा कर लिया। 1510 में उन्होंने गोवा को जीत लिया। फिर उन्होंने भटकल नामक स्थान पर किले बनवाये। पुर्तगीजों ने ओरमुज से लेकर मलक्का तक एक बड़े सामुद्रिक साम्राज्य की स्थापना की तथा उसे 'एस्तादो द इण्डिया' कहा। सबसे बढ़कर पुर्तगीजों ने एशिया में खुले समुद्र नीति का उल्लंघन किया और एक नयी व्यवस्था कायम कर दी जिसे कार्तेज पद्धति का नाम दिया जाता है। पुर्तगीजों की मुख्य रूचि मसाला व्यापार में रही थी।

2. डच एवं ब्रिटिश कम्पनी :-

- जब 17वीं सदी के आरम्भ में डच एवं ब्रिटिश का आगमन हुआ तो पुर्तगीजों का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त हो गया। आरम्भ में, डच की ही तरह ब्रिटिश कम्पनी भी मसाला व्यापार के उद्देश्य से आई थी। बाद में ब्रिटिश और डच कम्पनी के बीच लम्बा संघर्ष चला।
- ब्रिटिश ने 1622 तक ओरमुज का क्षेत्र पुर्तगीजों से छीन लिया और फिर ओरमुज से लेकर बंगाल की खाड़ी तक के व्यापार पर उसका कब्जा हो गया जबकि बंगाल की खाड़ी से मलक्का तक के व्यापार पर डचों का नियंत्रण रहा। ये कम्पनियाँ नई पीढ़ी की कम्पनियाँ थीं। इनकी पहचान ज्वाईन्ट स्टॉक कम्पनी के रूप में की जाती। ये आधुनिक प्रकार की कम्पनियाँ थी जिनका प्रबंधन भी प्रोफेशनल होता था।
- जहाँ पुर्तगाली कम्पनी की मुख्य रूचि मसाला व्यापार में रही थी वहीं डच एवं ब्रिटिश कम्पनियों ने भारत के सूती वस्त्र एवं रेशमी वस्त्र के लिए क्रमशः दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा यूरोप में एक बड़ा बाजार कायम किया। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश एवं डच कम्पनियाँ नील, अफीम, शोरा आदि का भी निर्यात करती थीं। उन्होंने भारत से निर्यात व्यापार को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया जिसे 'व्यापारिक क्रान्ति' के नाम से जाना जाता है।

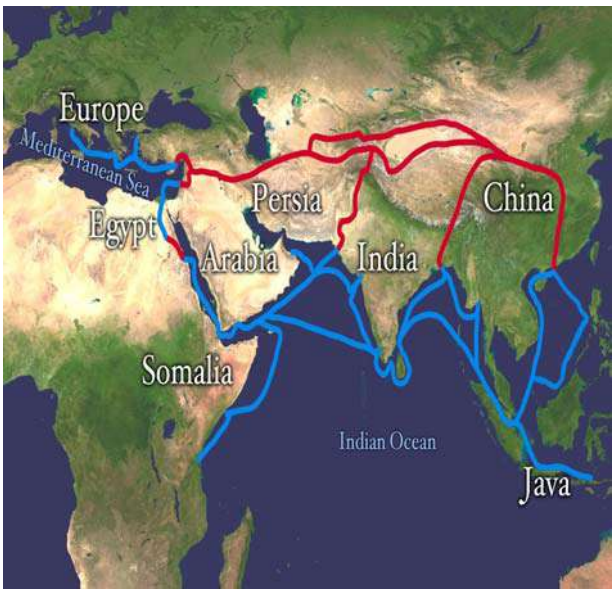

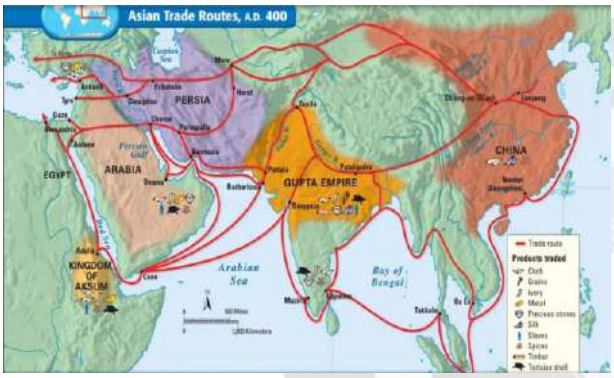

3. फ्रांसीसी कम्पनी :-

- फ्रांसीसी कम्पनी की स्थापना 1664 ई. में हुई थी। वह सबसे बाद में भारत में आई तथा 1668 में पहली फैक्ट्री सूरत में स्थापित की। फिर उसकी फैक्ट्री मसुलीपट्टम् तथा आगे पांडिचेरी तथा अन्य क्षेत्रों में स्थापित हुई। सबसे दिलचस्प तथ्य यह है कि फ्रांसीसी कम्पनी सबसे विलम्ब से आई थी लेकिन ब्रिटिश कम्पनी को सबसे अधिक चुनौती फ्रांसीसी कम्पनी से मिल रही थी। इसके निम्नलिखित कारण थे –

1. फ्रांस यूरोप में एक बड़े एवं शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में स्थापित था तथा वैश्विक साम्राज्य के निर्माण के मोर्चे पर ब्रिटिश कम्पनी को सशक्त चुनौती दे रहा था।
2. भारत में जिस प्रकार ब्रिटिश कम्पनी को ब्रिटिश सरकार का समर्थन प्राप्त था, उसी प्रकार फ्रांसीसी कम्पनी को भी फ्रांसीसी सरकार का समर्थन प्राप्त था क्योंकि भारत में ब्रिटिश एवं फ्रांसीसी कम्पनी के बीच होने वाला संघर्ष एक वैश्विक संघर्ष का हिस्सा था।

भारत में ब्रिटिश शासन की नींव

ब्रिटिश कंपनी ने वाणिज्यिक गतिविधियों से राजनीतिक शक्ति अर्जित करने की ओर कदम क्यों बढ़ाया?

1. भारत में व्यापार करने के लिये आवश्यक पूँजी जुटाने के उद्देश्य से कंपनी भारत में अतिरिक्त संसाधनों की अधीरता से तलाश कर रही थी।
2. ब्रिटिश कंपनी भारतीय व्यापार से अन्य यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों को समाप्त करना चाहती थी।

कर्नाटक युद्ध

कर्नाटक युद्ध महज ब्रिटिश कम्पनी एवं फ्रांसीसी कम्पनी के बीच का संघर्ष नहीं बल्कि यह ब्रिटिश साम्राज्य और फ्रांसीसी साम्राज्य के बीच का भी संघर्ष था। इसलिए इस युद्ध ने भारत में फ्रांसीसी कम्पनी के साथ फ्रांस के वैश्विक साम्राज्य के भविष्य का भी निर्णय कर दिया।

कर्नाटक युद्ध के लिए एक से अधिक कारक उत्तरदायी थे ये इस प्रकार हैं –

1. ये युद्ध यूरोपीय प्रश्न से जुड़े हुए थे।
2. ये युद्ध फ्रांसीसी एवं ब्रिटिश कम्पनी की राजनीतिक महत्वाकांक्षा से भी जुड़े हुए थे।
3. कर्नाटक युद्ध का एक उद्देश्य फ्रांसीसी एवं ब्रिटिश कम्पनी के द्वारा दक्षिण के व्यापार पर नियंत्रण स्थापित करना था।

प्रथम कर्नाटक युद्ध (1744-48 ई.) :-

- यह यूरोप में ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकार के मुद्दे पर आरंभ हुआ था। यह युद्ध भारत में दोनों कम्पनियों के बीच अनिर्णित रहा था।
- यह विशेषकर सेंट टॉमे के युद्ध के लिए प्रसिद्ध है जिसने भारतीयों की तुलना में यूरोपीय युद्ध तकनीकी की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी।

द्वितीय कर्नाटक युद्ध (1749-54 ई) :-

- यह युद्ध यूरोपीय कंपनियों की महत्वाकांक्षा के कारण आरंभ हुआ था क्योंकि इन कंपनियों के द्वारा हैदराबाद और कर्नाटक के मामले में हस्तक्षेप किया गया था। इस युद्ध के परिणामस्वरूप हैदराबाद पर फ्रांसीसी कंपनी तथा कर्नाटक पर ब्रिटिश कंपनी का वर्चस्व हो गया।

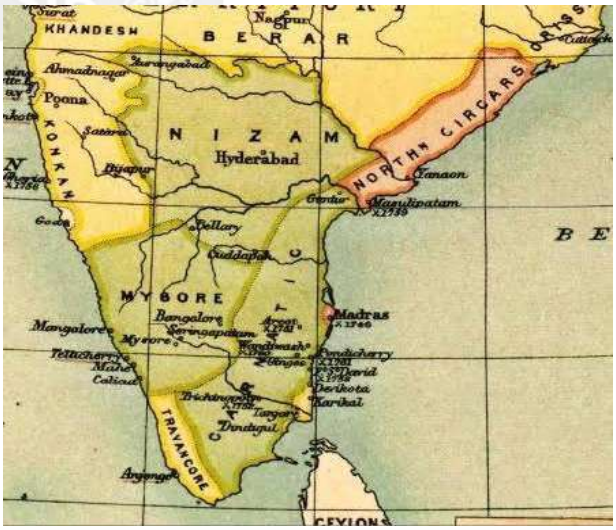

तृतीय कर्नाटक युद्ध (1758-63 ई) :-

- तृतीय कर्नाटक युद्ध भी यूरोपीय प्रश्न के साथ आरम्भ हुआ था क्योंकि यह युद्ध यूरोप में हो रहे सप्तवर्षीय युद्ध का हिस्सा था। इस युद्ध में डुप्ले जैसे एक दूरदर्शी अधिकारी की अनुपस्थिति एवं फ्रांसीसी सरकार के अत्यधिक हस्तक्षेप के कारण फ्रांसीसी कम्पनी की स्थिति कमजोर हो गई और अन्ततः 1760 के वांडीवाश के युद्ध में फ्रांसीसी कम्पनी निर्णायक रूप से पराजित हो गयी। अतः भारत में अपने राजनीतिक वर्चस्व स्थापित करने का उसका सपना समाप्त हो गया।
- उधर यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध के समय ब्रिटिश साम्राज्य के हाथों फ्रांसीसी साम्राज्य की हार ने फ्रांस को एक वैश्विक साम्राज्य स्थापित करने का सपना चकनाचूर कर दिया क्योंकि इस युद्ध में फ्रांस की हार के कारण उसके हाथों से एक तरफ कनाडा तथा दूसरी तरफ भारत जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र निकल गया।

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना

ब्रिटिश सफलता के कारण–

- ब्रिटिश कंपनी व्यावसायिक रूप से अधिक पेशेवर और सफल थी।
- फ्राँसीसी कंपनी के विपरीत ब्रिटिश कंपनी एक ज्वाइन्ट स्टॉक कंपनी थी, इसलिये इसमें सरकार का अनुचित हस्तक्षेप कम था।
- ब्रिटिश कंपनी को सक्षम अधिकारियों, जैसे- क्लाइव और सर आयरकूट की सेवा मिली।
- बंगाल के संसाधनों ने ब्रिटिश कंपनी को लाभान्वित किया।

यूरोपीय कंपनियों के आगमन का क्रम :-

- **पुर्तगाल-डच-ब्रिटिश-डेनिश-फ्रांसीसी**

प्रश्नः कर्नाटक युद्ध ने ब्रिटिश एवं फ्रांसीसी कम्पनी का भारत के अंदर ही नहीं बल्कि भारत के बाहर भी ब्रिटिश एवं फ्रांसीसी साम्राज्य के भविष्य का फैसला कर दिया। परीक्षण कीजिए।

उत्तरः यद्यपि कर्नाटक युद्ध भारत में लड़ा गया था परंतु इसकी जड़ भारत से बाहर यूरोप में थी। यह युद्ध उस संघर्ष का हिस्सा था जो ब्रिटेन और फ्रांस के बीच वैश्विक साम्राज्य के लिए लड़ा जा रहा था। इसलिए भारत में फ्रांसीसी कम्पनी का भविष्य फ्रांसीसी साम्राज्य के भविष्य पर निर्भर करता था।

भारत में फ्रांसीसी गवर्नर डुप्ले ने फ्रांसीसी कम्पनी को व्यापारिक गतिविधियों से राजनीतिक वर्चस्व की दिशा में मोड़ दिया था। इस नीति की अभिव्यक्ति द्वितीय कर्नाटक युद्ध में तब हुई जब डुप्ले ने हैदराबाद एवं कर्नाटक के राज्य पर फ्रांसीसी नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। परंतु फ्रांसीसी सरकार के अनावश्यक हस्तक्षेप तथा ब्रिटिश कम्पनी के चुस्त प्रबंधन एवं बेहतर संसाधन के कारण कम्पनी पिछड़ गई तथा फिर वांडीवाश का युद्ध (1760 ई.) हार जाने के बाद साम्राज्य-निर्माण का इसका स्वप्न चूर हो गया।

दूसरी तरफ, स्वयं फ्रांसीसी साम्राज्य भी ब्रिटिश साम्राज्य से पिछड़ गया था। इसका कारण था ब्रिटिश सरकार की संरचना तथा ब्रिटेन की व्यावसायिक सफलता। अंत में सप्तवर्षीय युद्ध हारने के पश्चात् फ्रांस ने अमेरिकी महाद्वीप में कनाडा एवं एशिया में भारत को खो दिया।

इस प्रकार कर्नाटक युद्ध ने फ्रांसीसी कम्पनी एवं फ्रांसीसी साम्राज्य दोनों के स्वप्न को एक साथ चूर कर दिया।

प्रश्नः क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि सरकारी हस्तक्षेप ने भारत में ब्रिटिश कम्पनी के समानान्तर फ्रांसीसी कम्पनी की विफलता को सुनिश्चित कर दिया? अपने मत के पक्ष में उत्तर दीजिए।

उत्तरः- 18वीं सदी का कर्नाटक युद्ध भारत में ब्रिटिश कम्पनी एवं फ्रांसीसी कम्पनी तथा भारत से बाहर ब्रिटिश एवं फ्रांसीसी साम्राज्य के बीच राजनीतिक वर्चस्व के लिए चलने वाले एक दीर्घकालिक संघर्ष का परिणाम था।

भारत के अंदर फ्रांसीसी कम्पनी के पिछड़ जाने का एक प्रमुख कारण कम्पनी के निर्णयन की शक्ति में सरकारी हस्तक्षेप जैसा कारक अवश्य था, परंतु यही एकमात्र कारण नहीं था। फ्रांसीसी कम्पनी के योग्य संचालक डुप्ले को स्वतंत्र रूप से काम करने पर अंकुश लगाने तथा भारत में युद्ध के संचालन के लिए काउन्ट-डी-लाली को सीधे पेरिस से भेजे जाने का निर्णय फ्रांसीसी कम्पनी के लिए बहुत घातक सिद्ध हुआ परंतु इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारकों ने भी फ्रांसीसी विफलता में भूमिका निभाई।

1. फ्रांसीसी कम्पनी की तुलना में ब्रिटिश कम्पनी की बेहतर व्यावसायिक सफलता, ब्रिटिश कम्पनी को रॉबर्ट क्लाइव एवं सर आयरकूट जैसे योग्य अधिकारियों की सेवा प्राप्त होना।
2. ब्रिटिश कम्पनी को बंगाल का संसाधन प्राप्त होना।
3. वैश्विक राजनीति में ब्रिटिश साम्राज्य के साथ प्रतिस्पर्द्धा में फ्रांस का पिछड़ जाना।

इस प्रकार फ्रांसीसी कम्पनी की विफलता के लिए एक से अधिक कारक उत्तरदायी रहे थे।

बंगाल

प्लासी के युद्ध के क्या कारण थे?

प्लासी के युद्ध के एक से अधिक कारण थे। इन्हें निम्न रूप में समझा जा सकता है -

1. मौलिक कारण
2. तात्कालिक कारण

मौलिक कारण :- ये वैसे कारण थे जो बंगाल के नवाबों को आरम्भ से ही परेशान कर रहे थे। ये कारण निम्नलिखित थे -

1. नवाब मुर्शिद कुली खान के समय से ही दस्तक के दुरूपयोग का मुद्दा एक ज्वलंत मुद्दा रहा था।
2. उसी प्रकार, नवाब के दरबार में अधिकारियों की गुटबंदी तथा बंगाल के व्यापारी एवं बैंकरों का असंतोष भी कोई नया मुद्दा नहीं था।

तात्कालिक कारण:- परन्तु दो कारणों से बंगाल में स्थिति बिगड़ती चली गयी -

1. नवाब सिराजुदौला का ब्रिटिश कम्पनी से व्यक्तिगत आक्रोश था, इस कारण ब्रिटिश की ओर से की गई कोई भी गलती ने नवाब में अतिरिक्त आक्रोश पैदा कर दिया। उदाहरण के लिए, बंगाल के पूर्व नवाबों मुर्शिद कुली खाँ और अलीवर्दी खाँ, की संतुलन की नीति को उलटते हुए सिराजुद्दौला ने फोर्ट विलियम में किलेबंदी के मुद्दे पर सीधा फोर्ट विलियम पर हमला कर दिया।
2. नये नवाब में अनुभव की कमी थी जिसके कारण वह अपने दरबार की गुटबंदी को नहीं समझ सका और वहीं दूसरी तरफ ब्रिटिश कम्पनी ने इसका फायदा उठाते हुए नवाब के अधिकारियों को अपने पक्ष में कर लिया तथा युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर दी।

प्लासी के युद्ध का प्रभाव:

- कंपनी द्वारा बंगाल के नवाब पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया गया।
- कंपनी बंगाल के व्यापार के वित्तपोषण के लिये वृहद् संसाधन प्राप्त कर सकी।
- ब्रिटिश कंपनी अपने यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों को बंगाल से बाहर कर सकी।

1760 में बंगाल में नवाब का परिवर्तन:

- नवाब मीर ज़ाफर को हटाकर मीर कासिम को बंगाल का नया नवाब बनाया गया। ब्रिटिश कंपनी इस घटना को 'बंगाल क्रांति' के रूप में निरूपित करती है परंतु यह किसी भी दृष्टि से क्रांति नहीं थी।

नए नवाब और कंपनी के मध्य संघर्ष तथा बक्सर का युद्ध

- नया नवाब एक स्वतंत्र शासक की तरह व्यवहार करने के लिये दृढ़प्रतिज्ञ था–
  - उसने अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से बिहार के मुंगेर में स्थानांतरित कर ली।
  - उसने वहाँ एक गन फैक्टरी (कारखाना) भी स्थापित की।
  - उसने मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय से शासन करने में मदद मांगी।
- उसने दस्तक के दुरुपयोग पर अंकुश लगा दिया।

बक्सर के युद्ध का प्रभाव

- कंपनी व्यापारिक कंपनी से राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित हो गई।
- कंपनी का नियंत्रण केवल बंगाल पर ही नहीं बल्कि अवध और मुगल शासक शाह आलम द्वितीय पर भी हो गया।
- कंपनी ने बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के बाद भारतीय व्यापार के वित्तपोषण की समस्या को सुलझा लिया।

प्रश्न: प्लासी का युद्ध एक बड़ा युद्ध नहीं बल्कि एक बड़ा विश्वासघात था। इस कथन का परीक्षण कीजिए।

उत्तर : प्लासी का युद्ध कोई खुला संघर्ष नहीं था और न ही नवाब की सेना और कंपनी की सेना में कोई समानता थी। युद्ध भूमि में नवाब की मुख्य सेना मीर बख्शी मीर जाफर के अधीन हाथ बाँधे खड़ी थी, बस एक छोटी सी सेना ब्रिटिश से लड़ रही थी। परन्तु मीर बख्शी मीर जाफर के विश्वासघातपूर्ण सुझाव के कारण वह सेना भी शीघ्र ही ध्वस्त हो गई।

वास्तव में प्लासी के युद्ध की तुलना क्रिकेट के मैच फिक्सिंग से की जाती है जिसका परिणाम पहले से ही निश्चित था। फर्क बस इतना था की क्रिकेट में विजेता पक्ष, पराजित पक्ष को अग्रिम राशि प्रदान करता है जबकि प्लासी के युद्ध में पराजित पक्ष ही विजेता पक्ष को यह आश्वासन दे रहा था कि भविष्य में उसे खास रकम उपहार में देगा।

प्रश्न: क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि प्लासी का युद्ध एक खुला संघर्ष नहीं था, इसलिए यह एक महत्वहीन घटना है। निर्णायक युद्ध बक्सर के युद्ध को ही माना जाना चाहिए?

उत्तर: यह सही है कि प्लासी का युद्ध कोई खुला संघर्ष नहीं था। यह एक बड़ा युद्ध होने के बजाय एक बड़ा विश्वासघात था इसने कहीं भी ब्रिटिश कम्पनी की सैन्य श्रेष्ठता सिद्ध नहीं

की। क्रिकेट मैच फिक्सिंग की तरह इसका भी परिणाम पहले से ही निश्चित था। फिर यह भी सही है कि इसके पश्चात् यदि ब्रिटिश कोई भी युद्ध हार जाते तो उन लाभों से वंचित रह जाते जो उन्हें प्राप्त हुआ था।

परन्तु तस्वीर का एक दूसरा पहलू भी है, उसे भी ध्यान में रखने की आवश्यकता है। प्लासी युद्ध के कई प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ ब्रिटिश कम्पनी को प्राप्त हुए थे। ये निम्नलिखित हैं –

1. प्लासी युद्ध के पश्चात् ब्रिटिश कम्पनी को बड़ी रकम प्राप्त हुई जो कम्पनी के व्यापार में निवेशित किया गया।
2. बंगाल के व्यापार पर कम्पनी का नियंत्रण स्थापित हुआ जिसका फायदा उठाकर कम्पनी अन्य प्रतिद्वंद्वियों को बाहर कर दिया।
3. बंगाल के दस्तकारों पर ब्रिटिश कम्पनी के नियंत्रण के कारण वे सस्ती दर पर व्यापारिक वस्तुएँ प्राप्त कर सके।

इन लाभों का फायदा ब्रिटिश कम्पनी को प्राप्त हुआ और फिर सात वर्षों के पश्चात् ब्रिटिश कम्पनी आसानी से बक्सर का युद्ध जीत सकी। इसलिए प्लासी और बक्सर के युद्ध को दो पृथक युद्ध मानने के बजाय एक ही युद्ध के दो चरण मानना चाहिए।

प्रश्नः– प्लासी के युद्ध में ब्रिटिश विजय की पुष्टि बक्सर के युद्ध ने कर दी। इस कथन का परीक्षण कीजिए।

■■■

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

उपनिवेशवाद का प्रथम चरण : वाणिज्यिक चरण (1757-1813)

उद्देश्य : अधिकतम रूप में राजस्व का संग्रह करना ताकि उसका एक बड़ा भाग भारतीय व्यापार में निवेशित किया जा सके।

राजनीतिक नीति	प्रशासनिक नीति	आर्थिक नीति	सामाजिक नीति	सांस्कृतिक नीति
घेरे की नीति अर्थात् शत्रु राज्यों को मित्र राज्यों से घेरे रखना।	कुछ परिवर्तनों के साथ मुगल प्रशासनिक ढांचे को बनाए रखना।	हस्तशिल्प उद्योगों का पतन तथा धन की निकासी।	भारत के प्रचलित सामाजिक ढांचे में बदलाव का प्रयास नहीं।	प्राच्यवाद पर बल दिया जाना।

उपनिवेशवाद

उपनिवेशवाद एक ऐसी विचारधारा है जो यह मानती है कि उपनिवेश का हित मातृदेश के हित के अधीन होता है। अर्थात् मातृदेश अपने आर्थिक हित में उपनिवेश की अर्थव्यवस्था का दोहन करता है। उपनिवेशवाद का अध्ययन करते हुए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है -

1. उपनिवेशवाद का अध्ययन नीति के रूप में न करके, ढाँचे के रूप में किया जाना चाहिए अर्थात् प्रशासन में बदलाव के साथ नीति बदल जाती है, परन्तु ढाँचा वही रहता है।
2. उपनिवेशवाद का अध्ययन अंतर्विरोधों की श्रृंखला (A series of contradictions) के रूप में किया जाना चाहिए। इसे हम 'पिछड़ेपन बनाम विकास' का नाम दे सकते हैं।

- दूसरे शब्दों में, उपनिवेशवाद का स्वाभाविक परिणाम होता है गरीबी एवं पिछड़ापन, जबकि उसका अनचाहा परिणाम होता है विकास। उदाहरण के लिए, रेलवे एवं आधुनिक शिक्षा (अंग्रेजी) के विकास का तात्कालिक प्रभाव था जन सामान्य पर आर्थिक दबाव तथा शिक्षा के परम्परागत मॉडल का ध्वस्त हो जाना और लोगों के बीच निरक्षरता का प्रसार, किन्तु दूसरी तरफ रेलवे और अंग्रेजी शिक्षा ने भारत में राष्ट्रवादी चेतना को फैलाने में अपनी भूमिका निभाई।

3. उपनिवेशवाद मूलत: एक आर्थिक संबंध था परन्तु वह राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ढाँचे को भी प्रभावित करते चलता है। ब्रिटेन और भारत के संबंध औपनिवेशिक कारकों से प्रभावित रहे थे। ब्रिटेन में जो पूँजीवाद था उसने भारत में उपनिवेशवाद का रूप ले लिया तथा ब्रिटिश पूँजीवाद के अनुकूल भारत के सन्दर्भ में उसकी आर्थिक नीति बदलती रही और उसी के अनुकूल उसकी राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक नीतियों में बदलाव आया।

- **उपनिवेशवाद को हम तीन चरणों में बाँट सकते हैं-**

1. उपनिवेशवाद का वाणिज्यिक चरण (1757-1813 ई.)
2. उपनिवेशवाद का औद्योगिक चरण (1813-1858)
3. उपनिवेशवाद का वित्तीय चरण (1858 तथा उसके पश्चात्)

उपनिवेशवाद का वाणिज्यिक चरण (1757-1813 ई.)

भारत में ब्रिटिश कम्पनी की नीति रही थी अधिकतम रूप में राजस्व का संग्रह करना तथा उसका एक बड़ा भाग व्यापार में निवेश करना। अत: ब्रिटिश कम्पनी ने भारत में अपने दायित्व को सीमित रखना चाहा क्योंकि दायित्व बढ़ाने से अधिक खर्च, कम निवेश, कम बचत की समस्या होती। इसलिए इस काल में ब्रिटिश कम्पनी की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक, सभी नीतियाँ इसी उद्देश्य से प्रेरित रही हैं।

राजनीतिक नीति

यद्यपि इस काल में ब्रिटिश कम्पनी ने अपने व्यापारिक हित के संवर्द्धन के लिए युद्ध भी लड़े एवं कुछ भू-भागों का अधिग्रहण भी किया परन्तु सामान्यत: ब्रिटिश कम्पनी की नीति रही थी जहाँ तक संभव हो सके युद्ध और विलय को टालना। इसलिए इस काल में ब्रिटिश कम्पनी के द्वारा जो नीति अपनाई गई उसे 'घेरे की नीति' का नाम दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, शत्रु राज्यों को मित्र राज्यों से घेरना। सहायक संधि प्रणाली भी उसी का हिस्सा थी।

गवर्नर :-

- **रॉबर्ट क्लाइव (1765-67 ई.)**
- **वेर्लेस्ट (1767- 69 ई.) -**

प्रथम आंग्ल-मैसूर युद्ध

मैसूर राज्य एवं ब्रिटिश के बीच संघर्ष के कारण :-

1. हैदर अली के द्वारा मसाला उत्पादक मालाबार क्षेत्र पर कब्जा कर लिया गया था, जबकि ब्रिटिश की निगाह उस क्षेत्र पर थी।
2. फ्रांसीसी कम्पनी से मैसूर की मित्रता।
3. ब्रिटिश मुख्यालय मद्रास के निकट मैसूर जैसे शक्तिशाली राज्य की उपस्थिति ब्रिटिश के लिए बड़ा खतरा।

घटनाक्रम :- ब्रिटिश कम्पनी ने मराठों और निजाम को हैदर अली के विरूद्ध भड़का दिया था, परन्तु हैदर अली ने उन्हें रिश्वत देकर अपने पक्ष में कर लिया तथा फिर ब्रिटिश पर हमला कर दिया। ब्रिटिश कम्पनी दबाव में आ गई तथा 1769 ई. की मद्रास की संधि करने के लिए विवश हुई।

गवर्नर जनरल :-

- **कार्टियर (1769-1772 ई.) :-**
- **वॉरेन हेस्टिंग्स (1772-85 ई.) :-**

प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (1775-82 ई.):-

कारण :-

1. ब्रिटिश के द्वारा महाराष्ट्र के कपास उत्पादक क्षेत्र पर कब्जा करने का प्रयास।
2. कम्पनी के द्वारा पूना दरबार के उत्तराधिकार के मामले में हस्तक्षेप करना।

घटनाक्रम :- रघुनाथ राव के द्वारा 1775 ई. में बम्बई के ब्रिटिश अधिकारियों के साथ सूरत की संधि की गई। परन्तु गवर्नर जनरल वॉरेन हेस्टिंग्स को इसमें जोखिम प्रतीत हुआ और गवर्नर-जनरल ने बीच में मध्यस्थता करके बम्बई के अधिकारी तथा मराठों के बीच 1776 ई. में पुरन्दर की संधि पर हस्ताक्षर करवाया। किन्तु शीघ्र ही युद्ध पुनः प्रारम्भ हो गया और जैसा कि डर था, मराठों ने बम्बई के अधिकारियों को तेलगाँव के युद्ध में पराजित कर उन्हें बड़गाँव की संधि करने के लिए विवश किया। परन्तु वॉरेन हेस्टिंग्स ने इस संधि को नहीं माना और युद्ध को जारी रखा। अंत में, मराठे 1782 ई. में कम्पनी के साथ सालबाई की संधि करने को मजबूर हुए।

इस संधि में ब्रिटिश कम्पनी को सालसेट और एलिफेंटा द्वीप मिल गया तथा मराठों के साथ कम्पनी का 20 वर्षों की शांति का काल आरम्भ हुआ जिसका फायदा कम्पनी को मिला।

द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध (1780-1784 ई.):-

कारण :-

- 1779 ई. में ब्रिटिश कम्पनी ने फ्रांसीसी क्षेत्र माहे पर हमला कर दिया। ब्रिटिश कम्पनी के इस कदम को हैदर अली ने अपने क्षेत्र का अतिक्रमण माना।

घटनाक्रम :- 1780-82 तक इस युद्ध का नेतृत्व हैदर अली ने किया, जबकि 1782-84 तक इसका नेतृत्व टीपू सुल्तान ने किया। 1784 ई. में मंगलौर की संधि के साथ यह युद्ध समाप्त हुआ।

- **लॉर्ड कार्नवालिस (1786-93 ई.):-**

तृतीय आंग्ल मैसूर युद्ध (1790-92):-

कारण :- 1789 में टीपू सुल्तान के द्वारा त्रावणकोर के राज्य पर हमला जबकि ब्रिटिश कम्पनी इसे अपना संरक्षित राज्य मानती थी।

घटनाक्रम :- इस युद्ध में मराठे और निजाम भी ब्रिटिश कम्पनी के पक्ष में आ गये। अंत में, 1792 ई. में टीपू सुल्तान पराजित हुआ और उसे श्रीरंगपट्टनम् की अपमानजनक संधि करनी पड़ी। इस संधि के माध्यम से टीपू को अपना आधा भू-भाग गँवाना पड़ा। साथ ही उसे 3 करोड़ 30 लाख रूपये युद्ध हर्जाना के रूप में देना पड़ा। ब्रिटिश कम्पनी ने स्वयं मालाबार, डिंडीगुल, बारामहल जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया, जबकि थोड़ा सा भू-भाग अपने अन्य सहयोगियों मराठों और निजाम को भी दिया।

- **जॉन शोर (1793-98) :-**
- **लॉर्ड वेलेस्ली (1798-1805) :-** लॉर्ड वेलेस्ली फ्रांसीसी प्रसार को रोकने के लिए हिन्दुस्तान आया था। उसने अपने लक्ष्य को पाने के लिए दो प्रकार की नीति अपनाई -

1. युद्ध की नीति
2. सहायक संधि प्रणाली

युद्ध की नीति

चतुर्थ आंग्ल-मैसूर युद्ध (1799 ई.):-

टीपू सुल्तान की फ्रांसीसी कम्पनी से निकटता को देखते हुए वेलेस्ली ने सबसे पहले उसे अपना निशाना बनाया और 1793 ई. में उसके विरूद्ध मेजर स्टुअर्ट और आर्थर

वेलेस्ली को भेजा। टीपू सुलतान, श्रीरंगपट्टनम् किले में लड़ता हुआ मारा गया परन्तु उसने समर्पण नहीं किया। अब ब्रिटिश ने टीपू के मैसूर राज्य से थोड़ा सा भू-भाग निकालकर ओड्यार वंश के एक राजकुमार को देकर उसे गद्दी पर स्थापित कर दिया तथा शेष भू-भाग को ब्रिटिश क्षेत्र मद्रास में मिलाकर मद्रास प्रेसीडेंसी की स्थापना (1801 ई.) की।

द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध :-

कारण :- पहली पीढ़ी के मराठा सरदार योग्य रहे थे, परन्तु 18वीं सदी के अंत तक उनकी मृत्यु हो गई थी। अब दूसरी पीढ़ी के नेता उतने योग्य और दूरदर्शी नहीं थे। इसलिए पेशवा बाजीराव द्वितीय, दौलतराव सिंधिया और यशवंत राव होल्कर के बीच आपस में संघर्ष एवं प्रतिस्पर्धा चल रही थी। इसके परिणामस्वरूप यशवन्त राव होल्कर ने पेशवा बाजीराव द्वितीय को पराजित कर पूना पर कब्जा कर लिया। अत: अब पेशवा ब्रिटिश कैम्प में चला गया और 31 दिसम्बर, 1802 को उसने लॉर्ड वेलेस्ली के साथ बेसिन की संधि पर हस्ताक्षर किया। यह एक सहायक संधि थी। अत: मराठा परिसंघ के अन्य सदस्यों ने ब्रिटिश हस्तक्षेप के विरूद्ध प्रतिक्रिया दिखाई।

घटनाक्रम :-

ब्रिटिश के विरूद्ध सिंधिया एवं भोंसले ने मिलकर एक मोर्चा बनाया, जबकि यशवंत राव होल्कर ने एक पृथक मोर्चा बनाया वहीं गायकवाड़ निष्पक्ष रहा। दूसरी तरफ वेलेस्ली ने मराठों के विरूद्ध दो कमान बनाये -

1. उत्तरी कमान - लॉर्ड लेक
2. दक्षिणी कमान - आर्थर वेलेस्ली

1803 में युद्ध आरम्भ हो गया जो 1805 तक चलता रहा। दक्षिण में आर्थर वेलेस्ली के हाथों सिंधिया और भोंसले दोनों पराजित हुए और फिर 1803 में कम्पनी ने भोंसले के साथ देवगाँव की संधि की और सिंधिया के साथ सुर्जीअर्जन गाँव की संधि हुई। उधर उत्तर में लॉर्ड लेक ने सिंधिया की सेना को पराजित कर 1803 में दिल्ली और आगरा पर कब्जा कर लिया। इसका प्रतीकात्मक अर्थ था, मुगल बादशाह का मराठों के नियंत्रण से निकलकर ब्रिटिश नियंत्रण में आ जाना। परन्तु यशवंत राव होल्कर ने जाट शासक के साथ मिलकर अकेले युद्ध जारी रखा। अंत में, खर्चीले युद्ध से तंग आकर कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने वेलेस्ली को लंदन बुला लिया और तभी कौंसिल का एक वरिष्ठ सदस्य जॉर्ज बार्लो गवर्नर-जनरल बना और उसने 1805 में यशवंत राव होल्कर के साथ राजपुर घाट की संधि कर ली और उसी के साथ द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध समाप्त हो गया।

सहायक संधि प्रणाली तथा उसके प्रमुख प्रावधान :-

यह घेरे की नीति का ही विस्तार थी। वैसे तो इसका आरंभिक रूप डुप्ले, राबर्ट क्लाइव और कॉर्नवालिस की नीति से मिलने लगता है, लेकिन इसे औपचारिक रूप में प्रारम्भ करने का श्रेय लॉर्ड वेलेस्ली को दिया जाता है। इसके निम्नलिखित प्रावधान थे:-

1. संबंधित राज्य में एक ब्रिटिश रेजिमेंट स्थापित किया जाना था।
2. उसका खर्च संबंधित राज्य वहन करता।
3. एक ब्रिटिश रेजिडेंट (राजनीतिक परामर्शदाता) स्थापित किया जाना था और उसकी सहायता से विदेश नीति का संचालन होता।
4. बिना ब्रिटिश कम्पनी की अनुमति के किसी विदेशी को सेवा में नहीं लिया जा सकता था।
5. वैसे कम्पनी को आंतरिक मामले में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं थी, परन्तु व्यवहार में इसका उल्लंघन हुआ।

प्रश्न: 'सहायक संधि प्रणाली ने भारत में ब्रिटिश कम्पनी की सर्वोच्चता स्थापित कर दी।' इस कथन का परीक्षण कीजिए।

■ **आर्ल ऑफ मिंटो (1870-13).....**

प्रश्न:- 'ब्रिटिश उपलब्धियों में कोई भी उपलब्धि इतनी आकस्मिक एवं अनैच्छिक नहीं है जितनी ब्रिटिश की भारत विजय।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

उत्तर :- उपर्युक्त कथन ब्रिटिश साम्राज्यवादी दृष्टिकोण को दर्शाता है। ब्रिटिश साम्राज्यवादी लेखन यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि ब्रिटिश ने बेखबरी की दौर में भारत को जीत लिया। परन्तु इस कथन का परीक्षण करने पर कुछ दूसरा ही निष्कर्ष निकलता है।

यद्यपि यह सही है कि जब ईस्ट इंडिया कंपनी का गठन लंदन में हुआ और उसे पूर्वी व्यापार का चार्टर मिला था तब उसके समक्ष भारत जीतने की न कोई योजना थी और न ही कोई अनुकूल परिस्थिति, क्योंकि भारत में मुगल साम्राज्य जैसा एक बड़ा साम्राज्य स्थापित था। परन्तु निम्नलिखित कारणों से उसकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा जगी और फिर वह सैनिक विजय के लिए तैयार हो गया।

1. मुगल साम्राज्य के विघटन के पश्चात् राजनीतिक शून्य की स्थिति उत्पन्न होना।
2. कम्पनी के द्वारा लंदन से कीमती धातु के आयात के विकल्प के रूप में भारत से संसाधन प्राप्त करने का प्रयास ताकि भारतीय धन से भारतीय वस्तुओं की खरीद की जा सके।

प्लासी और बक्सर के पश्चात् बंगाल की दीवानी प्राप्त हुई और कंपनी की राजनीतिक महत्वाकांक्षा और भी बढ़

गई। फिर कभी घेरे की नीति और कभी विलय के माध्यम से कम्पनी विस्तार करती रही तथा 19वीं सदी तक ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो गया।

उपर्युक्त आधार पर यह मानना कठिन है कि ब्रिटिश ने बेखबरी के दौर में भारत को जीता था।

प्रशासनिक नीति

■ **इस काल में प्रशासनिक नीति की क्या विशेषता थी?**

ब्रिटिश कम्पनी, प्रशासनिक संरचना में कोई बड़ा बदलाव नहीं लाना चाहती थी ताकि उसका दायित्व सीमित रहे। इसलिए कम्पनी ने मुगल प्रशासनिक ढाँचे को ही कुछ परिवर्तनों के साथ बनाये रखा। अगर इस काल में कम्पनी ने सुधार में रूचि दिखाई तो केवल राजस्व व न्याय व्यवस्था में और इसका कारण था दीवानी न्याय का राजस्व न्याय से जुड़ा होना।

गवर्नरों का काल :-

रॉबर्ट क्लाइव, वेर्लेस्ट एवं कार्टियर

■ **बंगाल में द्वैध शासन प्रणाली क्या थी तथा उसका क्या प्रभाव पड़ा?**

द्वैध शासन से तात्पर्य है बंगाल के प्रशासन में कम्पनी की दोहरी भूमिका। दूसरे शब्दों में, कम्पनी का दीवानी की शक्ति पर प्रत्यक्ष नियंत्रण तथा निजामत (प्रशासन) पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित हो गया। अर्थात् प्रशासन के संचालन में ब्रिटिश कम्पनी ने एक उपनवाब के पद का सृजन किया तथा नवाब की शक्ति छीन कर उपनवाब के पद में निहित कर दी गई। परन्तु इस पद पर उसी की नियुक्ति हो सकती थी जिसकी नियुक्ति की अनुशंसा कम्पनी के द्वारा की जाती। इसका अर्थ है वास्तविक कम्पनी के पास आ गई।

उत्तरदायित्व के बिना शक्ति बड़ी खतरनाक सिद्ध हुई। इस कारण बंगाल में भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिला और इसका भयानक परिणाम था 1770 ई. के दशक का अकाल जिसमें बंगाल की लगभग 1/3 जनसंख्या नष्ट हो गई।

वारेन हेस्टिंग्स :-

■ **भू-राजस्व सुधार:-** प्रस्तावित फार्मिंग प्रणाली, अर्थात् नीलामी में उच्चतम बोली लगाने वाले को राजस्व संग्रह करने का अधिकार दिया जाने लगा।

■ **न्यायिक सुधार:-**

ज़िला फौजदारी और सिविल कोर्ट- मुस्लिम कानूनों को आपराधिक न्याय में लागू किया गया था, जबकि हिंदुओं के लिये हिंदू कानून और मुसलमानों के लिये मुस्लिम कानून बनाए रखा गया। विधि संग्रह के रूप में कोड ऑफ जेन्टू लॉज, कोलब्रुक्स डायजेस्ट आदि का संग्रह किया गया। कलकत्ता में सदर दीवानी अदालत और मुर्शिदाबाद में सदर फौजदारी अदालत स्थापित किया गया।

वॉरेन हेस्टिंग्स के द्वारा हिंदू और मुस्लिम कानूनों का संहिताकरण किया गया।

प्रश्न: यह कहना कहाँ तक सही होगा कि भारत में क्लाइव यद्यपि अंग्रेजी साम्राज्य का संस्थापक था, तो वारेन हेस्टिंग्स उसका प्रशासनिक आयोजक?

उत्तर: ब्रिटिश शासन की स्थापना एवं संगठन में राबर्ट क्लाइव एवं वारेन हेस्टिंग्स की भूमिका पर विशेष बल दिया जाता है परन्तु गौर से देखने पर यह ज्ञात होता है कि रॉबर्ट क्लाइव कम्पनी के शासन का संस्थापक था जबकि प्रशासन के संस्थापक की भूमिका वारेन हेस्टिंग्स ने निभाई।

राबर्ट क्लाइव ने कनार्टक एवं प्लासी की सफलता तथा बंगाल की दीवानी प्राप्त कर कंपनी शासन की नींव डाली किन्तु बंगाल का प्रशासन अपने हाथों में लेने का साहस नहीं दिखाया। बदले में उसने द्वैध शासन स्थापित किया। दूसरी तरफ वारेन हेस्टिंग्स ने निम्नलिखित रूप में आरम्भिक संगठनकर्त्ता की भूमिका निभाई:-

1. 1772 में द्वैध शासन समाप्त कर बंगाल का प्रशासन अपने हाथों में लिया।
2. राजस्व सुधार के क्रम में चुँगी वसूली को संगठित एवं मानकीकृत (standardised) किया।

उसी प्रकार, न्याय व्यवस्था के सुधार के क्रम में दीवानी तथा फौजदारी न्याय के लिए जिला एवं सदर अदालतों की स्थापना की तथा विधि संग्रह तैयार कराया।

लॉर्ड-कार्नवालिस :-

उद्देश्य:- भारत पर ब्रिटिश नियंत्रण को बढ़ाना।

लार्ड कार्नवालिस भारत में किन सुधारों के लिए जाने जाते हैं?

■ **भू-राजस्व सुधार : स्थायी बंदोबस्त (1793)**

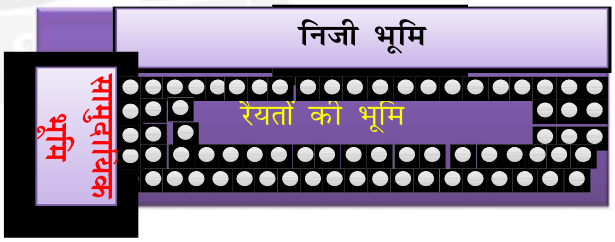

विशेषताएँ:-

■ ज़मींदारों को भूमि का स्वामी घोषित किया गया था, जबकि किसानों को अधीनस्थ रैयतों के रूप में परिवर्तित कर दिया गया था।

■ सरकार ने ज़मींदारों द्वारा देय भू राजस्व की राशि हमेशा के लिये निश्चित कर दी।

■ सूर्यास्त कानून के अंतर्गत यदि ज़मींदार अपनी बकाया राशि देय तिथि को सूर्यास्त के समय तक भुगतान नहीं कर पाता था तो ज़िला कलेक्टर द्वारा उसकी ज़मींदारी ज़ब्त

कर ली जाती थी और उसकी नीलामी कर दी जाती थी।

- यदि रैयत निश्चित समय पर भू-राजस्व की राशि का भुगतान ज़मींदार को नहीं कर पाते थे तो ज़मींदार द्वारा उसकी चल-अचल संपत्ति को नीलाम किया जा सकता था।
- सामुदायिक भूमि को ज़मींदार के निजी स्वामित्व में रखा गया था।

स्थायी बंदोबस्त का उद्देश्यः

- बंगाल में राजस्व संग्रह को स्थायी करना।
- राजस्व संग्रह को अपेक्षाकृत सरल और भ्रष्टाचार मुक्त बनाना।
- बंगाल में कृषि को बढ़ावा देना।
- बंगाल में ब्रिटिश के अनुकूल एक वर्ग तैयार करना।

मूल्यांकनः- कॉर्नवालिस अपने उद्देश्यों में केवल आंशिक रूप में सफल रहा था।

- **पुलिस सुधार** :- आधुनिक थाना प्रणाली की स्थापना।
- **न्यायिक सुधारः**- दीवानी और फौजदारी न्यायालयों का एक पदानुक्रम स्थापित किया जाना।

दीवानी अदालत

- किंग-इन-काउंसिल
- सदर दीवानी अदालत
- प्रांतीय न्यायालय
- ज़िला अदालत
- रजिस्ट्रार की अदालत
- मुंसिफ अदालत

फौजदारी अदालत

- सदर निज़ामत अदालत
- सर्किट न्यायालय
- ज़िला न्यायालय

- **सिविल सेवा** :- उसे सिविल सेवा का जनक कहा जाता है क्योंकि उसने 1793 के कार्नवालिस संहिता के आधार पर जिला कलेक्टर से न्यायिक शक्ति ले ली और उसके पास केवल राजस्व का अधिकार रहने दिया तथा उसके वेतन और अन्य सुविधाओं को बढा दिया।

प्रश्नः- स्थायी बंदोबस्त की संरचना को स्पष्ट करते हुए उसके प्रभाव को दर्शाइए?

उत्तरः- स्थायी बंदोबस्त की निम्नलिखित महत्वपूर्ण विशेषताएं थीं -

1. लॉर्ड कार्नवालिस ने जमींदार को भूमि का स्वामी और स्वतंत्र किसानों को अधीनस्थ रैयत में परिवर्तित कर दिया।
2. भूमि को विक्रय योग्य बना दिया।
3. सामुदायिक संपत्ति को जमींदार के स्वामित्व में रख दिया गया।
4. 1793 के सूर्यास्त कानून के अनुसार यह प्रावधान था कि एक निश्चित तिथि को सूर्यास्त तक जमींदार अगर भू-राजस्व नहीं चुकता करता तो उसकी पूरी जमींदारी नीलाम हो जाती।
5. उधर रैयतों के विरूद्ध जमींदार को यह अधिकार दिया गया था कि अगर एक निश्चित तिथि तक रैयत, जमींदार को भू-राजस्व की रकम चुकता नहीं करता तो जमींदार उसकी चल और अचल संपत्ति दोनों पर कब्जा कर सकता था।

प्रभाव :- बंगाल के कृषक समाज पर इसका घातक प्रभाव पड़ा। एक तरह से अगर देखा जाये तो लॉर्ड कार्नवालिस ने बंगाल के कृषक समुदाय पर एक प्रकार की सामंती व्यवस्था स्थापित कर दी।

प्रश्न : क्या बंगाल का स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था मूलतः ब्रिटिश वाणिज्यिक पूँजीवाद के हित से प्रेरित था?

उत्तरः यद्यपि स्थायी बंदोबस्त आरंभ होने के पीछे कई अन्य कारण भी उत्तरदायी थे परन्तु निश्चय ही यह वाणिज्यिक पूँजीवाद से प्रेरित था। बंगाल में ब्रिटिश वाणिज्यिक पूँजीवाद की दो प्रमुख जरूरतें थीं -

1. व्यापार में निवेश के लिए एक बड़ी रकम नियमित रूप से प्राप्त हों।
2. कम्पनी के व्यापार में वृद्धि के लिए प्रचुर मात्रा में व्यापारिक वस्तुएं उपलब्ध हों।

स्थायी बंदोबस्त ने उपर्युक्त दोनों लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया। इसके तहत ब्रिटिश कम्पनी को निवेश के लिए प्रतिवर्ष एक निश्चित रकम प्राप्त होती थी। दूसरी उम्मीद यह की गई कि चूँकि कृषि के विकास का लाभ जमींदार को मिलना था इसलिए जमींदार कृषि के क्षेत्र में निवेश करेगा। इससे व्यापारिक वस्तुओं की उपलब्धता बढ़ेगी। यह दूसरी बात है कि कम्पनी का लक्ष्य पूरा नहीं हो सका, परन्तु स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था को लागू करने का उद्देश्य वाणिज्यिक पूँजीवाद के हित को ही सुरक्षित करना था।

आर्थिक नीति

- इस काल में ब्रिटिश कम्पनी के द्वारा भारतीय अर्थव्यव्यवस्था को औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में बदल दिया गया तथा भारत से ब्रिटेन की ओर धन की निकासी का उद्भव हुआ।
- **बंगाल में हस्तशिल्प उद्योग में गिरावट**- ब्रिटिश कंपनी ने अपने व्यावसायिक एजेंटों (गुमाश्तों) के माध्यम से बंगाल के कारीगरों पर कड़ा नियंत्रण स्थापित किया।

प्रश्नः धन की निकासी से क्या तात्पर्य है?

उत्तरः धन की निकासी से तात्पर्य है आयात की तुलना में निर्यात को अधिक करके भारत से बाहर अधिशेष रकम का

हस्तांतरण। दूसरे शब्दों में, पहले ब्रिटिश कंपनी के द्वारा भारत से वस्तुओं की खरीद के बदले कम्पनी के द्वारा चाँदी और सोने के रूप में कीमती धातु दिया जाता था परन्तु बंगाल की दीवानी प्राप्त होने के पश्चात् दीवानी से वसूली कई रकम का एक बड़ा भाग ब्रिटिश कम्पनी के द्वारा व्यापार में निवेशित की जाती रही और ब्रिटेन से किसी धातु का आना लगभग बंद हो गया। इसका अर्थ था अब वस्तुएं भी भारत से और रकम भी भारत से इकठ्ठा किया जाने लगा।

सामाजिक नीति

- कंपनी ने सामाजिक मामलों में हस्तक्षेप करने में रुचि नहीं ली थी। उसने भारत में पारंपरिक सामाजिक संरचना को बनाए रखा।

सांस्कृतिक नीति

- उपनिवेशवाद के व्यावसायिक चरण की मांग सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में पारंपरिक संरचना को बनाए रखने की थी। इसलिये, इस अवधि के दौरान एक विचारधारा के रूप में प्राच्यवाद को बढ़ावा दिया गया।
- प्राच्यवाद ने भारत की प्राचीन संस्कृति का महिमामंडन किया और इस बात पर बल दिया कि यद्यपि भारतीय संस्कृति पश्चिमी संस्कृति से अलग है, परंतु उससे निम्न नहीं।
- ब्रिटिश सरकार का मानना था कि भारत पर शासन भारत की सांस्कृतिक परंपराओं के अनुसार करना चाहिये। इस चरण में मुस्लिम तथा हिंदू कानूनों के संहिताकरण का प्रयास किया गया तथा कलकत्ता मदरसा (1781), बनारस में संस्कृत कॉलेज (1791) जैसे शैक्षणिक संस्थानों की नींव रखी गई।

■■■

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

1773 के रेग्युलेटिंग अधिनियम की पृष्ठभूमि अथवा इसके कारण

1. ब्रिटिश समाज के प्रभावी वर्ग नई व्यापारी कंपनी के एकाधिकार का विरोध कर रहे थे तथा उनका मानना था कि भारत से प्राप्त आर्थिक लाभ में उन्हें भी हिस्सा मिलना चाहिए।
2. ब्रिटेन में मुक्त व्यापार के समर्थक कंपनी एकाधिकार का विरोध कर रहे थे।
3. भारत से लाए नए धन ने ब्रिटिश राजनीतिक जीवन में भ्रष्टाचार को बल प्रदान किया था क्योंकि संसद की सीटें खरीदी जाने लगी थीं।
4. **तात्कालिक कारण:**- 1772 ई० में आर्थिक घाटों से परेशान होकर ब्रिटिश कंपनी ने ब्रिटिश सरकार को कर्ज के लिए अर्जी दी। वस्तुत: ब्रिटिश संसद के लिए आश्चर्य का विषय यह था कि जब कंपनी निर्धन है तो कंपनी के अधिकारी धनी कैसे हो गए?

महत्वपूर्ण प्रावधान:-

1. इस अधिनियम के माध्यम से ब्रिटिश संसद ने पहली बार कंपनी के मामले में सीधा हस्तक्षेप किया। अर्थात प्रत्येक वर्ष कंपनी को अपने आर्थिक, वित्तीय और सैनिक विवरण ब्रिटिश संसद को प्रस्तुत करने थे।
2. लंदन में डायरेक्टर्स की संख्या 18 से बढ़ाकर 24 कर दी गई।
3. बंगाल का गवर्नर अब गवर्नर-जनरल कहा जाने लगा तथा उसे मद्रास एवं बम्बई स्थित ब्रिटिश अधिकारियों के अधीक्षण का भी अधिकार दिया गया।
4. गवर्नर-जनरल की सहायता के लिए एक चार सदस्यीय परिषद् का गठन किया गया। किसी मुद्दे पर परिषद के सदस्यों के बीच मतभेद की स्थिति में गवर्नर-जनरल को निर्णायक मत देने का अधिकार था।
5. इस अधिकार के आधार पर कलकत्ता में एक सुप्रीम कोर्ट की स्थापना हुई तथा इस कोर्ट की अधिकारिता कलकत्ता तक ही सीमित थी।

पिट्स इंडिया एक्ट, 1784

उद्देश्य (कारण):-

1. इसका एक उद्देश्य रेग्युलेटिंग अधिनियम की त्रुटियों को दूर करना तथा भारत में ब्रिटिश कंपनी की गतिविधियों पर ब्रिटिश संसद का बेहतर नियंत्रण स्थापित करना था।
2. 1783 की "पेरिस की संधि" के आधार पर ब्रिटेन ने अपने पुराने साम्राज्य (अमेरिका) को खो दिया था। अत: इस एक्ट का उद्देश्य भारत में ब्रिटेन के लिए एक नए साम्राज्य की स्थापना करना था।

महत्वपूर्ण प्रावधान:-

1. भारत में कंपनी को दोहरे नियंत्रण में रख दिया गया अर्थात "कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर" एवं "बोर्ड ऑफ कंट्रोल"। यह एक छ: सदस्यीय परिषद् थी जो ब्रिटिश संसद का प्रतिनिधित्व करती थी।
2. गवर्नर-जनरल की परिषद के सदस्यों की संख्या 4 से कम करके 3 कर दी गई, ताकि अपनी कौंसिल के समानांतर गवर्नर-जनरल की स्थिति अधिक मजबूत हो।
3. मद्रास और बम्बई स्थित ब्रिटिश क्षेत्रों को बंगाल के अधीक्षण में लाया गया था। युद्ध, कूटनीति एवं वित्तीय मामले में क्षेत्रीय गवर्नरों पर गवर्नर-जनरल की सर्वोच्चता स्थापित की गई।

महत्व:-

1. पिट्स इण्डिया एक्ट ने बोर्ड ऑफ कंट्रोल के माध्यम से कंपनी की गतिविधियों पर वास्तविक नियंत्रण स्थापित किया।
2. एक दृष्टि से, बोर्ड ऑफ कंट्रोल 1858 ई० में भारत सचिव के पद का पूर्वगामी बन गया।
3. मद्रास तथा बम्बई के मामले में बंगाल की अधिकारिता अधिक स्पष्ट हुई।

■■■

उपनिवेशवाद का द्वितीय चरण
औद्योगिक चरण (1813-1858)

उद्देश्य- भारत को विर्निमित उत्पादों के आयातक तथा कच्चे माल के निर्यातक के रूप में परिवर्तित करना।

राजनीतिक नीति	प्रशासनिक नीति	आर्थिक नीति	सामाजिक नीति	सांस्कृतिक नीति
साम्राज्यवादी प्रसार पर बल ताकि अधिक-से-अधिक भारतीय राज्यों को प्रत्यक्ष नियंत्रण में लिया जा सके।	प्रशासनिक ढाँचे में व्यापक सुधार एवं परिवर्तन को प्रोत्साहन देना।	कृषि का व्यवसायीकरण, भारतीय हस्तशिल्प उद्योगों को धक्का पहुँचाना, रेलवे, टेलीग्राफ, डाक विभाग, सड़क मार्ग आदि का निर्माण।	समाज सुधार के लिये विधि-निर्माण करना तथा अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से नए सामाजिक वर्गों को जन्म देना।	उदारवादी तथा उपयोगितावादी विचारधारा की प्रगति तथा भारत पर उसका प्रभाव।

उपनिवेशवाद का औद्योगिक चरण (1813-58)

यह वह काल था जब ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति की शुरूआत हो चुकी थी तथा लंदन, मैनचेस्टर, बर्मिंघम, ग्लास्गो आदि शहर महत्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र के रूप में विकसित हो चुके थे। इसी क्रम में एक शक्तिशाली औद्योगिक पूँजीपति वर्ग अस्तित्व में आया और वह सरकार की नीति को प्रभावित करने लगा। उस वर्ग के दबाव में 1813 का अधिनियम प्रभाव में लाया गया। इसके तहत भारत का दरवाजा ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं के लिए खोल दिया गया और ब्रिटिश कंपनी से अपेक्षा की गई की वह भारत का प्रशासन संभाले तथा भारत में ब्रिटिश वस्तुओं के बाजार के विकास हेतु काम करे।

फिर यही समय था कि ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चे माल और ब्रिटिश नगरीय जनसंख्या के लिए अनाज की आवश्यकता महसूस हुई। इस कारण भारत से कच्चे माल का निर्यात होने लगा। इस तरह, कुल मिलाकर भारत विनिर्मित वस्तुओं का आयातक व कच्चे माल के निर्यातक के रूप में परिवर्तित हो गया।

अब भारत के संदर्भ में नवीन ब्रिटिश औपनिवेशिक हित उसकी तमाम नीतियों यथा राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक सभी को प्रभावित करना शुरू किया।

औद्योगिक चरण (राजनीतिक नीति)

भारत को एक सशक्त बाज़ार के रूप में विकसित करने के लिये कंपनी ने अधिक-से-अधिक क्षेत्रों को प्रत्यक्ष नियंत्रण में लेने पर बल दिया। अत: इस चरण में भारत आने वाले गवर्नर जनरलों ने विस्तारवादी नीति का अनुसरण करते हुए ब्रिटिश साम्राज्य के व्यापक विस्तार पर बल दिया।

लॉर्ड हेस्टिंग्स (1813-23)

- **आंग्ल-नेपाल युद्ध (1814-15)**- नेपालियों को पराजित कर उन्हें सुगौली की संधि (1816) पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य किया। इस संधि के अनुसार सिक्किम पर नेपाली अधिकार समाप्त हो गया। कुमाऊँ एवं गढ़वाल सहित तराई का अच्छा-खासा भाग ब्रिटिश भारत में विलय कर लिया गया।
- **तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध (1817-18)**- इस युद्ध में मराठा शक्ति अंतिम रूप से समाप्त हो गई। लॉर्ड हेस्टिंग्स के अंतर्गत ब्रिटिश सेना ने पेशवा, भोंसले और होल्कर की संयुक्त शक्ति को हराया। 1818 ई. में पेशवा के साथ संधि कर मराठा परिसंघ को भंग कर दिया गया तथा बाजीराव द्वितीय को आठ लाख के वार्षिक पेंशन पर बिठूर भेज दिया गया।

लॉर्ड एमहर्स्ट (1823-28)

- इसके शासनकाल में प्रथम आंग्ल-बर्मा युद्ध (1824-26) घटित हुआ, जिसमें कंपनी ने बर्मा को हराकर उसके साथ यान्दोबो की संधि (24 फरवरी, 1826) की। यान्दोबो की संधि के आधार पर कंपनी ने बर्मा से बहुत-सी रियायतों की मांग की।

विलियम बेंटिक (1828-35)

- बेंटिक ने साम्राज्यवादी प्रसार एवं विलय की नीति जारी रखते हुए 1830 ई. में कछार, 1831 ई. में मैसूर, 1834 ई. में कुर्ग तथा 1835 ई. में जयंतिया को साम्राज्य में मिला लिया।

ऑकलैंड (1836-42)

- इसके शासनकाल में प्रथम आंग्ल-अफगान युद्ध (1839-41) हुआ, लेकिन अंग्रेज़ों के लिये यह युद्ध एक त्रासदी सिद्ध हुआ। इसमें ब्रिटिश सेना अफगानों के हाथों पिट गई।

एलेनबरो (1842-44)

- इसने 1843 ई. में सिंध का अधिग्रहण किया।

लॉर्ड हार्डिंग (1844-48)

- इसके शासनकाल में प्रथम आंग्ल-सिख युद्ध (1845-46) लड़ा गया। इसमें पराजित होने के बाद सिखों ने कंपनी के साथ लाहौर (1846 में) की संधि की। लाहौर की संधि के तहत कंपनी ने कश्मीर पर अधिकार कर लिया।

लॉर्ड डलहौज़ी (1848-56)

- इसने ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के लिये दो तरीके अपनाए-

1. युद्ध के माध्यम से विस्तार:-

- द्वितीय आंग्ल-सिख युद्ध (1849) के बाद पंजाब पर अधिकार कर लिया।
- सिक्किम का अधिग्रहण (1850)
- द्वितीय आंग्ल-बर्मा युद्ध के द्वारा 1852 ई. में लोअर बर्मा अथवा पेगू को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया।
- 1853 ई. में बरार के कपास उत्पादक क्षेत्र को निज़ाम से छीन लिया।

2. विचारधारा के माध्यम से-

- **व्यपगत का सिद्धांत**- वे राज्य, जो ब्रिटिश सनद द्वारा निर्मित किये गए थे, उन्हें अपने उत्तराधिकारी के चयन के लिये गोद लेने का अधिकार नहीं प्रदान किया गया। इन राज्यों पर लॉर्ड डलहौज़ी ने अत्यंत निर्ममता से व्यपगत सिद्धांत (Doctrine of Lapse) लागू किया। इस नीति के तहत सतारा, जैतपुर, संभलपुर, बघाट, उदयपुर, झाँसी तथा नागपुर का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय कर लिया गया।
- **कुशासन के आधार पर** - 1856 ई. में अवध का विलय।

प्रश्न: 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारतीय राज्यों के संबंध में ब्रिटिश कंपनी की नीति ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद के हित से प्रेरित थी। परीक्षण कीजिए।

उत्तर: 19वीं सदी में ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद के विकास ने भारतीय राज्यों के संबंध में ब्रिटिश नीति में व्यापक परिवर्तन ला दिया। चूँकि अब ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद के हित में भारत का विकास ब्रिटिश वस्तुओं के बाजार के रूप में किया जाना था, इसलिए अधिक-से-अधिक भारतीय राज्यों को प्रत्यक्ष नियंत्रण में लेना आवश्यक था। यह एक प्रमुख कारण था कि इस काल में लॉर्ड हेस्टिंग्स से डलहौजी तक जितने भी गवर्नर-जनरल आये उन सभी ने युद्ध और विलय की नीति पर बल दिया।

लॉर्ड हेस्टिंग्स ने आंग्ल-नेपाल युद्ध के पश्चात् नेपाल से एक बड़ा भू-भाग प्राप्त कर लिया। उसी प्रकार, लॉर्ड एमहर्स्ट ने प्रथम आंग्ल-बर्मा युद्ध के पश्चात् बर्मा से कुछ भू-भाग प्राप्त कर लिया, तो डलहौजी ने आगे सम्पूर्ण बर्मा का ही विलय कर लिया।

आगे ऑकलैण्ड, एलनबोरो और हार्डिंग सभी ने युद्ध और विलय की नीति जारी रखी। फिर डलहौजी ने इस नीति को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया जब उसने युद्ध और विचारधरा का सहारा लेकर पंजाब से अवध तक ब्रिटिश भारत के मानचित्र को शीघ्रता से बदल दिया।

इस प्रकार, ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बीच सीधा संबंध था।

प्रश्न : जहाँ डलहौजी के पूर्वजों का उद्देश्य जहाँ तक संभव हो सके भारतीय राज्यों के विलय को टालना था वहीं डलहौजी ने युद्ध एवं विलय के कोई भी अवसर को नहीं छोड़ा। परीक्षण कीजिए।

उत्तर: भारतीय राज्यों के संदर्भ में डलहौजी तथा उसके पूर्वजों के बीच नीतियों के अंतर को बदलते हुए ब्रिटिश औपनिवेशिक हित के संदर्भ में समझने की जरूरत है।

18वीं सदी तक भारत के सन्दर्भ में ब्रिटिश नीति वाणिज्यिक पूँजीवाद से प्रेरित रही थी। इस काल में भारत के सन्दर्भ में ब्रिटिश हित व्यापार में निवेश तक सीमित था। इसलिए कम्पनी का उद्देश्य था जहाँ तक संभव हो सके भारतीय राज्यों के साथ युद्ध और विलय को टालना। परन्तु 19वीं सदी में भारतीय राज्यों के संदर्भ में ब्रिटिश कम्पनी की नीति औद्योगिक पूँजीवाद के हित से प्रेरित हो रही थी। अत: इसका प्रयास था अधिक-से-अधिक भारतीय राज्यों को प्रत्यक्ष नियत्रंण में लेना ताकि भारतीय क्षेत्र को कच्चे माल के निर्यातक और विनिर्मित वस्तुओं के आयातक के रूप में परिवर्तित किया जा सके। इसलिए इस काल में जो भी ब्रिटिश प्रशासक आये उन्होंने युद्ध और विलय की नीति पर बल दिया। लॉर्ड डलहौजी के काल में इस नीति का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता था।

डलहौजी ने विलय के किसी अवसर को नहीं छोड़ा और उसके लिए युद्ध एवं विचारधारा दोनों का सहारा लिया। उदाहरण के लिए, युद्ध के माध्यम से उसने पंजाब, लोअर बर्मा आदि क्षेत्र का विलय कर लिया। युद्ध के अतिरिक्त उसने व्यपगत के सिद्धांत एवं कुशासन की अवधारणा जैसी विचारधाराओं का भी सहारा लिया।

व्यपगत के सिद्धांत के आधार पर उसने सतारा, संबलपुर, झाँसी, नागपुर अर्थात् कुल सात राज्यों को मिलाया।

वहीं अवध के आर्थिक और सामरिक महत्व को देखते हुए कुशासन की अवधारणा के आधार पर उसका विलय किया।

प्रश्नः डलहौजी ने ब्रिटिश भारत के मानचित्र को इतनी शीघ्रता से बदल दिया जो केवल युद्ध के माध्यम से संभव नहीं हो पाता। परीक्षण कीजिए।

औद्योगिक चरण (प्रशासनिक नीति)

कानून व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण-

ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं के लिये भारत को बाज़ार के रूप में विकसित करने हेतु कंपनी ने प्रशासनिक सुधारों पर विशेष बल दिया-

- लॉर्ड हेस्टिंग्स ने 1816-17 ई. में पिंडारियों का दमन किया। पिंडारी लूटपाट करने वाले लोगों का गिरोह था, इसमें हिंदू एवं मुसलमान, दोनों शामिल थे। ये मराठों की सेना में सहायक के रूप में कार्य करते थे।
- विलियम बेंटिक ने ठगी के अंत के लिये कर्नल स्लीमैन को नियुक्त किया।

न्यायिक सुधार-

- उपयोगितावादी विचारधारा का प्रभाव न्यायिक सुधारों पर भी पड़ने लगा। इसी क्रम में बेंथम ने भारतीय न्याय व्यवस्था/प्रणाली में व्याप्त मूलभूत खामियों की ओर ब्रिटिश सरकार का ध्यान आकर्षित किया।
- 'विधि के संहिताकरण' के लिये 1833 ई. के चार्टर अधि नियम में एक विधि सदस्य की नियुक्ति का प्रावधान किया गया। परिणामस्वरूप मैकाले संहिता का निर्माण हुआ, जिसे 1857 के विद्रोह के बाद लागू किया गया। फिर इंडियन सिविल कोड और भारतीय दंड संहिता क्रमशः 1859 और 1860 में अस्तित्व में आई।
- उच्च न्यायालय अधिनियम, 1861 के द्वारा पुराने सुप्रीम कोर्ट और सदर दीवानी व निज़ामत अदालतों को समाप्त कर कलकत्ता, मद्रास तथा बंबई में उच्च न्यायालयों की स्थापना की गई।

भू-राजस्व संबंधी सुधार-

- इस काल तक ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग और भारतीय सरकार के मध्य भी द्वंद्व की स्थिति उत्पन्न हो गई। जहाँ ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग ने ब्रिटिश वस्तुओं की खरीद के लिये भारतीय क्रय शक्ति क्षमता को दृष्टिगत रखते हुए भू-राजस्व की दर कम रखने का समर्थन किया, वहीं ब्रिटिश भारत सरकार की भी अपनी मजबूरियाँ थीं। इसलिये, अंत में भारतीय सरकार ने व्यापक विचार-विमर्श के बाद ज़मींदारों की भूमिका को समाप्त करने का निर्णय लिया।
- इसके अतिरिक्त डेविड रिकार्डो के 'लगान सिद्धांत' में भी ज़मींदार को परजीवी मानकर उत्पादन में उनके महत्त्व को नकार दिया गया था।
- अतः रैयतवाड़ी और महालवाड़ी भू-राजस्व व्यवस्था में सीधे काश्तकारों एवं ग्राम समूहों से भू-राजस्व वसूल करने की व्यवस्था की गई और ज़मींदारों एवं मध्यस्थों को इससे बाहर रखने का प्रयास किया गया।

रैयतवाड़ी व्यवस्था

- यह मद्रास एवं बंबई प्रेसीडेंसी तथा कुछ अन्य भागों में लागू हुई थी। इसके अंतर्गत ब्रिटिश भारत का 51 प्रतिशत भाग सम्मिलित था।
- प्रत्येक पंजीकृत किसान को भूमि का स्वामी मान लिया गया तथा उसके साथ व्यक्तिगत स्तर पर भू-राजस्व समझौता किया गया था।
- यहाँ भी भूमि को विक्रय योग्य बना दिया गया।
- सामुदायिक संपत्ति, अर्थात् चरागाह भूमि, बंजर भूमि, सिंचाई भूमि, जंगल आदि को किसान की जगह सरकार के स्वामित्व में रख दिया गया।
- किसानों के साथ भू-राजस्व का प्रबंधन स्थायी रूप में न करके अस्थायी रूप में किया गया।

उद्देश्य-

1. मद्रास प्रेसीडेंसी में कंपनी खर्चीले युद्ध में उलझी हुई थी, अतः उसे बड़ी मात्रा में धन की ज़रूरत थी।
2. कंपनी स्थायी बंदोबस्त के कारण कृषि उत्पादन के भावी लाभ से वंचित हो रही थी, इसलिये स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था से कंपनी का मोहभंग हो गया था।
3. पश्चिम भारत एवं दक्षिण भारत में ज़मींदार वर्ग जैसा कोई स्पष्ट वर्ग नहीं था।

प्रभाव-

1. रैयतवाड़ी व्यवस्था में रैयतों की सुरक्षा से संबंधित उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सका, क्योंकि इन क्षेत्रों में कई ज़मींदारों के स्थान पर स्वयं सरकार एक बड़े तथा शोषक ज़मींदार के रूप में स्थापित हो गई।
2. भू-राजस्व की एक बड़ी रकम को चुकता करने के लिये किसान महाजनों से कर्ज़ लेने को विवश हुए, अतः ग्रामीण ऋणग्रस्तता इस क्षेत्र में एक बड़ी समस्या के रूप में उत्पन्न हुई।

महालवाड़ी व्यवस्था

- यह व्यवस्था उत्तर भारत एवं उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में लागू की गई। इस व्यवस्था में कुल भू-भाग का 30 प्रतिशत भाग सम्मिलित था।
- इस व्यवस्था के अंतर्गत भू-राजस्व का प्रबंधन गाँव अथवा महाल के साथ किया गया।
- सामान्यतः भू-राजस्व की वसूली मुकद्दम (गाँव का

मुखिया) के माध्यम से की जाती थी।

- इसमें निजी उत्तरदायित्व का भी प्रावधान था, अर्थात् अगर कोई किसान अपने हिस्से का भू-राजस्व देने में असमर्थ हो तो उसकी भूमि महाल अधिगृहीत कर सकता था।
- रैयतवाड़ी व्यवस्था की तरह ही इस व्यवस्था में भू-राजस्व का प्रबंधन स्थायी रूप में न करके अस्थायी रूप में किया गया था।

उद्देश्य-

1. बढ़ते हुए ब्रिटिश साम्राज्य के खर्च को पूरा करने के लिये धन की ज़रूरत थी।
2. ब्रिटिश उद्योगों में निवेश करने के लिये बड़ी मात्रा में ध न की ज़रूरत थी।

प्रभाव-

- इस प्रणाली में भू-राजस्व की दर अत्यधिक रखी गई थी। अवध के किसानों में इसे लेकर गहरा असंतोष था और यही असंतोष 1857 के विद्रोह के समय हिंसक कृषक विद्रोह के रूप में फूट पड़ा।

प्रश्नः 19वीं सदी में ब्रिटिश भारत की प्रशासानिक संरचना औद्योगिक पूँजीवाद के हित से प्रेरित रहा था। इस कथन का परीक्षण कीजिए।

उत्तरः 19वीं सदी के भारत को ब्रिटिश औपनिवेशिक हित में विर्निमित वस्तुओं के बड़े बाजार के रूप में विकसित किया जाना था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश भारत की प्रशासनिक संरचना में व्यापक सुधार एवं परिवर्तन करना आवश्यक था। इसलिए इस काल में कम्पनी की सरकार के द्वारा बेहतर कानून व्यवस्था, सक्षम न्याय व्यवस्था एवं भू-राजस्व व्यवस्था में सुधार के लए कदम उठाये गये।

- **कानून व्यवस्था :** कानून व्यवस्था के मार्ग में एक बड़ी चुनौती थी पिण्डारी, लुटेरे एवं राहजनी करने वाले ठग। अतः लॉर्ड हेस्टिंग्स एवं विलियम बेंटिंक ने क्रमशः पिण्डारियों और ठगों के दमन के लिए कदम उठाए।
- **न्याय व्यवस्था :** बाजार के विकास के लिए विधियों का संहिताकरण एवं सक्षम नयायालय की स्थापना करना आवश्यक था। इसलिए इस काल में मैकाले संहिता का निर्माण हुआ और 1861 के उच्च न्यायालय अधिनियम के आधार पर प्रेसिडेंसी नगरों में हाई कोर्ट की स्थापना हुई।
- **भू-राजस्व व्यवस्था :** किसानों पर दबाव कम हो तथा सरकार को अधिक राजस्व प्राप्त हो सके, इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर नई भू-राजस्व व्यवस्था के रूप में रैयतवाड़ी और महालवाड़ी व्यवस्था लायी गई जिनसे जमींदारों को पृथक रखा गया। रैयतवाड़ी में किसानों के साथ तथा महालवाड़ी में गांव तथा महाल के रूप में भू-राजस्व का प्रबंधन किया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद ने प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन ला दिया।

प्रश्नः 19वीं सदी में ब्रिटिश भारत में किये जाने वाले न्यायिक क्षेत्र में सुधार कहाँ तक बेंथमवादी विचारों से प्रेरित था? इस मत का परीक्षण कीजिए।

उत्तरः 19वीं सदी के ब्रिटिश चिंतक जेरेमी बेंथम के विचार ने भारतीय न्याय व्यवस्था को प्रभावित किया। बेंथम ने न्याय व्यवस्था की निम्नलिखित कमजोरियों को उद्घटित किया-

- अधिकांश कानूनों का अलिखित होना।
- क्षेत्र के अनुसार कानूनों में बदलाव अर्थात् कानूनों का मानकीकरण नहीं होना।
- बंदी प्रत्यक्षीकरण जैसी व्यवस्था का अभाव।

इन विचारों के प्रभाव में, न्यायिक क्षेत्र में सुधार हेतु निम्नलिखित कदम उठाये गये-

1. 1813 के चार्टर के आधार पर गवर्नर-जनरल के विधि सदस्य के रूप में लॉर्ड मैकाले की नियुक्ति हुई और उसे विधियों के संहिताकरण का कार्य दिया गया। फिर 1837 में मैकाले विधि संहिता बनकर तैयार हुआ और आगे वह भारतीय दीवानी संहिता (1859) और भारतीय दण्ड संहिता (1860) के रूप में लागू हुआ।
2. भारत में न्यायिक द्वैतपरकता को समाप्त करने के क्रम में सदर अदालत और सुप्रीम कोर्ट को समाप्त कर दिया गया तथा 1861 के हाईकोर्ट एक्ट के आधार पर प्रेसिडेंसी नगरों में हाईकोर्ट की स्थापना की गई।

परन्तु गहराई से परीक्षण करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि बेंथमवादी विचारधारा से अधिक न्यायिक सुधार की उत्प्रेरणा देने वाला रहा था ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद, जो भारत को ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं के बाजार के रूप में विकसित करने के लिए प्रतिबद्ध था।

प्रश्नः रैयतवाड़ी और महालवाड़ी व्यवस्था ने भारत के ग्रामीण जीवन पर क्या प्रभाव डाला?

उत्तरः अगर हम रैयतवाड़ी और महालवाड़ी व्यवस्था का मूल्यांकन करते हैं तो हमें यह ज्ञात होता है कि ये व्यवस्था लगभग पूरी तरह ब्रिटिश हित में लायी गईं थीं तथा भारत के ग्रामीण जीवन के अनुकूल नहीं थीं। इसलिए ग्रामीण जीवन पर इसका निम्नलिखित नकारात्मक प्रभाव देखा गया-

1. किसानों पर दोनों व्यवस्थाओं में भू-राजस्व की दर अधि कतम रूप में निर्धारित की गई थी। इस कारण किसानों की क्रय शक्ति में ह्रास की शुरूआत हुई जिसके फलस्वरूप ग्रामीण गरीबी एवं ऋणग्रस्तता की स्थिति बनी रही।
2. भूमि में निजी स्वामित्व को आरोपित करने और उसे विक्रय योग्य बनाने के कारण भूमि के विखण्डन (Fragmenta-

tion of land) को बल मिला। इसलिए स्वतंत्रता के पश्चात् चकबंदी (Consolidation of land) पर बल दिया गया।

3. भूमि की खरीद-बिक्री और भू-राजस्व के अधिक दबाव के कारण ग्रामीण क्षेत्र में सीमान्त कृषक मजदूर बनते चले गये।
4. इस काल में नकदी फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन मिला। इस कारण ज्वार, बाजरा और मक्का जैसे परम्परागत फसलें प्रभावित हो गईं जिसके फलस्वरूप अकाल जैसी घटनाओं में वृद्धि हुई।

औद्योगिक चरण (आर्थिक नीति)

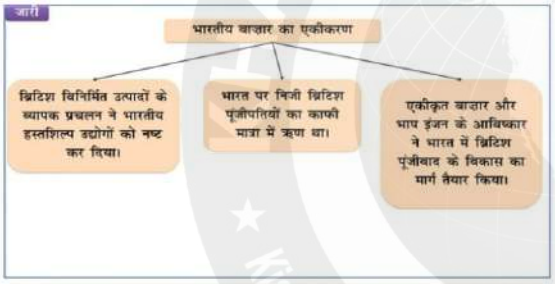

कृषि का व्यवसायीकरण

- भारतीय कृषि क्षेत्र का दोहन ब्रिटिश औद्योगीकरण के हित में किया गया।
- यद्यपि कृषि का व्यवसायीकरण भारतीय कृषि में कोई नई बात नहीं थी, लेकिन ब्रिटिश शासन के अंतर्गत इसे व्यापक रूप से प्रोत्साहित किया गया।

निम्नलिखित कारकों ने व्यवसायीकरण को प्रोत्साहन दिया-

1. भू-राजस्व की दर अधिकतम होना।
2. ब्रिटिश उद्योगों के लिये कच्चे माल की आवश्यकता।
3. ब्रिटेन में नगरीय जनसंख्या के लिये बड़ी मात्रा में अनाजों की आवश्यकता होना।
4. आधुनिक यातायात एवं संचार के साधनों के विकास के साथ-साथ 1869 में स्वेज़ नहर का खुलना।

सीमाएँ-

1. औपनिवेशिक सरकार ने केवल उन्हीं फसलों को प्रोत्साहन दिया, जिनकी ब्रिटेन को आवश्यकता थी।
2. अधिसंख्य भारतीय किसानों के लिये यह एक थोपी गई प्रक्रिया थी।
3. औपनिवेशिक सरकार के अंतर्गत इस व्यवस्था में प्रत्येक स्तर पर लाभ प्राप्त करने वाला वर्ग अपना आर्थिक भार अपने नीचे वाले वर्ग पर डालकर स्वयं बच जाता था।
4. व्यावसायिक फसलों के उत्पादन ने मोटे अनाजों की खेती पर दुष्प्रभाव डाला, जो गरीब लोगों का भोजन था। फलतः इसने ग्रामीण क्षेत्र में भूखमरी की समस्या को बहुत तीव्र कर दिया।

विऔद्योगीकरण

भारत के हस्तशिल्प उद्योग का पतन-

कारण-

1. चार्टर अधिनियम, 1813- इसके आधार पर भारत में कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया तथा लंकाशायर एवं मैनचेस्टर के औद्योगिक उत्पादों से भारत का बाज़ार भरा जाने लगा। इस प्रक्रिया ने भारत के हस्तशिल्प उद्योग पर विपरीत प्रभाव डाला।
2. ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटेन तथा यूरोप में भारतीय हस्तशिल्प उत्पादों के लिये बाज़ार बंद करने हेतु उन पर भारी कर लगाए।
3. रेलवे के माध्यम से भारत के दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँच बनाई गई तथा वहाँ ब्रिटिश वस्तुएँ पहुँचाई गईं।
4. कंपनी की साम्राज्यवादी प्रसार की नीति के कारण अधिकांश देशी रियासतों का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय किया गया। ये रियासतें भारतीय हस्तशिल्प उत्पादों के लिये एक बड़ा बाज़ार थीं। विलय नीति के परिणामस्वरूप भारतीय हस्तशिल्प उद्योगों ने अपना आंतरिक बाज़ार भी खो दिया।

5. ब्रिटिश की शैक्षणिक-सामाजिक नीति ने भारत में एक ऐसा वर्ग पैदा किया, जिसकी रुचि ब्रिटिश वस्तुओं के प्रति थी।

प्रभाव-

- ब्रिटिश ने भारत के परंपरागत ढाँचे को तोड़ दिया, किंतु उसकी जगह आधुनिक उद्योगों के निर्माण के द्वारा इसकी क्षतिपूर्ति नहीं की जा सकी। परिणामत: कृषि एवं उद्योगों के मध्य संतुलन बिगड़ जाने से कृषि पर अधिकाधिक लोगों की निर्भरता बढ़ गई। अत: भारत में ग्रामीण गरीबी एवं ऋणग्रस्तता को बल मिला।

आधुनिक यातायात एवं संचार व्यवस्था

- **रेलवे**

उद्देश्य-

1. भारत में दूरस्थ क्षेत्रों तक ब्रिटिश वस्तुओं को पहुँचाना।
2. भारत के दूरस्थ क्षेत्रों से कच्चे माल की प्राप्ति।
3. रेलवे निर्माण के माध्यम से भारत में ब्रिटिश पूंजीपतियों को सुरक्षित पूंजी निवेश की गारंटी देना।
4. ब्रिटेन स्थित लौह और इस्पात उद्योग के लिये भारत में बाज़ार बनाना।
5. भारत के दूरस्थ क्षेत्रों में सैनिकों को शीघ्रता से पहुँचाना।

सकारात्मक पक्ष:-

1. भारतीय बाजार का एकीकरण हुआ।
2. रेलवे इंजन के कारण आधुनिक फैक्ट्री प्रणाली की शुरूआत हुई।
3. रेलवे एवं यातायात के साधनों के विकास के फलस्वरूप भारत में दूर-दराज़ के क्षेत्रों का आपस में जुड़ाव हुआ, जिसके कारण अनजाने में ही भारत में राजनीतिक एकीकरण को बल मिला।

नकारात्मक पक्ष :-

1. गृहव्यय की राशि में वृद्धि होने के कारण इसने भारतीय राजकोष पर विपरीत प्रभाव डाला।
2. रेलवे के लिये निर्माण सामग्री सीधे ब्रिटेन से आयातित होने के कारण यह औद्योगीकरण को प्रोत्साहन नहीं दे सका, बल्कि इसने कच्चे माल के निर्यात और तैयार माल के आयात को प्रोत्साहन देकर हस्तशिल्प उद्योग को पतन की स्थिति में पहुँचाया, अर्थात् विऔद्योगीकरण को प्रोत्साहन दिया।
3. इसने भारत से अनाज के निर्यात को प्रोत्साहन देकर अकाल की तीव्रता को बढ़ा दिया।

- **अकाल**

कारण-

1. भू-राजस्व की रकम अधिकतम निर्धारित होने के कारण किसानों की क्रयशक्ति कम हो गई, जिसके कारण वे ज़रूरत के समय भी अनाजों को खरीदकर नहीं खा सकते थे।
2. व्यावसायिक फसलों की खेती के कारण मोटे अनाजों के उत्पादन में गिरावट आई, जो गरीबों का आहार था।
3. कृषि पर जनसंख्या का बोझ बढ़ा।
4. रेलवे ने मोटे अनाजों की जगह व्यावसायिक फसलों की खेती को प्रोत्साहन दिया, क्योंकि रेलवे के माध्यम से निर्यात की जाने वाली फसलों का संग्रह करना आसान हो गया।
5. भारत में अनाजों की कमी के समय भी ब्रिटिश के द्वारा भारत से बाहर लगातार अनाजों का निर्यात किया जाता रहा।

धन की निकासी

'धन की निकासी' के स्वरूप/प्रकृति में परिवर्तन-

- कंपनी ने निरंतर राजस्व खाते से प्राप्त रकम का व्यापारिक खाते में उपयोग किया। यह स्थिति 1813 ई. तक बनी रही। फिर 1813 ई. के चार्टर के आधार पर कंपनी के राजस्व खाते एवं व्यापारिक खाते, दोनों को एक-दूसरे से अलग कर दिया गया।
- अत: 1813 के बाद धन की निकासी ने अपना रूप परिवर्त्तित कर लिया। इस चरण में अपना व्यापारिक अधिकार खोने के बाद कंपनी के समक्ष अपने शेयरधारकों को मुनाफा देने की समस्या उपस्थित हुई। कंपनी ने इस समस्या के समाधान के लिये कृषि उत्पादों के निर्यात, विशेष रूप से चीन में अफीम को प्रोत्साहन दिया।
- जब चीन ने अफीम के व्यापार को रोकने की कोशिश की तो ब्रिटेन व चीन के मध्य अफीम युद्ध शुरू हो गया।

प्रश्न: कृषि के व्यावसायीकरण से क्या तात्पर्य है? इसने किस प्रकार भारत में अकाल, गरीबी एवं ऋणग्रस्तता जैसी घटनाओं को प्रोत्साहन दिया? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर: कृषि के व्यावसायीकरण से तात्पर्य है खेती में परम्परागत फसलों की जगह नकदी फसलों की खेती पर बल देना। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत इस प्रक्रिया को बल मिला। ब्रिटिश सरकार ने उन उत्पादों पर बल दिया जिनसे स्वयं सरकार को फायदा था, उदाहरण के लिए कपास, नील, अफीम, गन्ने, गेहूं, दलहन, चावल, जूट आदि। इन उत्पादों को ब्रिटेन निर्यात किया गया।

दूसरी तरफ भारतीय किसानों के लिए यह एक थोपी गई प्रक्रिया थी। अधिकांशत: किसानों ने इसे बाध्यता के कारण अपनाया था और यह बाध्यता थी भू-राजस्व की अधिकतम दर एवं महाजनी कर्ज को अदा करने की बाध्यता। चूंकि इसका लाभ किसानों को नहीं बल्कि व्यापारी एवं महाजनों को मिला इसलिए उल्टा इसने किसानों के बीच गरीबी, अकाल एवं भूखमरी तथा ऋणग्रस्तता को जन्म दिया।

गरीबी : भू-राजस्व की दर के दबाव के कारण प्रति व्यक्ति आय में गिरावट तथा व्यावसायिक खेती में अधिक निवेश होने और कम लाभ मिलने के कारण ग्रामीण गरीबी एक आम घटना हो गई।

अकाल : नकदी फसलों की खेती के कारण मोटे अनाजों के उत्पादन को धक्का लगा जिसके कारण अकाल एवं भूखमरी की घटना बढ़ गयी।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता: नकदी फसलों की खेती में अधिक निवेश करने की जरूरत होती है, इसके लिए किसानों को महाजनी कर्ज लेना होता। वहीं दूसरी तरफ इसका अपेक्षित लाभ किसानों को नहीं मिल पाता। अत: किसान महाजनी कर्ज चुकाने में असमर्थ हो जाते और कर्ज में फंस जाते।

प्रश्न: परीक्षण कीजिए कि औपनिवेशिक भारत में पारंपरिक कारीगरी उद्योग के पतन ने किस प्रकार ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अपंग बना दिया? (UPSC-2016)

उत्तर: 18वीं सदी तक भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि एवं कारीगरी उद्योग के उचित संतुलन पर आधारित थी। भारत एक समृद्ध कृषि आधार के साथ-साथ भारतीय कारीगरी उद्योगों के लिए एक बड़ा निर्यात बाजार भी था। यही वजह है कि भारत की अर्थव्यवस्था समृद्ध अवस्था में थी।

भारत के कारीगरी उद्योग अथवा दस्तकारी दो समूहों में विभाजित थे-

1. **नगरीय दस्तकारी :** यह विश्व मानक स्तर का उत्पादन करती। भारत के सूती वस्त्र उद्योग, मलमल उद्योग, रेशम उद्योग, लौह उद्योग, ये सभी विश्व प्रसिद्ध थे। नगरीय दस्तकारी में श्रम की जरूरत को पूरा करने के लिए ग्रामीण शिल्पियों को भी लगाया जाता। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी फायदा होता।
2. **ग्रामीण दस्तकारी :** यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ थी। इससे निम्नलिखित रूप में फायदा होता।
   - ग्रामीण शिल्पी अतिरिक्त समय में नगरीय दस्तकारी के रूप में काम करते।
   - किसान खेती से बचे हुए समय में कारीगरी उत्पादन में लगाते।
   - महिलाएँ भी सूत की कटाई एवं बुनाई करती।

परन्तु ब्रिटिश व्यापार एवं उद्योग नीति के परिणामस्वरूप ग्रामीण तथा नगरीय कारीगरी दोनों का पतन हो गया। इसके कारण न केवल किसान अतिरिक्त आमदनी से वंचित रहे बल्कि आधुनिक उद्योगों की स्थापना न होने के कारण कारीगरी कृषि की ओर मुड़ गई तथा कृषि पर जनसंख्या का अधिभार बढ़ गया।

प्रैक्टिस वर्क

प्रश्न: *19वीं सदी के भारत में ब्रिटिश कंपनी के द्वारा अपनाई गई आर्थिक नीति का प्रभाव पूँजीवादी रूपांतरण था अथवा औपनिवेशीकरण? अपने मत के पक्ष में उत्तर दीजिए।*

प्रश्न: *यूरोप के विपरीत जहाँ रेलवे ने औद्योगिकरण में अपनी भूमिका निभाई थी, भारत में रेलवे ने विऔद्योगिकरण में अपना योगदान दिया। इस कथन का परीक्षण कीजिए।*

सामाजिक नीति

औपनिवेशिक सरकार केवल संबंधित देश की अर्थव्यवस्था का दोहन ही नहीं करती बल्कि उसके समाज एवं संस्कृति को भी प्रभावित करती है। ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद ने भारत की सामाजिक संरचना में सुधार एवं परिवर्तन पर बल दिया।

इसके पीछे उद्देश्य यह था कि सुधार और परिवर्तन के पश्चात् भारत ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं के लिए एक बेहतर बाजार की भूमिका निभाएगा। ब्रिटिश का विश्वास था कि समाज सुधार के परिणामस्वरूप भारतीय समाज परंपरागत ढाँचे से बाहर निकलकर अंग्रेजी शिक्षा को स्वीकार करेगा। फिर अंग्रेजी शिक्षा भारतीयों के ऐसे वर्ग को जन्म देती जिसकी रूचि ब्रिटिश वस्तुओं में होती।

इसके अतिरिक्त समाज सुधार के पीछे एक दूसरा कारक ब्रिटिश चिंतकों के प्रभाव को माना जाता है। ब्रिटिश उदारवादी चिंतक भारत में सुधार और परिवर्तन की माँग कर रहे थे तथा भारतीयों को सभ्य बनाने का दावा करते रहे थे। उदाहरण के लिए -

- सती प्रथा उन्मूलन कानून (1829-30)
- शिशु हत्या को रोकने वाले कानूनों को 1830 के दशक में कड़ाई से लागू किया गया।
- 1843 में दास व्यवस्था उन्मूलन से संबंधित कानून।
- 1856 में विधवा पुनर्विवाह कानून।

सांस्कृतिक नीति

अंग्रेजी शिक्षा अथवा मैकाले शिक्षा पद्धति

शिक्षा के क्षेत्र में प्राच्य एवं पाश्चात्य विवाद क्या है?

उसके निम्नलिखित आधार थे -

1. शिक्षा का आधार क्या हो?
2. शिक्षा का माध्यम क्या हो?

- प्रथम मुद्दे पर कोई बड़ा विवाद नहीं था बल्कि दूसरे मुद्दे पर विवाद बना हुआ था। उस समय बंगाल लोक शिक्षा समिति दो गुटों में बंटी हुई थीं- प्राच्यवादी एवं पाश्चात्यवादी। प्राच्यवादी चाहते थे कि भारतीयों को उनकी क्लासिकल भाषा में शिक्षा दी जाए तभी वे पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा को स्वीकार करेंगे।

- दूसरी तरफ पाश्चात्यवादी अंग्रेजी भाषा में शिक्षा देने के पक्षपाती थे। जब लॉर्ड मैकाले बंगाल लोक शिक्षा समिति का अध्यक्ष बना तो स्वाभाविक रूप में जीत पाश्चात्यवादियों की हो गई। 2 फरवरी, 1835 को लॉर्ड मैकाले ने शिक्षा नीति जारी कर दी।

विप्रवेशन की अवधारण क्या है?

- ब्रिटिश एक बड़ी जनसंख्या को अंग्रेजी शिक्षा प्रदान नहीं कर सकते थे, इसलिए मैकाले ने एक योजना रखी कि पहले मुठ्ठी भर भारतीय अंग्रेजी भाषा के माध्यम से आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करेंगे और फिर भारतीय भाषा में उसे शेष भारतीयों तक पहुँचायेंगे परन्तु यह योजना सफल नहीं हो सकी।

मैकाले शिक्षा लागू करने के पीछे उद्देश्य :

- ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं के लिए बाजार प्राप्त करना।
- भारतीयों को निम्न सरकारी पदों पर नियुक्ति योग्य बनाना।
- इसाई धर्म का प्रसार करना।
- भारत में ब्रिटिश शासन के लिए एक समर्थक वर्ग तैयार करना।

मैकाले शिक्षा पद्धति का दुष्परिणाम :

- भारत में जनशिक्षा ध्वस्त हो गई।
- सभी प्रकार का मौलिक ज्ञान ब्रिटेन में विकसित किया जाता और भारत से केवल नकल करने की अपेक्षा की जाती।
- भारतीयों को आर्थिक एवं ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के बजाय साहित्य और दर्शन की शिक्षा ही अधिक दी गई।
- मैकाले शिक्षा पद्धति के कारण भारत और इंडिया में विभाजन बना रहा।

योगदान :

- अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारतीय बुद्धिजीवियों का एक वर्ग पाश्चात्य विचारधारा के सम्पर्क में आया और इस कारण भारत में राष्ट्रवाद को प्रोत्साहन मिला।
- अंग्रेजी भाषा के कारण भारत 1990 के दशक में कम्प्यूटर साफ्टवेयर के क्षेत्र में आगे बढ़ सका।

उदारवाद और उपयोगितावाद

समानताएँ-

1. दोनों ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति की उपज थे।
2. वे दोनों प्राच्यवादी विचारधारा के मुखर/प्रबल आलोचक थे। उनका कहना था कि प्राच्यविदों ने भारत की अनुचित प्रशंसा की थी।
3. दोनों ने भारतीय अतीत और संस्कृति पर हमला करते हुए भारतीयों को असभ्य एवं बर्बर तथा भारतीय समाज को पतनशील करार दिया। उन्होंने भारतीयों को सभ्य बनाने तथा विकास के मार्ग पर ले जाने के लिये भारत में कठोर ब्रिटिश शासन का औचित्य सिद्ध किया।

दोनों के बीच अंतर-

1. उदारवादियों का मानना था कि यद्यपि भारत इस समय पतन के दौर से गुज़र रहा है, लेकिन अंग्रेज़ी शिक्षा एवं ब्रिटिश राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से भारत को विकास के रास्ते पर ले जाया जा सकता है। भारत में इस दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व लॉर्ड मैकाले और ट्रैवनियर कर रहे थे। लेकिन, दूसरी ओर जेरेमी बेंथम जैसे उपयोगितावादियों ने उदारवादियों के मत को नकारते हुए कहा कि भारतीय अपने आप प्रगति नहीं कर सकते हैं, इसलिये भारत में ब्रिटिश सरकार को एक स्कूल मास्टर की भूमिका निभानी चाहिये तथा विधि निर्माण के माध्यम से भारत में विकास को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।
2. उदारवादियों का मानना था कि विकास के मार्ग पर बढ़ते हुए एक ऐसा समय आएगा, जब भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त कर लेंगे, लेकिन उपयोगितावादियों ने इस मत को खारिज करते हुए कहा कि ब्रिटिश को ही हमेशा भारतीयों की ओर से भारत के विकास के लिये काम करना चाहिये। उसका यह भी कहना था कि भारतीयों को स्वतंत्रता की नहीं, बल्कि 'सुख' की ज़रूरत है, जो कि एक प्रभावी सरकार ही प्रदान कर सकती है। इसलिए ब्रिटिश सरकार उसे सुख दे सकती।
3. उदारवादियों का मानना था कि भारत में ब्रिटिश शासन का उद्देश्य भारतीयों को सभ्य बनाना होना चाहिये, अर्थात् उन्होंने भारत को सभ्य बनाने के ब्रिटिश मिशन की वकालत की। लेकिन, उपयोगितावादियों ने उनके मत को खारिज करते हुए कहा कि भारतीय कभी सभ्य बन ही नहीं सकते।

प्रश्नः ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद ने भारतीय अर्थव्यवस्था का ही दोहन नहीं किया अपितु भारतीय समाज एवं संस्कृति के क्षेत्र में भी परिवर्तन की दिशा तय कर दी। टिप्पणी कीजिए।

उत्तर : 19वीं सदी में ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद ने भारत के संदर्भ में ब्रिटिश नीति को दिशा दी। इसने भारतीय अर्थव्यवस्था के साथ-साथ भारतीय समाज और संस्कृति पर भी अपना प्रभाव छोड़ा।

ब्रिटिश नीति का उद्देश्य रहा था ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद के हित में भारतीय अर्थव्यवस्था का दोहन करना तथा भारत को विनिर्मित वस्तुओं के आयातक एवं कच्चे माल के निर्यातक के रूप में परिवर्तन कर देना। परन्तु चूँकि उपनिवेशवाद समाज और संस्कृति पर भी अपना प्रभाव छोड़ता है इसलिए ब्रिटिश कम्पनी ने सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में सुधार के लिए पहल की। इसका मुख्य उद्देश्य रहा था भारत को ब्रिटिश

वस्तुओं के बाजार के रूप में विकसित करना। दूसरी तरफ सुधार के लिए दबाव ब्रिटिश उदारवादी एवं उपयोगितावादी चिंतकों की ओर से भी बना हुआ था, इसलिए इस संदर्भ में निम्नलिखित कदम उठाये गये-

1. समाज सुधार के लिए विधि निर्माण अर्थात् सती प्रथा उन्मूलन (1829-30), दास व्यवस्था उन्मूलन (1843), विधवा पुनर्विवाह कानून (1856) आदि।
2. अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारतीयों के सांस्कृतिक दृष्टिकोण में बदलाव लाने का प्रयास किया गया। मैकाले के शब्दों में, एक ऐसे वर्ग को जन्म देना जो अपनी रूचि और दृष्टिकोण में ब्रिटिश हों।

इस प्रकार, ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद ने भारतीय अर्थव्यवस्था के साथ-साथ समाज और संस्कृति को भी परिवर्तित कर दिया।

■■■

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

1813 ई. का चार्टर एक्ट :-

1. ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। इसका अर्थ था ब्रिटेन के अन्य व्यापारियों को भारत में व्यापार करने की छूट मिल गई। अब वे भारत में बिना रोक-टोक ब्रिटिश औद्योगिक उत्पादों की बिक्री के लिये आ सकते थे। परंतु, यह स्मरणीय है कि चीन के साथ व्यापार एवं चाय के व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार बना रहा था।
2. ब्रिटिश पूंजीपतियों का इस बात के लिये दबाव रहा था कि सरकार भारत का प्रशासन अपने हाथों में ले ले, किंतु सरकार इस दायित्व के लिये तब तैयार नहीं थी, अतः इस चार्टर एक्ट के माध्यम से आगामी 20 वर्षों के लिये भारत के प्रशासन का दायित्व ब्रिटिश कंपनी के ऊपर छोड़ दिया गया।
3. ब्रिटिश उदारवादी चिंतकों के इस दावे को वैधता देने के लिये कि उनका उद्देश्य भारत को सभ्य बनाना है, भारत में वैज्ञानिक शिक्षा एवं साहित्य के प्रसार के लिये 1 लाख रुपए वार्षिक आवंटन का प्रावधान लाया गया।
4. ईसाई मिशनरियों को लाइसेंस लेकर धर्म प्रचार की अनुमति मिली।

1833 ई. का चार्टर एक्ट

1. इस एक्ट के तहत बंगाल का गवर्नर जनरल अब भारत का गवर्नर जनरल कहा जाने लगा। इसी आधार पर विलियम बैंटिक भारत का प्रथम गवर्नर जनरल बना।
2. इसी चार्टर एक्ट के तहत विधि-निर्माण के लिये एक विधि आयोग की स्थापना की गई तथा पहले विधि सदस्य के रूप में लॉर्ड मैकाले की नियुक्ति हुई।
3. इस एक्ट के तहत भारत में दास प्रथा उन्मूलन की बात की गई। इसी आधार पर लॉर्ड एलनबरो के समय 1843 ई. में दास प्रथा का अंत कर दिया गया।
4. यह भी घोषणा की गई कि सरकारी सेवाओं में भारतीयों के साथ वर्ण, जन्म, नस्ल के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा।

1853 ई. का चार्टर एक्ट

1. भारत का प्रशासन ब्रिटिश कंपनी के अंतर्गत छोड़ दिया गया था, परंतु उसके लिये किसी प्रकार की समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई थी।
2. इस एक्ट के माध्यम से सिविल सेवा में नियुक्ति का आधार प्रतियोगिता परीक्षा को बनाया गया।
3. डायरेक्टर्स की संख्या 24 से कम कर 18 कर दी गई। फिर बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स को इस बात की अनुमति दी गई कि वह नई प्रेसिडेंसी का निर्माण अथवा उनकी सीमाओं में परिवर्तन कर सके।
4. पहली बार लेजिस्लेटिव कौंसिल के गठन की घोषणा की गई।

■■■

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna
KHAN SIR

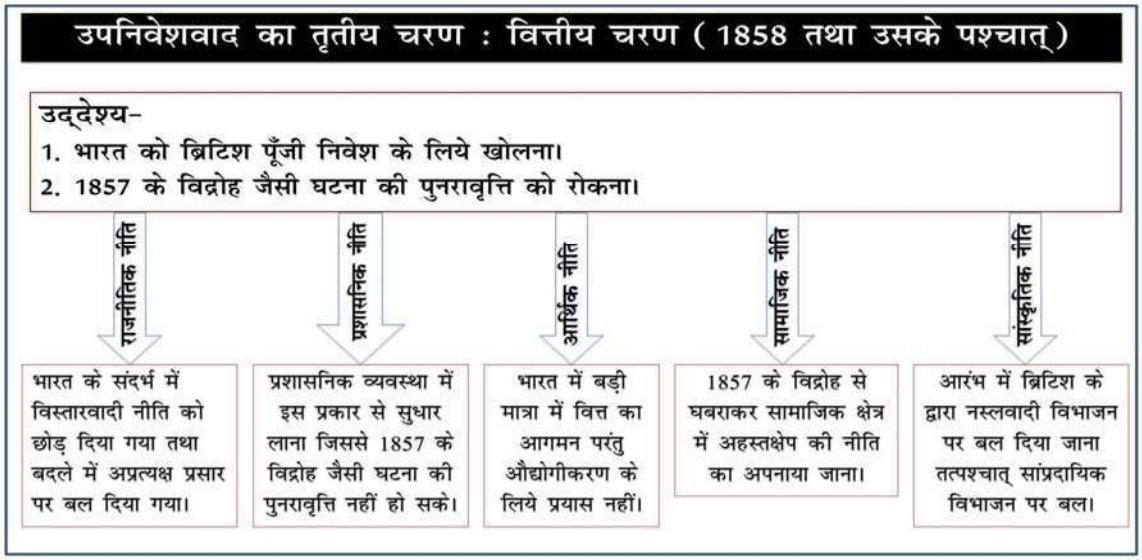

उपनिवेशवाद का वित्तीय चरण

उद्देश्य :

1. **भारत को ब्रिटिश पूँजी निवेश के लिए खोलना**- ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप बड़ी मात्रा में पूँजी का संचय हो गया था। अत: प्रश्न यह था इस पूँजी को कहाँ निवेशित किया जाये कि पूँजी पर अधिक मुनाफा प्राप्त हो सके। चूँकि उपनिवेश में श्रम सस्ता था, इसलिए पूँजी पर अधिक मुनाफे की गुंजाईश थी। अत: 1858 के पश्चात् भारत में बड़ी मात्रा में ब्रिटिश पूँजी का आगमन हुआ तथा यह पूँजी रेलवे, खनन क्षेत्र, नौपरिवहन क्षेत्र, सरकारी खर्च, चाय एवं कॉफी बागान आदि क्षेत्रों में लगायी गयी। इस काल में भारत सरकार का एक महत्वपूर्ण दायित्व रहा था भारत में ब्रिटिश पूँजी निवेश को प्रोत्साहन देना तथा भारत से ब्रिटेन की ओर कर्ज की अदायगी।
2. **भारत में 1857 के महाविद्रोह जैसी घटना की पुनरावृत्ति को रोकना**- 1857 के महाविद्रोह के समय भारत में ब्रिटिश शासन का लगभग खात्मा हो चुका था। अत: इस घटना से ब्रिटिश ने बड़ी सीख ली और 1857 के पश्चात् ब्रिटिश नीति का मुख्य बल रहा था 1857 के महाविद्रोह जैसी घटना की पुनरावृत्ति को रोकना।

राजनीतिक नीति

1857 के महाविद्रोह से ब्रिटिश सरकार ने बड़ी सीख ली। उसने उस विद्रोह के मध्य महसूस किया कि यह विद्रोह मुख्यत: प्रत्यक्ष नियंत्रण वाले क्षेत्र में घटित हुआ था, जबकि अप्रत्यक्ष नियंत्रण वाला क्षेत्र अपेक्षाकृत शांत था। इसलिए ब्रिटिश क्राउन ने प्रत्यक्ष नियंत्रण की जगह अप्रत्यक्ष नियंत्रण पर बल दिया।

1 नवम्बर, 1858 को महारानी विक्टोरिया की घोषणा आयी। उसमें भारतीय राज्यों की विलय की नीति का परित्याग किया गया। साथ ही, भारतीय शासकों को यह आश्वासन दिया गया कि कम्पनी के द्वारा उनके साथ जो भी अनुबंध अथवा समझौते किये गये हैं, उन्हें सुरक्षित रखा जायेगा।

परंतु इसका अर्थ यह नहीं था कि इस घोषणा के पश्चात् ब्रिटिश क्राउन और भारतीय राज्यों के बीच संबंधों का आधार बदल चुका था, बल्कि केवल ब्रिटिश क्राउन ने अपने कार्य करने का तरीका बदला था और प्रत्यक्ष नियंत्रण की जगह अप्रत्यक्ष नियंत्रण पर बल दिया गया। व्यवहार में भारतीय राज्य अपनी शक्ति और प्रभाव खोते रहे।

1. 1876 में लॉर्ड लिटन द्वारा राजकीय उपाधि अधिनियम लाया गया। इसके आधार पर महारानी विक्टोरिया अब भारत की साम्राज्ञी बन चुकी थी। 1877 में दिल्ली दरबार का आयोजन हुआ जिसमें भारतीय शासकों को शामिल होना पड़ा। अब उनकी वास्तविक स्थिति सामंतों की तरह हो गई तथा ब्रिटिश क्राउन ही तय करने लगा कि किस शासक को कौन-सी उपाधि और किसे, कितनी तोपों की सलामी मिलेगी।
2. इस महाविद्रोह के पश्चात् लॉर्ड कैनिंग के द्वारा भारतीय शासकों के संबंध में एक नयी नीति आरंभ की गई। उसके अनुसार, भारतीय शासक और कुलीन, सामान्य भारतीयों के नेता होते हैं। अत: जब तक ब्रिटिश का उन पर प्रभाव रहेगा ब्रिटिश शासन सुरक्षित रहेगा। इसी नीति के तहत उन्होंने भारतीय राज्यों को संरक्षण देना आरंभ किया। परन्तु आगे इन राज्यों को ब्रिटिश ने संकेत दे दिया कि उन्हें तभी तक संरक्षण प्राप्त होगा, जब तक उनका अपनी प्रजा पर प्रभाव है क्योंकि तभी ये शासक ब्रिटिश के लिए उपयोगी हो पाते।

3. इसी काल में आधुनिक यातायात एवं संचार व्यवस्था के रूप में रेलवे और टेलीग्राफ का विकास हो रहा था। भारतीय शासकों पर यह दबाव था कि वे रेलवे और टेलीग्राफ लाइन को अपने क्षेत्र में जाने से नहीं रोक सकते थे। इस तरह व्यावहारिक रूप से आधुनिक यातायात एवं संचार के माध्यम से भारतीय राज्य ब्रिटिश भारत के साथ जकड़े जा चुके थे।

प्रशासनिक नीति

इस दौर में अंग्रेज़ों की प्रशासनिक नीति का मूल उद्देश्य भारतीयों को असंतुष्ट किये बिना भारतीय प्रशासन पर अपनी पकड़ को मज़बूत करने पर था–

- ब्रिटिश क्राउन द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन को समाप्त कर भारतीय प्रशासन का नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया गया।
- भारत के प्रशासन के लिये लंदन में एक 'राज्य सचिव' के पद का सृजन किया गया, यह भारतीय प्रशासन का मुख्य अधिकारी था। उसके कार्यों में सहायता के लिये एक 15 सदस्यीय परिषद् का गठन किया गया।
- भारत का प्रशासन गवर्नर-जनरल के हाथों में ही रहा तथा प्रांतों में भी गवर्नर बने रहे, किंतु भारत के गवर्नर-जनरल को अब वॉयसराय कहा जाने लगा क्योंकि वह अब ब्रिटिश ताज का प्रतिनिधि था।
- 1861 के अधिनियम के आधार पर प्रशासनिक शक्ति का पृथक्करण शुरू हुआ। उदाहरणस्वरूप, कानून बनाने की शक्ति प्रांतों के पास फिर से वापस आ गई थी। यह प्रक्रिया 1919 के भारतीय शासन अधिनियम तक पूरी हो चुकी थी।
- वित्तीय शक्तियों के हस्तांतरण की प्रक्रिया लॉर्ड मेयो के काल में शुरू हुई और लिटन एवं रिपन के काल में इसका काफी विकास हुआ।
- सिविल सेवाओं में सुधार हेतु पहल की गई एवं एक नई सेवा के रूप में 'स्टेट्यूटरी सिविल सर्विस' की शुरुआत की गई। इस सेवा में कुछ कुलीन भारतीयों को प्रतिनिधित्व दिया जाना था।
- **सैनिक सुधार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए-**
  - सेना में भारतीय सैनिकों की संख्या को यूरोपीय सैनिकों की संख्या द्वारा प्रतिसंतुलित किया गया।
  - तोपखाने जैसे महत्त्वपूर्ण विभाग को ब्रिटिश रेजीमेंट के अंतर्गत ही रखा गया।
  - भारतीय रेजिमेंटों को जाति और क्षेत्र के आधार पर विभाजित किया गया।
  - 'लड़ाकू जाति' के सिद्धांत के तहत राजनीतिक दृष्टि से सजग क्षेत्रों से सैनिकों की नियुक्ति को हतोत्साहित किया गया।
- भारत में 1861 के अधिनियम द्वारा पुलिस प्रशासन का पुनर्गठन किया गया।

प्रश्नः 1858 के पश्चात् भारत में ब्रिटिश क्राउन के द्वारा प्रशासन के क्षेत्र में किये जाने वाले सुधारों का मौलिक उद्देश्य 1857 के महाविद्रोह जैसी घटना की पुनरावृत्ति को रोकना था। परीक्षण कीजिए।

उत्तरः 1858 के वर्ष को भारत में ब्रिटिश शासन के इतिहास में एक नये युग का आरंभ माना जाता रहा है। 1858 में भारत का प्रशासन ब्रिटिश क्राउन ने अपने हाथों में ले लिया तथा भारत में अनेक प्रकार के प्रशासनिक सुधार के लिए पहल की गई। परन्तु गौर से देखने पर यह ज्ञात होता है कि ये सुधार महज ढाँचे के स्तर पर रहा था, उद्देश्य के स्तर पर नहीं।

भारत के प्रशासन के लिए लंदन में भारत सचिव के पद एवं उसके कार्यों में सहायता के लिए 15 सदस्यीय परिषद् का गठन किया गया। भारत में गवर्नर-जनरल और गवर्नर पहले की तरह ही कायम रहे, किंतु भारत के गवर्नर-जनरल को अब वायसरॉय कहा जाने लगा।

1861 के अधिनियम के आधार पर विधि निर्माण का विकेन्द्रीकरण तथा उसके पश्चात् वित्तीय विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन दिया गया परन्तु उनमें भारतीयों को कोई भागीदारी नहीं दी गई।

सैन्य एवं पुलिस सुधार के क्षेत्र में भी पहल की गई, परन्तु उसका उद्देश्य भारत पर ज्यादा कठोर नियंत्रण बनाये रखना था। उसी प्रकार, सिविल सेवा अथवा लोकल सेल्फ गवर्मेंट जैसे सुधार महज भारतीय राष्ट्रवादियों के बहलाने के लिए लिये लाये गये थे।

कुल मिलाकर उपर्युक्त जो भी सुधार दिखते हैं, वे ऊपरी एवं सतही थे तथा उनका वास्तविक उद्देश्य भारत पर अधिक सक्षम नियंत्रण स्थापित करना था।

आर्थिक नीति

- **कृषि**
  1. भू-राजस्व की पुरानी पद्धति प्रचलित रही अर्थात् स्थायी बंदोबस्त, रैयतवाड़ी एवं महालवाड़ी व्यवस्था पहले की तरह कायम रही।
  2. सरकार के द्वारा किसानों की सुरक्षा के लिए कदम उठाकर अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। 1859 तथा 1885 का बंगाल रैयतवाड़ी अधिनियम के द्वारा किसानों को जमींदारों से सुरक्षा एवं 1879 के दक्कन सहायता कानून और 1900 के पंजाब लैण्ड एलिएनेशन एक्ट के द्वारा किसानों को महाजनों से रक्षा करने का प्रयत्न किया गया।

3. अकाल एवं ग्रामीण ऋणग्रस्तता जैसी ज्वलंत समस्या को भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा उठाया गया।

- **गृह व्यय**-प्रत्येक वर्ष ऋण एवं ब्याज की रकम भारत से लंदन हस्तांतरित होने लगा।
- **औद्योगीकरण की प्रवृत्ति**-भारतीय पूँजीपतियों की पहल पर भारत में औद्योगीकरण आरंभ हुआ।

भारत में ब्रिटिश पूँजी का आगमन तथा गृह व्यय की समस्या

- 1858 के पश्चात् भारत में बड़ी मात्रा में ब्रिटिश पूँजी का आगमन हो रहा था। यह पूँजी निम्नलिखित रूप में आ रही थी-

1. **ऋण के रूप में:** रेलवे, सरकारी खर्च आदि पर ऋण लिया गया था। यह ऋण ब्याज के साथ वापस जा रहा था।
2. **निवेश के रूप में:** जहाजरानी उद्योग, खनन उद्योग, चाय एवं कॉफी, बागान उद्योग व्यापार में निवेश आदि। यह पूँजी मुनाफे के साथ भारत से लंदन वापस जा रही थी।

गृह व्यय (Home Charges) से क्या तात्पर्य है?

- गृह व्यय से तात्पर्य है प्रतिवर्ष भारत से लंदन की ओर एक निश्चित रकम का हस्तांतरण। यह रकम भारत सरकार का दायित्व था। इसमें कई मदें शामिल थीं-

1. रेलवे पर प्रत्याभूत ब्याज।
2. सरकारी कर्ज पर ब्याज।
3. ब्रिटेन में भारतीय सैनिकों के लिए की जाने वाली सैनिक सामग्रियों की खरीद, भारत सचिव के लंदन ऑफिस का खर्च आदि।
4. अवकाश प्राप्त ब्रिटिश अधिकारियों की पेंशन (यह गौर करने वाली बात है कि गृह व्यय में ब्रिटिश ऋण की राशि शामिल है, परन्तु निवेश की राशि शामिल नहीं है।)

गृह व्यय की प्रकृति के बारे में विवाद

- दादाभाई नौरोजी ने गृह व्यय की आलोचना करते हुए उसे धन की निकासी करार दिया। उन्होंने निम्नलिखित आधार पर इसकी आलोचना की-

1. ब्रिटिश ने अत्यधिक ब्याज पर ऋण लेकर रेलवे में पूँजी लगाई, जबकि भारत की जरूरत थी सिंचाई व्यवस्था का विकास, न कि रेलवे।
2. ब्रिटिश ने जो पूँजी (रकम) निवेश की थी, वह कोई नई रकम नहीं थी, बल्कि वह रकम थी जो ब्रिटिश पहले उठा कर ले जा चुके थे।
3. अगर सिविल सेवा का भारतीयकरण पर दिया जाता, तो भारत से लंदन की ओर रकम भेजने की जरूरत नहीं रह जाती क्योंकि अवकाश प्राप्त अधिकारी भारत के अंदर ही होते।

- मैरिसन जैसे ब्रिटिश पक्षधर विद्वानों ने धन की निकासी की अवधारणा को अस्वीकार किया है। उनके अनुसार, गृह व्यय की रकम अधिक नहीं थी और फिर यह रकम भारत के विकास के लिए आवश्यक थी।
- **संतुलित विचार:** यद्यपि गृह व्यय की सम्पूर्ण रकम धन की निकासी नहीं थी, किन्तु उसका एक बड़ा भाग धन की निकासी अवश्य थी, जबकि एक भाग भारत पर खर्च हुआ था।

क्या केवल गृह व्यय के एक भाग को ही धन की निकासी के अंतर्गत रखा जाना चाहिए अथवा उसमें और भी मदों को शामिल करने की जरूरत है?

इसमें निम्नलिखित मदों को भी शामिल किया जाना चाहिए-

1. ब्रिटिश अधिकारियों के वेतन का वह भाग जो वे यहाँ से बचाकर लंदन भेजते थे।
2. ब्रिटिश व्यापारियों का मुनाफा, जो वे भारत से ब्रिटेन ले जाते थे।
3. 1870 के दशक में जब स्वर्ण आधारित ब्रिटिश पाउण्ड की तुलना में चाँदी आधारित भारतीय रूपया का अवमूल्यन हुआ, तो निकासी की वास्तविक रकम बढ़ गयी।

धन की निकासी पर दादाभाई नौरोजी के विचारों की सीमाएँ दर्शाइये-

1. वे सिद्ध करना चाहते थे कि जो रकम भारत से बाहर हस्तांतरित हुई थी, वह धन नहीं था, बल्कि पूँजी थी।
2. भारत के शोषण के लिए भारत में कार्य करने वाले बस मुठ्ठीभर अंग्रेज उत्तरदायी थे।
3. वे धन की निकासी के आकलन में सिर्फ सरकारी हस्तांतरण की गणना करते हैं, निजी तौर पर किये जाने वाले हस्तांतरण की नहीं।

- फिर भी, दादाभाई नौरोजी को इस बात का श्रेय अवश्य मिलना चाहिए कि वे ऐसे आर्थिक चिंतक हैं जिन्होंने कार्ल मार्क्स के बाद औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की इतनी व्यापक आलोचना की हो।

भारत में आधुनिक उद्योगों का उदय

- भारतीय पूँजीपतियों द्वारा पश्चिमी तट पर कपास से निर्मित वस्तुओं के उद्योगों की आधारशिला रखी गई। कावसजी नानाभाई के नेतृत्व में बम्बई प्रेसीडेंसी के भड़ौच में पहली बार सूती वस्त्र उद्योग की शुरुआत की गई। तत्पश्चात् बहुत जल्द ही पश्चिमी तट पर सूती वस्त्र के कई उद्योग शुरू हो गए।
- 1855 में एक ब्रिटिश उद्यमी जॉर्ज ऑकलैंड ने बंगाल के रिशरा में पहली आधुनिक जूट मिल की स्थापना की। तत्पश्चात् बंगाल जूट मिल उद्योगों का एक प्रमुख केंद्र बन गया।
- ब्रिटिश नीति का ज़ोर भारत में औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने पर नहीं था। इसलिये औद्योगीकरण के मार्ग में कई बाधाएँ सामने आईं, जो इस प्रकार थीं-

1. तकनीकी शिक्षा की कमी और प्रशिक्षित श्रमिकों की कमी।
2. साख (Credit) की अनुपलब्धता।
3. ब्रिटिश प्रबंध एजेंसियों का पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण।
4. भारतीय उद्योगों के संरक्षण का अभाव।

भारत में औद्योगीकरण की प्रगति

1. **प्रथम विश्वयुद्ध**- प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप यूरोपीय अर्थव्यवस्था में संकट का दौर आरंभ हो गया था। इस स्थिति का लाभ भारतीय अर्थव्यवस्था को मिला। इस अवधि के दौरान भारतीय पूँजी का निवेश सीमेंट उद्योग, कागज़ उद्योग, काँच उद्योग, लोहा और इस्पात आदि उद्योगों में हुआ।
2. **विश्व आर्थिक मंदी (1929-30 ई.)**– यह पूँजीवाद का दूसरा संकट था। वैश्विक आर्थिक मंदी के दौरान पश्चिमी पूँजीवादी देशों में माँग एवं आपूर्ति श्रृंखलाएँ बाधित हो गईं। इसके परिणामस्वरूप यूरोप से होने वाले आयात में कमी आई। इसका लाभ घरेलू पूँजीपतियों को मिला। घरेलू माँग को पूरा करने के लिये इन देशी पूँजीपतियों द्वारा नवीन उद्योगों की स्थापना की गई।
3. **द्वितीय विश्वयुद्ध**- इस अवधि के दौरान भी भारतीय उद्योगों का काफी विकास हुआ।

प्रश्नः ब्रिटिश भारतीयों के प्रति पितृवत् चिंतन व्यक्त करते थे, परन्तु ब्रिटिश शासन के अंतर्गत घटित होने वाले बार-बार अकाल उनकी वास्तविकता की पोल खोलते जान पड़ते। टिप्पणी कीजिए।

उत्तरः ब्रिटिश भारतीयों को यह एहसास दिलाने का प्रबल प्रयत्न कर रहे थे कि वे भारतीयों के शुभ चिंतक हैं। परन्तु उस काल में बार-बार घटित होने वाले अकाल तथा उन अकालों के प्रति ब्रिटिश प्रतिक्रिया अलग प्रकार की वास्तविकता को दर्शाते हैं। (उनकी साम्राज्यवादी स्वार्थता को दर्शाते हैं)।

भारतीय इतिहास के अधिकांश काल में अकाल के लिए जलवायु संबंधी कारक उत्तरदायी माने जाते रहे हैं, परन्तु ब्रिटिश शासन के अंतर्गत घटित अकालों के लिए बहुत हद तक ब्रिटिश नीति उत्तरदायी रही थी, यथा- किसानों पर भू-राजस्व का अत्यधिक अधिभार, कारीगरी उद्योगों का पतन, नकदी फसलों की खेती के कारण मोटे अनाजों की पैदावार में गिरावट, भारत से बाहर अनाजों का निर्यात करना आदि।

सबसे बढ़कर, अकाल को दूर करने के लिए ब्रिटिश ने कोई ठोस कदम नहीं उठाये। 1877-78 में गुजरात एवं दक्कन के अकाल के पश्चात् उस पर विचार करने के लिए स्ट्रैची कमीशन का गठन हुआ। उसकी अनुशंसा पर 1883 में अकाल संहिता निर्मित हुई। उसमें प्रावधान था कि अगर तीन-चौथाई फसल नष्ट हो जाये तो भू-राजस्व की राशि माफ कर दी जायेगी, किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं हो पाता था।

सबसे बढ़कर, किसानों की पहली जरूरत थी भू-राजस्व का दबाव कम करना, परन्तु इस पर ब्रिटिश सरकार कोई भी रियायत देने के लिए तैयार नहीं थी।

इसलिए भारतीयों के संदर्भ में ब्रिटिश सरकार की कथनी और करनी में काफी अंतर था।

प्रश्नः ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत के आधुनिक उद्योगों के विकास पर आलोचनात्मक टिप्पणी कीजिए।

उत्तरः ब्रिटिश साम्राज्यवादी लेखकों ने भारत के आधुनिकीकरण का श्रेय ब्रिटिश को देते हुए यह दावा किया कि ब्रिटिश ने भारत में औद्योगीकरण किया। परन्तु सूक्ष्म परीक्षण करने के पश्चात् निम्नलिखित बातें प्रकट होती हैं। प्रथम, ब्रिटिश ने सदा भारत में उद्योगों के विकास को रोकने का प्रयास किया था। इसका कारण था भारत का विकास ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं के उत्पाद के रूप में करने का प्रयास। इसलिए ब्रिटिश अधिकारियों ने बैंकिंग, मैनेजिंग एजेंसी आदि क्षेत्रों में भारतीय उद्योगों के साथ एक प्रकार का भेदभाव किया।

दूसरे, भारतीय पूँजीपतियों ने ब्रिटिश विरोध के बावजूद अपने प्रयास से औद्योगीकरण के लिए पहल की थी। आगे की घटनाओं से यह ज्ञात होता है कि भारत में आधुनिक उद्योगों की प्रगति तब हुई, जब भारत पर ब्रिटेन का औद्योगिक नियंत्रण कमजोर हुआ। इसे निम्नलिखित कारणों से जोड़ कर देखा जाता है-

1. **प्रथम विश्व युद्ध का प्रभावः**- इस काल में ब्रिटिश पूँजीवाद का मुख्य कार्य क्षेत्र ब्रिटेन हो गया तथा भारत पर ब्रिटिश पूँजी का दबाव कम हुआ। भारतीय पूँजीपतियों ने उसका फायदा उठाकर नये क्षेत्रों में पूँजी का विस्तार किया। उदाहरण के लिए, लौह-इस्पात उद्योग, कागज उद्योग, शीशा उद्योग, माचिस उद्योग आदि। इसके अतिरिक्त

घनश्याम दास बिरला एवं हुकुम चंद ने बंगाल में उद्योग स्थापित करने के लिए कदम रखे। इस काल में भारतीय पूँजीवाद का एक स्वाभाविक परिणाम था 1927 में फिक्की का गठन।

2. **1928-30 की विश्व आर्थिक मंदी:-** इस मंदी के काल में संकट का सामना करने के लिए ब्रिटिश पूँजी भारत से निकल गयी। इसका फायदा भारतीय पूँजीपतियों को मिला।

3. **द्वितीय विश्व युद्ध:-** द्वितीय विश्व युद्ध के काल में भारतीय पूँजीपतियों ने ब्रिटिश पूँजी के संकट का फायदा उठाकर नए क्षेत्र में विस्तार किया।

प्रश्न: यह स्पष्ट कीजिए कि 1857 का विप्लव (विद्रोह) किस प्रकार भारत के प्रति ब्रिटिश नीति के विकास क्रम में एक ऐतिहासिक मोड़ सिद्ध हुआ?

उत्तर: 1857 के विप्लव ने भारत में ब्रिटिश शासन को लगभग समाप्त कर दिया था। अत: इस विप्लव के दमन के पश्चात् भारत में ब्रिटिश नीति की पहली प्राथमिकता रही थी इसकी पुनरावृत्ति की संभावना को समाप्त करना।

अत: 1858 के पश्चात् भारत के संबंध में ब्रिटिश नीति को उपर्युक्त उद्देश्य के परिप्रेक्ष्य में समझने की जरूरत है। ये इस प्रकार हैं -

1. भारत का प्रशासन सीधे ब्रिटिश क्राउन के अंतर्गत ले लिया गया तथा महारानी विक्टोरिया की प्रसिद्ध घोषणा ने क्राउन एवं भारतीय शासकों के बीच विश्वास बहाल करने का प्रयास किया।
2. प्रशासनिक क्षेत्र में इस प्रकार से सुधार एवं परिवर्तन लाये गये, ताकि एक तरफ भारतीयों पर ब्रिटिश नियंत्रण मजबूत हो, दूसरी तरफ उनमें ब्रिटिश शासन के विरूद्ध असंतोष भी न हो। इसे निम्नलिखित उदाहरणों के माध्यम से समझा जा सकता है- भारत के प्रशासन के लिए 'भारत सचिव' पद का सृजन, 1861 के अधिनियम के आधार पर प्रशासनिक विक्रेन्द्रीकरण तथा 1870 के दशक तक वित्तीय विक्रेन्द्रीकरण का आरंभ, साथ ही 'स्टेट्यूटरी सिविल सेवा' का सृजन कर पहली बार कुछ भारतीयों को शामिल करना।
3. फिर ब्रिटिश शासन को ठोस आधार देने के लिए आंतरिक सुरक्षा को मजबूत करना आवश्यक था। अत: सैन्य एवं पुलिस सुधार के लिए कदम उठाये गये। सैन्य सुधार के क्रम में भारतीय तथा यूरोपीय तत्वों के बीच संतुलन बनाये रखने, तोपखाना यूरोपीय अधिकारियों के अधीन रखने तथा विभिन्न रेजिमेंटों को जाति एवं क्षेत्र के आधार पर विभाजित करने का निर्णय लिया गया।
4. अंत में, ब्रिटिश शासन को दीर्घजीवी बनाने के लिए 'फूट डालो और राज करो' की नीति के तहत हिन्दू और मुस्लिम को परस्पर विभाजित करने का प्रयास किया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत के संदर्भ में ब्रिटिश भारत के इतिहास में 1857 का महाविप्लव एक विभाजक रेखा सिद्ध हुआ।

सामाजिक नीति

- 1857 के महाविद्रोह से सबक लेते हुए ब्रिटिश क्राउन द्वारा भारत के सामाजिक क्षेत्र के मामले में अहस्तक्षेप की नीति अपनाई गई। इस काल में ब्रिटिश के द्वारा जो भी सुधार और परिवर्तन किये गए, वे भारतीय राष्ट्रवादियों के दबाव में आकर किये गए थे। उदाहरण के लिए बहराम जी मालावाड़ी की पहल पर 1891 में 'एज ऑफ कसेंट बिल' लाया गया। इसके आधार पर लड़कियों के विवाह की उम्र बढ़ायी गयी। उसी प्रकार 1929-30 में हर विलास शारदा की पहल पर 'शारदा एक्ट' लाया गया जिसके तहत लड़के एवं लड़कियाँ दोनों के विवाह की उम्र बढ़ायी गयी।

सांस्कृतिक नीति

- ब्रिटिश द्वारा नस्लीय भेदभाव की नीति पर बल देते हुए भारतीयों को असभ्य एवं बर्बर के रूप में चित्रित किया गया। यहाँ तक कि 'विक्टोरियाई साइंस' ने भी नस्लीय विभाजन का समर्थन किया।
- ब्रिटिश ने हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच विभाजन के लिये 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई।
- ब्रिटिश के द्वारा धर्म के आधार पर जनगणना पर बल दिया गया।

■■■

राष्ट्रवाद किसे कहा जाता है?

- सामान्य परिभाषा के रूप में हम ऐसा कह सकते हैं कि राष्ट्र, लोगों के ऐसे समुदाय को कहते हैं जिनका आपस में जुड़ाव होता है, जो किसी खास भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं, जो एक ही ऐतिहासिक शक्ति की उपज होते हैं। वस्तुत: राष्ट्रवाद को प्रेरित करने में परंपरा, संस्कृति, भौगोलिक एकता आदि कारकों की भूमिका होती है।
- राष्ट्रवाद का आरंभिक मॉडल पश्चिमी यूरोप में विकसित हुआ था। यह सामंतवाद का पूँजीवाद में रूपांतरण का परिणाम था।
- भारत में राष्ट्रवाद के उद्भव की पृथक प्रक्रिया रही थी। यहाँ राष्ट्रवाद का विकास निम्नलिखित प्रक्रिया के रूप में समझ सकते हैं -

1. राष्ट्रवाद की आरंभिक अभिव्यक्ति ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुई। इसे **आद्य राष्ट्रवाद** का नाम दिया गया है।
2. दूसरा चरण पश्चिमी विचारों के साथ आदान-प्रदान के माध्यम से संभव हुआ। इसे हम **आधुनिक राष्ट्रवाद** के रूप में जानते हैं।

भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में पश्चिमी विचार

- **पहला विचार**- ब्रिटिश अधिकारी जॉन स्ट्रैची और ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल मानते थे कि भारत न कभी राष्ट्र था और न कभी हो सकता है क्योंकि भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता अत्यधिक है।
- **दूसरा विचार**- पश्चिमी विचारक बेनेडिक्ट एंडरसन (इमेजिंड कम्युनिटी नामक लेख में) ने भारत में राष्ट्रवादी भावनाओं के उभार का श्रेय ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को दिया है। उनके अनुसार भारत में आधुनिक राष्ट्रवाद ब्रिटिश व्यवस्था के अनचाहे परिणाम के रूप में आया। कुल मिलाकर हम ऐसा कह सकते हैं कि ब्रिटिश शासन ने निम्नलिखित रूप में भारत को राष्ट्र बनने में अपना योगदान दिया, भले ही यह अनचाहा रहा हो-

1. **अंग्रेजी शिक्षा** के माध्यम से भारतीयों का एक वर्ग पाश्चात्य विचारों के सम्पर्क में आया, जिसने उन्हें आधुनिक, तर्कसंगत एवं विवेकपूर्ण राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाने का अवसर प्रदान किया। भारतीय बुद्धिजीवी भी अब स्वतंत्रता, समानता तथा प्रतिनिधित्व जैसे सिद्धांतों का महत्त्व समझने लगे थे। पाश्चात्य राजनीतिक घटनाओं; जैसे- अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम, फ्रांस की क्रांति, इटली, स्पेन, यूनान की क्रांतियों एवं इनके राजनीतिक महत्त्व को समझने में अंग्रेजी शिक्षा ने काफी मदद् की। इसी प्रकार मिल्टन, शेली, बायरन, वॉल्टेयर, रूसो आदि की विचारधाराओं से भारतीयों का परिचय हुआ।
2. **आधुनिक यातायात एवं संचार व्यवस्था;** जैसे- रेलवे, डाक एवं तार के विकास के परिणामस्वरूप एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों के बीच संपर्क बढ़ा। उन्नत यातायात के साधनों के परिणामस्वरूप भारत में क्षेत्रीयता की भावना का ह्रास हुआ। जनता एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्रों में जल्द आ-जा सकने लगी। बुद्धिजीवियों का भी आपसी संपर्क बढ़ा एवं इस तरह एक-दूसरे के विचार एवं समस्याओं से परिचय का भाव पैदा हुआ एवं स्वाभाविक रूप से एक अखिल भारतीय कार्यक्रम बनाना संभव हो सका।
3. **प्रिंट मीडिया** के कारण आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विचारों का तेजी से प्रसार हुआ। इसकी मदद् से ही भारतीय राष्ट्रवादी लोगों के बीच प्रतिनिध्यात्मक सरकार, स्वतंत्र लोकतांत्रिक संस्थाओं, स्वाधीनता आदि जैसे विचारों का प्रचार सुगमतापूर्वक संभव हुआ।
4. **जनगणना** ने लोगों में समुदाय की भावना को मजबूत किया और एकता की भावना को बल प्रदान किया।
5. **प्रशासनिक एकीकरण**- ब्रिटिश ने भारत की भौगोलिक सीमा को स्पष्ट कर उसे एक पहचान दी। अर्थात् ब्रिटिश शासन ने अपने औपनिवेशिक आर्थिक एवं राजनीतिक हितों से परिचालित होकर समस्त देश को राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से एक सूत्र में बाँध दिया।

भारतीय विद्वानों द्वारा प्रतिवाद

1. अंग्रेजों ने हमेशा देशी भाषाओं के राष्ट्रीय प्रेस को कुचलने का प्रयास किया।
2. जाति और समुदाय पर आधारित जनगणना ने भारत को विभाजित करने का प्रयास किया।
3. प्राचीन काल से ही भारत भौगोलिक एकता की भावना रखता था।

राष्ट्र के पश्चिमी मॉडल और भारतीय मॉडल के बीच अंतर

1. एकरूपता बनाम विविधता अर्थात् राष्ट्रवाद का पाश्चात्य मॉडल भारतीय मॉडल से पृथक था। भारत एक महाद्वीपीय आकार वाला देश था तथा यहाँ बहुत अधिक सांस्कृतिक विविधता थी।
2. एक एकल राष्ट्रीय भाषा के स्थान पर भारत ने 14 प्रादेशिक भाषाओं को आधिकारिक भाषाओं का दर्जा दिया (वर्तमान में यह संख्या बढ़कर 22 हो गई है)।

3. भारत ने भाषायी राज्यों के सृजन और राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के बारे में व्यावहारिक नीति अपनाते हुए विविधता में एकता का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया।

प्रश्नः क्या हम ऐसा कह सकते हैं कि भारत में राष्ट्रवाद का उद्भव ब्रिटिश शासन की देन था?

उत्तरः यद्यपि यह सही है कि ब्रिटिश ने भारत में ऐसे कारकों को जन्म दिया, जिन्होंने राष्ट्र के रूप में भारत के विकास में अपनी भूमिका निभाई, फिर भी हम ऐसा नहीं कह सकते कि भारत में राष्ट्रवाद केवल ब्रिटिश शासन की देन है। इसके निम्नलिखित कारण हैं-

1. भारत में प्राचीन काल से जम्बूद्वीप की अवधारणा चली आ रही थी, जो भारत को एक भौगोलिक इकाई होने का एहसास दिलाती है।
2. जैसा कि ब्रिटिश विद्वान क्रिस्टोफर बायली भी मानते हैं कि 'भारत में प्राचीन काल से देशभक्ति, अच्छी सरकार आदि की अवधारणा प्रचलित थी।'

राष्ट्रवाद का विकास

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने भारत के विभिन्न सामाजिक वर्गों पर अपना प्रभाव छोड़ा और उनकी प्रतिक्रिया भी अलग-अलग हुई। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश शासन ने कुछ पुराने राजाओं और नवाबों को विस्थापित किया, आदिवासी समूह तथा किसानों का शोषण किया। अतः उनके द्वारा समय-समय पर विद्रोह एवं आन्दोलन संगठित किये गये। दूसरी तरफ, इसने शिक्षित भारतीयों पर अलग प्रकार का प्रभाव छोड़ा।

सिविल अथवा नागरिक आंदोलनः-

ब्रिटिश भारत में राजाओं, नवाबों और जमींदारों को उनके पद से विस्थापित कर दिया गया। इस कारण कुछ अधिकारी एवं सैनिक भी बेरोजगार हो गये। अतः राजा, नवाब, जमींदार एवं बेरोजगार सैनिक भी समय-समय पर विद्रोह करते रहे। फिर चूँकि उनकी प्रजा को उनसे लगाव होता था, अतः वे भी अपने स्वामी के साथ खड़े हो जाते थे। उदाहरण के लिए, हम कुछ विद्रोहों को देख सकते हैं -

1. **संन्यासी विद्रोह, बंगाल (1763-1800 ई.)**- बंगाल में अंग्रेजों द्वारा स्थापित नई अर्थव्यवस्था के कारण बेदखल हुए किसान, विघटित सिपाही, सत्ताच्युत जमींदार और धार्मिक नेता इस विद्रोह में शामिल थे। ये मूलतः कृषक थे, लेकिन इन्होंने संन्यासी का रूप धारण कर लिया था। इस आंदोलन का मुख्य केन्द्र बिहार तथा बंगाल था। ब्रिटिश सरकार ने सैन्य कार्यवाही कर इस विद्रोह को निर्ममतापूर्वक दबा दिया। इस विद्रोह में हिंदू तथा मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया था।
2. **विजयनगरम् के राजा का विद्रोह (1794 ई.)**-1765 ई० में उत्तरी सरकार का जिला ब्रिटिश को प्राप्त हुआ। 1794 ई० में विजयनगरम् के शासक की स्वतंत्रता पर अंकुश लगा दिया गया। उसकी सेना भंग कर दी गई। फलतः इस क्षेत्र के लोगों ने विद्रोह कर दिया।
3. **त्रावणकोर के दीवान वेलु थंपी का विद्रोह (1805 ई.)** - त्रावणकोर के शासक पर सहायक संधि थोप दी गई। उस पर अनेक प्रकार का नियंत्रण लगाया गया। अतः क्रूर ब्रिटिश नीति के विरुद्ध त्रावणकोर के दीवान वेलु थंपी ने विद्रोह किया।
4. **तमिलनाडु में कित्तूर की रानी चेन्नम्मा का विद्रोह (1824 ई.)**- कित्तूर में उस समय एक प्रबल विद्रोह हुआ, जब 1824 ई० में स्थानीय शासक की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने गोद लिए गए कित्तूर के उत्तराधिकारी को मान्यता देने से इन्कार कर दिया। इस पर दिवंगत शासक की विध वा रानी चेनम्मा ने विद्रोह कर दिया।
5. **मैसूर का विद्रोह (1831-34 ई.)**- टीपू की मृत्यु के बाद मैसूर का छोटा-सा राज्य वाडियार वंश के कृष्णराज तृतीय को दिया गया था एवं उस पर सहायक संधि थोप दी गई थी। चूँकि राजा को ब्रिटिश के लिए अधिक रकम उगाहनी थी, अतः किसानों पर भू-राजस्व की दर बढ़ा दी गई। फलतः जनता ने विद्रोह कर दिया।

जनजातीय आंदोलनः-

ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने अपने विस्तार के क्रम में जनजातीय क्षेत्रों पर भी कब्जा किया तथा फिर उस क्षेत्र का दोहन करने के क्रम में जनजातीय लोगों के जीवन में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। इस कारण जनजातीय लोगों में असंतोष उत्पन्न हुआ और वे समय-समय पर ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह करने लगे।

असंतोष के कारणः-

1. जनजातीय क्षेत्र में सामुदायिक संपत्ति की अवधारणा (खुँटकट्टी प्रथा) प्रचलित थी। परंतु ब्रिटिश ने भूमि पर निजी स्वामित्व की अवधारणा को आरोपित कर दिया तथा उनसे भू-राजस्व की बड़ी राशि वसूल की।
2. जिन क्षेत्रों में ब्रिटिश शासन का विस्तार हुआ, वहाँ जमींदार, ठेकेदार एवं महाजन जैसे शोषक समूह भी पहुँच गये।
3. ठेकेदारों द्वारा जनजातीय लोगों को अनुबंधित श्रमिकों के रूप में चाय बागान अथवा अन्यत्र काम करने के लिए भेजा गया।

4. जनजातीय क्षेत्रों में बेठ-बेगारी (जबरन बेगारी) का प्रचलन था तथा जनजातीय लोगों से मुफ्त में श्रम लिया जाता था।
5. अफीम की खेती पर पाबंदी तथा 'झूम कृषि' पर पाबंदी के विरूद्ध जनजातीय लोगों द्वारा प्रतिक्रिया व्यक्त की गई।
6. देशी शराब बनाने के बदले जनजातीय लोगों पर प्रत्येक घर के हिसाब से आबकारी कर लगाया गया।

प्रमुख विद्रोह एवं आंदोलनः-

1. **कोल जनजाति का विद्रोह (1831 ई.)**- छोटा नागपुर क्षेत्र की कोल जनजाति के लोगों में अपनी जमीन बाहरी किसानों को हस्तांतरित होने, देशी शराब पर उत्पाद शुल्क लगाने तथा जबरन अफीम उगाने के लिये बाध्य करने के कारण व्यापक असंतोष था। 1831 ई. में बुद्धो भगत के नेतृत्व में कोल विद्रोहियों ने हजारों बाहरी किसानों को मार दिया। ब्रिटिश सरकार ने एक बड़े सैन्य अभियान के तहत कानून व्यवस्था एवं शांति की पुनर्स्थापना की। इस विद्रोह की एक विशेषता रही कि इसके दमन के बाद ब्रिटिश शासन ने अनेक प्रशासनिक परिवर्तन किये, जिसका मुख्य उद्देश्य पिछड़े क्षेत्रों के प्रशासन को सरल एवं लचीला रूप देना था।
2. **संथाल विद्रोह (1855-56 ई.)**- 19वीं सदी के जनजातीय विद्रोहों में सबसे महत्त्वपूर्ण विद्रोह संथाल विद्रोह था। इसका प्रमुख क्षेत्र भागलपुर से राजमहल की पहाड़ियों के बीच, जिसे 'दामन-ए-कोह' के नाम से जाना जाता है, तक था। कृषि करने वाली संथाल जनजाति पर साहूकारों और जमींदारों ने अत्याचार कर उन्हें भूमि से बेदखल कर दिया था। इस विद्रोह के दो प्रमुख नेता सिद्धो तथा कान्हू थे। ब्रिटिश सरकार ने 1856 ई. में एक बड़ी सैन्य कार्यवाही के बाद संथाल विद्रोह को क्रूरतापूर्वक दबा दिया। इस विद्रोह के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने संथाल क्षेत्र को पृथक् जिला घोषित कर उसका नामकरण 'संथाल परगना' कर दिया। इसके साथ ही किसी संथाल आदिवासी द्वारा गैर-संथाल को भूमि अंतरण गैर-कानूनी हो गया।
3. **रंपा विद्रोह (1879 ई.)** - यह विद्रोह आंध्र प्रदेश के गोदावरी जिले के उत्तर में स्थित 'रंपा' पहाड़ी क्षेत्र में सर्वप्रथम 1879 ई. में राजू रंपा के नेतृत्व में हुआ। यह विद्रोह साहूकारों के शोषण तथा वन कानून, जिसमें झूम कृषि पर प्रतिबंध एवं इमारती लकड़ी तथा चराई कर में वृद्धि का प्रावधान था, के विरुद्ध हुआ था। विद्रोही अपने आप को राम की सेना (रामदंडु) कहते थे। लेकिन, ब्रिटिश सरकार ने 1880 ई. में विद्रोह को दबा दिया। एक बार फिर 1922 से 1924 ई. के बीच अल्लूरी सीताराम राजू के नेतृत्व में यह विद्रोह चलता रहा।
4. **मुण्डा अथवा उल्गुलन विद्रोह (1898-1900 ई.)**- 1899-1900 ई. में मुंडाओं ने राँची के दक्षिण क्षेत्र में बिरसा मुंडा के नेतृत्व में विद्रोह शुरू किया। यह एक महत्त्वपूर्ण आदिवासी विद्रोह था। मुंडा जनजाति में सामूहिक खेती का प्रचलन था, जिसे 'खुँटकट्टी' कहा जाता था। जागीरदारों के द्वारा खुँटकट्टी अधिकारों का उल्लंघन, अनुबंधित मजदूरों की समस्या एवं बेठ-बेगारी आदि कारणों ने मुंडा विद्रोह को जन्म दिया। मुंडा विद्रोह के संबंध में एक विशिष्ट बात यह है कि विद्रोह से पहले मुंडाओं ने कष्टों के निवारण के लिये वैधानिक उपायों का सहारा लिया, परन्तु जब उनकी उम्मीदें टूट गई, तभी उन्होंने विद्रोह किया।

इस आंदोलन में एक राजनीतिक और सामाजिक उद्देश्य से पूर्ण मसीहावादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। बिरसा ने अपने को बिरसा भगवान घोषित किया तथा साथ ही अपने को विष्णु के छोटे भाई के रूप में चित्रित किया। बिरसा मुंडा द्वारा प्रारंभ किया गया यह आंदोलन एक प्रकार का सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक आंदोलन था। हालाँकि, यह विद्रोह दबा दिया गया, किंतु बिरसा के महान नेतृत्व के कारण यह ऐतिहासिक बन गया। इसमें महिलाओं ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

किसान आंदोलनः-

भारत पर ब्रिटिश नियंत्रण का अर्थ था भारत के गाँवों पर नियंत्रण। इसलिए ब्रिटिश शासन का सबसे अधिक कुप्रभाव गाँवों को झेलना पड़ा एवं भारतीय किसान उसके शिकार हुए।

ब्रिटिश शासन का भारतीय किसानों पर निम्नलिखित प्रभाव देखा गयाः-

1. किसानों पर भू-राजस्व का अत्यधिक दबाव डाला गया तथा अकाल की स्थिति में भी उनसे जबरन भू-राजस्व वसूल करने का प्रयास किया गया।
2. ब्रिटिश शासन की विदेशी प्रकृति भी कृषक असंतोष का एक कारण थी। किसान अपने आप को ब्रिटिश द्वारा स्थापित संस्थाओं तथा अधिकारियों से नहीं जोड़ पा रहे थे।
3. नकदी फसलों को प्रोत्साहन दिये जाने के कारण अकाल एवं भुखमरी की घटनाओं में वृद्धि हुई।
4. ब्रिटिश व्यापार नीति तथा औद्योगिक नीति के कारण ग्रामीण हस्तशिल्प उद्योग का पतन हुआ तथा कृषि पर जनसंख्या का अधिभार बढ़ता गया। इसके कारण ग्रामीण गरीबी एवं ग्रामीण ऋणग्रस्तता को बल मिला।
5. ब्रिटिश शक्ति के विस्तार के साथ भारत में कुछ प्रसिद्ध शासक एवं जमींदार विस्थापित हो गए। कई बार किसानों ने इन विस्थापित तत्त्वों के पक्ष में भी विद्रोह किया।

कुछ महत्वपूर्ण किसान आंदोलनः-

1. **संन्यासी एवं फकीर विद्रोह, बंगाल (1763-1800 ई.)**
2. **पागलपंथी विद्रोह, बंगाल (1824 ई.)**-इस विद्रोह के नेता करमशाह थे। उत्तरी बंगाल में हुए इस अर्द्ध-धार्मिक प्रकृति के विद्रोह का मुख्य कारण जमींदारों द्वारा कृषकों का शोषण करना था। आगे चलकर किसानों ने टीपू (करमशाह का पुत्र) नामक एक फकीर को अपना नेता बनाया। टीपू, बाउल संप्रदाय का अनुयायी था। बाउल संप्रदाय के लोग एक-दूसरे को 'पागल' कहते थे। आगे इस विद्रोह ने कानूनी रूप ले लिया तथा रैयतों ने मैमनसिंह जिले में अपना एक कानूनी प्रतिनिधि तथा स्थायी प्रतिनिधि मंडल नियुक्त कर दिया।
3. **फराजी आंदोलन, बंगाल (1838-57 ई.)**- 1838 ई. से 1851 ई. तक अफीम की जबरन खेती के विरोध में फरीदपुर के हाजी शरीयतुल्ला ने किसानों को संगठित किया। इस विद्रोह का प्रमुख कारण अधिक भू-राजस्व का निर्धारण तथा बड़े स्तर पर किसानों को उनकी जमीनों से बेदखल करना था। बाद में उसके पुत्र दूदूमियाँ ने इस आंदोलन को आगे बढ़ाया।
4. **मोपला विद्रोह, मालाबार क्षेत्र (1836-54 ई.)**- मोपला मालाबार तट के कृषक थे। मालाबार में भी अंग्रेजों की भू-राजस्व व्यवस्था से किसान असंतुष्ट थे। ब्रिटिश शासन भू-स्वामियों के अधिकारों पर बल देता था। अतः उसने भू-बंदोबस्ती के क्रम में उच्च वर्ग के हिंदूओं, नंबूदरी तथा नायर जेनमियों की शक्ति को पुनः अधिकाधिक अधिकार के साथ स्थापित कर दिया। इनमें से अनेक को पहले टीपू ने दक्षिण की तरफ खदेड़ दिया था तथा उनकी भूमि मुसलमान कृषकों, जो मोपला कहलाते थे, को आबंटित कर दी थीं। ब्रिटिश व्यवस्था के तहत मोपलाओं की सामूहिक रूप से भूमि से बेदखली का एक परिणाम तो यह हुआ कि मुसलमानों में सामुदायिक एकजुटता बढ़ी। नई व्यवस्था में इन मोपला रैयतों को रेहनदार बना दिया गया। इसके परिणामस्वरूप मोपला रैयतों ने जेनमियों के खिलाफ हिंसा प्रारम्भ कर दी। 1836 ई. से 1854 ई. के मध्य इस क्षेत्र में जेनमियों के अत्याचार के विरुद्ध 22 विद्रोह हुए। इस विद्रोह ने जेनमियों की सम्पत्ति पर आक्रमण और उनके मंदिरों को नष्ट करने का स्वरूप धारण कर लिया, परन्तु मोपला असंतोष की जड़ें स्पष्टतः कृषि व्यवस्था में थी।
5. **नील आंदोलन (1859-60 ई.)**- मोपला आंदोलन को अपवाद में रखा जाए तो सबसे अधिक उग्र और विस्तृत किसान आंदोलन 1859-60 ई. का नील विद्रोह था। बंगाल के नादिया जिले में दिगंबर विश्वास और विष्णु विश्वास के द्वारा आरंभ किया गया यह विद्रोह देखते-देखते संपूर्ण बंगाल में फैल गया। इस विद्रोह का प्रमुख कारण नील उत्पादकों, जो अधिकांशतः यूरोपीय थे, द्वारा कृषकों को जबरन नील की खेती करने तथा उत्पादित नील को कम कीमतों पर बेचने को मजबूर करना था। इतना ही नहीं, किसानों को कम कीमत वाला पैसा भी नहीं दिया जाता था और प्रायः उन्हें ठग लिया जाता था। विद्रोह की व्यापकता को देखते हुए सरकार ने एक नील आयोग का गठन किया, जिसने नील किसानों की माँग को सही बताया। दीनबंधु मित्र ने 'नील दर्पण' में किसानों की इसी विजय-गाथा का वर्णन किया है।
6. **बंगाल का पाबना विद्रोह (1873 ई.)**- 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बंगाल के पाबना जिले में जमींदारों के शोषण के विरुद्ध विद्रोह हुआ। 1859 ई. के बंगाल रैयत कानून में रैयतों को सुरक्षा दी गई थी। रैयत उन लाभों को प्राप्त करना चाहते थे, परन्तु जमींदार इसमें व्यवधान उपस्थित कर रहे थे। इस आंदोलन की विशिष्टता यह थी कि इसमें केवल जमींदारों को निशाना बनाया गया, ब्रिटिश सरकार को नहीं। किसानों के प्रयासों से 1885 ई. में बंगाल रैयत कानून पारित हुआ जिसने किसानों को कुछ राहत प्रदान की। इस विद्रोह को केंद्र में रखकर मुशर्रफ हुसैन ने 'जमींदार दर्पण' नामक नाटक लिखा था।

मॉडल प्रश्नः- *यह इतिहास की विडम्बना है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध भारत में प्रारंभिक प्रतिरोध तथाकथित अशिक्षित एवं असभ्य कहे जाने वाले लोगों की ओर से हुआ। सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।*

1857 का महाविद्रोह

1757 ई. में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन एवं भारत के विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच हितों की टकराहट प्रारंभ हो गई थी। इसके कारण आगामी 100 वर्षों तक अनेक छोटे विद्रोह एवं आंदोलन घटित होते रहे। अंत में, 100 वर्षों के पश्चात् 1857 का महाविद्रोह घटित हुआ, जो अपने भौगोलिक विस्तार, व्यापकता एवं तीव्रता में पिछले विद्रोहों एवं आंदोलनों से पृथक था। यह भारतीयों में संचित असंतोष एवं आक्रोश का परिणाम था।

कारण

1. **राजनीतिक कारण:**- ब्रिटिश विस्तारवादी नीति के कारण अनेक राजा और नवाब विस्थापित हुए, उनके साथ-साथ उनके अधिकारी एवं सैनिक भी बेरोजगार हो गए। इस महाविद्रोह में इन असंतुष्ट तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।
2. **आर्थिक कारण:**- ब्रिटिश बाजार के विस्तार के क्रम में भारतीय हस्तशिल्प उद्योगों को गहरा धक्का लगा। इसके परिणामस्वरूप लाखों कारीगर एवं शिल्पी बेरोजगार हो गए।
3. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण:**- ब्रिटिश ने 19वीं सदी में भारत में समाज सुधार में भी रुचि दिखाते हुए विभिन्न कानून; जैसे- सती प्रथा उन्मूलन (1829 ई.) और विधवा पुनर्विवाह कानून (1856 ई.) बनाए थे। फिर 1850 ई. में डलहौजी द्वारा एक धार्मिक निर्योग्यता कानून लाया गया, जिसका उद्देश्य भारत में ईसाई धर्म के प्रसार को प्रोत्साहन देना था। इससे पूर्व 1813 ई. में ही में ईसाई मिशनरियों को धर्म प्रसार की छूट दी जा चुकी थी, परंतु जब ब्रिटिश द्वारा भारत के सामाजिक-धार्मिक मामले में हस्तक्षेप किया गया तो भारतीय अपने दीन एवं धर्म की रक्षा के लिये खड़े हो गए।
4. **सैनिक कारण:**- ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सफलता में बंगाल सेना की अहम भूमिका रही थी। इस सेना ने पूर्व में बर्मा से लेकर पश्चिम में अफगानिस्तान तक ब्रिटिश साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। परंतु, उनके साथ फिर भी नस्लवादी भेदभाव किया जा रहा था। उदाहरण के लिये, ब्रिटिश सैनिकों की तुलना में उन्हें कम वेतन और भत्ता दिया जाता था। उससे भी अधिक आपत्ति उन्हें इस बात पर थी कि उनके धार्मिक मामले में हस्तक्षेप किया जा रहा था। उदाहरण के लिये, सैनिक ड्रिल में समान अनुशासन को लागू करने के नाम पर उनके धार्मिक प्रतीकों; यथा- मस्तक में टीका लगाने पर पाबंदी आदि।
5. **चर्बी वाले कारतूसों का मुद्दा (तात्कालिक कारक):** सैनिकों की नियुक्ति में ब्रिटिश का झुकाव साक्षर और शिक्षित सैनिकों की नियुक्ति पर रहा था। इसलिये उन्होंने उत्तरी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से उच्च जाति के लोगों को सेना में भर्त्ती किया था। इस कारण सैनिकों में स्वाभाविक रूप से जातीय संवेदनशीलता आ गई तथा चर्बी वाले कारतूस के मामले ने एक विस्फोटक रूप ले लिया। दरअसल, नई रायफल के कारतूस में लगे कागज को मुँह से काटना पड़ता था। सेना में यह अफवाह फैल गई कि इस कारतूस में गाय तथा सुअर की चर्बी मिली हुई है, जो कालांतर में सही साबित हई। अत: सैनिकों ने ऐसे कारतूस को चलाने से मना कर दिया। सैनिकों के विरुद्ध कम्पनी सरकार ने कठोर कदम उठाया। अत: सैनिकों ने विद्रोह कर दिया।

1857 के महाविद्रोह का स्वरूप

- **विवाद क्यों?** - विवाद का कारण है आवश्यक अध्ययन स्रोतों की कमी।
- **निम्नलिखित कारणों से विद्रोही अपना लिखित दस्तावेज नहीं छोड़ पाये-**

1. पकड़े जाने के भय से उनमें से कुछ लोगों ने अपने दस्तावेजों को नष्ट कर दिया।
2. अनेक विद्रोही अशिक्षित थे, जिसके कारण उन्होंने कोई लिखित साक्ष्य नहीं छोड़ा।

उपर्युक्त कारणों से इस महाविद्रोह के ऊपर लिखने वाले विद्वानों ने सरकारी अभिलेखागार को आधार बनाया, जबकि सरकारी अभिलेखागार का बल इसके प्रभाव को कम करके दिखाना था।

इसे 'सिपाही विद्रोह' क्यों नहीं कहा जा सकता?

1. इस महाविद्रोह में शामिल हाने वाले महज सिपाही नहीं थे, बल्कि उनसे कहीं बड़ी संख्या गैर-सैनिकों की रही थी। इसमें सैनिकों के साथ-साथ कुलीन, किसान, शिल्पी एवं कारीगर, श्रमिक और जनजातीय लोगों, सभी की भागीदारी थी।
2. सिपाही किसानों से पृथक नहीं थे, बल्कि वे किसान परिवार से आते थे। इसलिए वे किसानों के असंतोष को भी व्यक्त कर रहे थे। अगर एक तरह से देखा जाये तो वे स्वयं वर्दी में किसान थे।

इसे भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में क्यों देखा जाने लगा है?

इसके निम्नलिखित कारण हैं -

1. नवीन अध्ययन सामग्रियों; यथा- समकालीन उर्दू साहित्य, भोजपुरी लोक साहित्य आदि के उपयोग से इस महाविद्रोह पर अधिक प्रकाश पड़ने लगा है।

2. इसका भौगोलिक विस्तार व्यापक माना जाता है। यह महज उत्तर भारत और मध्य भारत तक ही सीमित नहीं था, बल्कि इसका प्रभाव मद्रास, कर्नाटक और मालाबार क्षेत्र तक देखा गया।

3. इसमें व्यापक सामाजिक भागीदारी भी देखी गई। आरंभ में इसमें केवल कुलीनों और सिपाहियों की भागीदारी मानी जाती थी, परन्तु अब हमें ज्ञात होता है इसमें बड़ी संख्या में किसान, श्रमिक, कारीगर एवं शिल्पी, जनजातीय लोग सभी शामिल हुए थे। नवीन शोधों के आधार पर इसमें कुलीन महिलाओं के साथ-साथ निम्न श्रेणी की महिलाओं की भागीदारी की सूचना भी मिलती है। उदाहरण के लिए, कानपुर में एक तवायफ अजीजुन बाई का कोठा विद्रोहियों का मिलन स्थल बन गया था। उसी प्रकार, अवंति बाई, झलकारी बाई आदि जैसी निम्न जाति की महिलाएँ भी इसमें शामिल हुईं थीं।

4. फिर एक क्षेत्र की घटना दूसरे क्षेत्र को प्रभावित कर रही थी और एक क्षेत्र के नेता की अपील दूसरे क्षेत्र के लोगों पर अपना प्रभाव छोड़ने लगी थी।

5. सबसे बढ़कर भोजपुरी लोक साहित्य में जनआकांक्षा भी व्यक्त हुई है। यह आकांक्षा स्वतंत्रता के लिए है। उदाहरण के लिए, 'अब छोड़ दे फिरंगी हमार देसवा'।

1857 के महाविद्रोह की विफलता के कारण

- विद्रोहियों के समक्ष स्पष्ट लक्ष्य एवं कार्यक्रम का अभाव था।
- विभिन्न क्षेत्रों के नेताओं के बीच आपसी तालमेल का अभाव था।
- ब्रिटिश कंपनी को अनेक शासकों एवं कुलीनों का समर्थन प्राप्त था तथा नवोदित मध्यवर्ग का झुकाव भी ब्रिटिश की तरफ ही था।
- ब्रिटिश कम्पनी के पास बेहतर हथियार एवं संसाधन की उपलब्धता थी।
- ब्रिटिश कंपनी को कुछ योग्य अधिकारियों की सेवा प्राप्त हुई, यथा- नील, हडसन, ह्यूरोज, निकोलसन आदि।
- अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ भी ब्रिटिश के पक्ष में थीं, जैसे- इस समय तक क्रीमिया का युद्ध समाप्त हो चुका था। अत: ब्रिटिश को भारत में अतिरिक्त सेना मँगाने में सहूलियत हुई।
- विद्रोही सैनिकों पर अंधविश्वास का भी प्रभाव था, विशेषकर जब 1857 में धूमकेतु प्रकट हुआ, तो उन्होंने इसे अपशकुन का सूचक माना।

महत्त्व-

1. इसने क्रांतिकारी राष्ट्रवाद को प्रेरित किया। 1857 का विद्रोह भले ही तात्कालिक रूप से अपने लक्ष्य में सफल नहीं रहा हो, परंतु यह ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रतिरोध का प्रतीक बन गया। इसकी 50वीं जयंती पर वी. डी. सावरकर के नेतृत्व में क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने इस महान घटना को याद किया।

2. यह हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रतीक बन गया। इसलिए स्वतंत्रता आंदोलन के मध्य हिन्दू एवं मुस्लिमों के बीच गठबंधन को कायम करने के लिए भी इसे समय-समय पर याद किया गया।

3. 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के दौरान जिस प्रकार भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंका गया था, वह बरबस 1857 के महाविद्रोह की याद दिलाता है।

प्रश्न: 'चर्बी वाले कारतूस का मामला अपने आप में इतना बड़ा कारण नहीं था कि किसी भी साम्राज्य के उत्थान-पतन के लिए उत्तरदायी हो।' 1857 के महाविद्रोह के परिप्रेक्ष्य में इस कथन के औचित्य का परीक्षण कीजिए।

उत्तर: 1857 के महाविद्रोह के कारण एवं स्वरूप के निर्धारण का मुद्दा आरंभ से ही एक विवादास्पद मुद्दा रहा है और इसकी वजह रही है निष्पक्ष इतिहास लेखन का अभाव। ब्रिटिश इतिहासकारों का बल इसे महज सिपाही विद्रोह सिद्ध करना रहा था तथा इसके कारण को महज चर्बी वाले कारतूस की घटना तक सीमित रखना था।

परन्तु इसका वास्तविक कारण रहा था ब्रिटिश औपनिवेशिक हित और भारत के विभिन्न वर्गों के हितों के बीच सीधी टकराहट। ब्रिटिश शासन की स्थापना के काल से ही इसका कुप्रभाव विभिन्न वर्गों पर देखा गया। यथा- किसान, शिल्पी एवं कारीगर, जनजातीय समूह, कुछ पुराने राजा, नवाब और जमींदार, इन सभी की प्रतिक्रिया समय-समय पर विद्रोहों और आंदोलनों के रूप में फूटती रही थी। 1757 और 1857 के बीच लगभग 100 छिटपुट विद्रोह एवं आंदोलन होते रहे थे, जैसे- संथाल विद्रोह।

इस प्रकार, ब्रिटिश साम्राज्य ज्वालामुखी के मुख पर बैठा हुआ था। चर्बी वाले कारतूस की घटना ने इसके विस्फोट का पहला अवसर प्रदान किया। फिर देखते-देखते उसने जन-आंदोलन का रूप ले लिया। अत: विद्वान इसे भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के रूप में देखने लगे।

इसलिए इतने बड़े राजनीतिक उत्थान को महज चर्बी वाले कारतूस की घटना के रूप में देखकर इसके महत्व को कम करके आंकना सही नहीं है।

■■■

आधुनिक राष्ट्रवाद
(19वीं सदी का समाज एवं धर्म सुधार आंदोलन)

भारतीय पुनर्जागरण क्यों?

- जिस प्रकार यूरोपीय पुनर्जागरण ने 14वीं सदी के यूरोप में आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन दिया था, उसी प्रकार 19वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण ने भारत में आधुनिकीकरण को बल दिया।
- पुनर्जागरण एक प्रकार की बौद्धिक गतिशीलता थी जिसने भारतीय समाज के मध्य युग से आधुनिक युग में रूपांतरण को संभव बनाया।

उद्भव के कारण

निम्नलिखित कारकों ने आधुनिक राष्ट्रवाद के उद्भव को संभव बनाया-

1. प्राच्यवादियों ने भारतीय संस्कृति के उद्घाटन तथा उसका गौरव गान करके भारतीयों में अतिरिक्त आत्मविश्वास पैदा किया।
2. अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारतीयों का एक समूह पश्चिम की उदारवादी विचारधारा के सम्पर्क में आया।
3. ईसाई मिशनरियों के द्वारा चर्च के प्रसार के क्रम में शिक्षा के विकास पर जो बल दिया गया, उसके कारण भी नवीन चेतना को प्रोत्साहन मिला।
4. प्रिंटिंग प्रेस के विकास के बाद आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रकाशन को बल मिला। इस कारण भी नवीन विचारधारा का प्रसार संभव हुआ।
5. ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप नये सामाजिक वर्ग, यथा- पूँजीपति, शिक्षित भारतीयों का वर्ग आदि अस्तित्व में आये, जिन्होंने नवीन विचारधारा को स्वीकृति प्रदान की।

इसे आधुनिक राष्ट्रवाद के उद्भव से क्यों जोड़ा जाता है?

आधुनिक राष्ट्रवाद के उद्भव की एक आवश्यक शर्त होती है किसी राज्य अथवा देश में निवास करने वाले लोगों के बीच परस्पर जुड़े होने का भाव। 18वीं सदी के भारत में हमें यह भाव नहीं दिखता। इसका कारण था भारत का आंतरिक विभाजन अर्थात् भारत जातीय, लैंगिक एवं क्षेत्रीय विभाजन से ग्रस्त था। परन्तु 19वीं सदी के **समाज एवं धर्म सुधार आंदोलन** ने उस आंतरिक विभाजन को कमजोर कर लोगों में एक होने का भाव जागृत किया।

किन बातों पर इसका बल रहा था?

इसका बल निम्नलिखित बातों पर रहा था-

1. **तर्कवाद:**- सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन एक तर्कवादी आंदोलन था। अत: समाज सुधारकों ने भारतीय समाज और संस्कृति के अध्ययन तथा सामाजिक कुरीतियों की समाप्ति के लिये केवल ग्रंथों का सहारा नहीं लिया, बल्कि आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी आधार बनाया। उन्होंने तर्क को ही आधार बनाकर सती प्रथा, बाल विवाह, विधवाओं की दयनीय दशा आदि पर चोट की। उनके द्वारा बाल-विवाह की आलोचना इस आधार पर नहीं की गई कि यह शास्त्रों के द्वारा समर्थित नहीं है, बल्कि इस आधार पर की गई कि यह लड़कियों के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।
2. **मानववाद:**-इसके तहत पारलौकिकता के समानान्तर इहलौकिकता तथा ईश्वर के समानान्तर मानव की प्रतिष्ठा पर बल दिया गया।
3. **व्यक्तिवाद:**- इसमें तर्कवाद एवं व्यक्ति की निजी पहचान पर बल देकर व्यक्तिवादी चेतना को प्रोत्साहन दिया गया। इस काल में धार्मिक ग्रंथ जनसामान्य को उपलब्ध कराए गए। अत: स्वाभाविक रूप में ग्रंथ के विश्लेषक के रूप में पुरोहितों की भूमिका कम हो गई।
4. **धार्मिक सार्वभौमवाद:**-धार्मिक सार्वभौमवाद से तात्पर्य है- धार्मिक विभाजन को नजरअंदाज कर देना तथा ईश्वर की एकता एवं मानव के बीच बंधुता पर बल दिया जाना।

विशेषताएँ अथवा स्वरूप:-

1. **प्रभाव बनाम प्रतिक्रिया:**-भारतीय बुद्धिजीवियों का एक वर्ग अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव में आया, परन्तु जल्द ही उन्हें पश्चिमी बुद्धिजीवियों के विचार एवं व्यवहार के बीच का अंतर नजर आने लगा। फिर उनमें प्रतिक्रिया हुई और उस प्रतिक्रिया में उन्होंने अपनी परम्परा की ओर देखा। इस प्रकार, पाश्चात्यवाद एवं परम्परावाद दोनों का प्रभाव बना रहा।
2. 19वीं सदी का भारतीय पुनर्जागरण पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव में आरंभ हुआ था, परन्तु आरंभ होने के पश्चात् इसने पश्चिमी मॉडल को ही चुनौती दे डाली।
3. यह मूलत: समाज सुधार आंदोलन था, परन्तु उस काल में समाज एवं धर्म दोनों एक-दूसरे के साथ गहरे रूप में जुड़े हुए थे। अधिकांश सामाजिक बुराईयों को धर्म से ही स्वीकृति मिलती थी, इसलिए समाज सुधार से पहले धर्म सुधार आवश्यक था।

समाज तथा धर्म सुधार आंदोलन की प्रकृति

कुछ संस्थाओं एवं सुधारकों पर पाश्चात्यवाद का अत्यधिक प्रभाव रहा, वहीं कुछ अन्य संस्थाओं एवं सुधारकों पर पाश्चात्यवाद और परम्परावाद के बीच संतुलन देखने को मिलता है। कुछ संस्थाएँ ऐसी हैं जिन पर परम्परावाद का बहुत अधिक प्रभाव है। इन्हें निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-

पाश्चात्यवादी प्रवृत्तिः-

■ **यंग बंगाल आंदोलन-**

- इस आंदोलन के संगठनकर्त्ता हेनरी विवियन डेरोजियो थे। ये हिन्दू कॉलेज के प्राध्यापक पद पर रहे थे। इन्होंने अपने इर्द-गिर्द युवाओं का एक समूह खड़ा किया तथा यंग बंगाल आंदोलन की शुरूआत की। इस आंदोलन ने सुधार के लिए कदम उठाये, परन्तु इसकी सबसे बड़ी सीमा थी पाश्चात्यवाद। इस कारण इसने भारतीय अतीत के साथ अपना संबंध-विच्छेद करने का प्रयास किया। अतः इसे बंगाल के समाज में स्वीकृति नहीं मिली।

योगदान

1. बंगाली समाज की रूढ़िवादी विचारों पर चोट की तथा तर्कवाद को प्रोत्साहन दिया।
2. व्यक्ति एवं विचारों की स्वतंत्रता को बल प्रदान किया।
3. आधुनिक राष्ट्रवादी चेतना को प्रोत्साहन दिया।

पाश्चात्यवाद एवं परम्परावाद का समन्वयः-

■ **राजा राममोहन रायः-**

- राजा राममोहन राय का व्यक्तित्व पाश्चात्य एवं पूर्व के विचारों का संश्लेष्य था क्योंकि उन पर हिन्दू-बौद्ध संस्कृति और अरबी-फारसी संस्कृति एवं पाश्चात्य संस्कृति सभी का प्रभाव देखा जाता है।
- इन्होंने धर्म सुधार एवं समाज सुधार पर बल दिया और उसे भारत के आधुनिकीरण के लिए आवश्यक माना। उन्होंने 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था हिन्दू धर्म को स्वच्छ बनाना और एकेश्वरवाद को प्रोत्साहन देना। उसी प्रकार, उन्होंने समाज सुधार के मोर्चे पर सती प्रथा के उन्मूलन को सफल बनाया।
- उन्होंने आधुनिक शिक्षा तथा पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के लिए भी काम किया। उनके प्रयास से कलकत्ता में हिन्दू कॉलेज और वेदान्त कॉलेज की स्थापना हुई। उन्होंने पश्चिमी शिक्षा पर बल दिया क्योंकि वे आधुनिकीकरण के लिए पश्चिमी शिक्षा को आवश्यक मानते थे। उन्हें आधुनिक राष्ट्रवाद का जनक माना जाता है।

■ **प्रार्थना समाजः-**

- महाराष्ट्र में 1867 में 'प्रार्थना समाज' की स्थापना केशवचंद्र की प्रेरणा से डॉ. आत्माराम पांडुरंग ने की। बाद में आर.जी. भंडारकर तथा महादेव गोविंद रानाडे इस संगठन में शामिल हुए। इस समाज को प्रसिद्धि दिलाने का श्रेय रानाडे को ही जाता है।
- इसने जाति प्रथा की समाप्ति, विधवाओं के पुनर्विवाह, नारी-शिक्षा को बढ़ावा, बाल-विवाह के अंत आदि के पक्ष में प्रभावपूर्ण आवाज उठाई। इसने एक ब्रह्म की उपासना का संदेश दिया और धर्म को जातिगत रूढ़िवादिता से मुक्त करने का प्रयास किया।

■ **स्वामी विवेकानंद :-**

- **नव-वेदांतवादी-** स्वामी विवेकानन्द को नव वेदान्तवादी इसलिए कहा गया है कि जहाँ एक तरफ उन्होंने वेदान्त दर्शन के वैश्विक महत्व को उद्घाटित किया, वहीं उन्होंने नवीन आवश्यकताओं के अनुकूल वेदान्त दर्शन की व्याख्या की। उनका वेदान्त 'व्यावहारिक वेदान्त' कहा जाता है क्योंकि उन्होंने ब्रह्म का साक्षात्कार शोषित एवं पीड़ित लोगों के चेहरे में किया। इस संदर्भ में उन्होंने 'दरिद्र नारायण' की अवधारणा दी।
- **समाज सुधारक-** स्वामी विवेकानन्द भारत की प्रगति के लिए सामाजिक उत्थान आवश्यक समझते थे। उनका मानना था कि भारत जब तक जाति, नस्लवाद एवं क्षेत्रीय विभाजन को समाप्त नहीं करेगा, तब तक वह महान राष्ट्र नहीं बन सकता। वे मानते थे कि जब तक हमारी जनसंख्या का एक भाग शोषित और पीड़ित रहेगा, तब तक समाज का उत्थान नहीं होगा।
- **एक धार्मिक सुधारक-** उन्होंने धार्मिक कर्मकांडों पर प्रहार किया। एक तरफ, वे धर्म तथा आध्यात्म को पूर्वी संस्कृति की सबसे बड़ी शक्ति मानते थे, वहीं दूसरी तरफ, वे धार्मिक आडम्बर के विरोधी थे।
- **एक सामाजिक विचारक-** इनका मानना था कि भारतीय वर्ण व्यवस्था न केवल भारत, बल्कि विश्व के लगभग सभी देशों में विद्यमान रही है। सर्वप्रथम ब्राह्मणों के हाथ में सत्ता आयी, फिर क्रमशः क्षत्रिय, वैश्यों के हाथ में सत्ता आ गई। अब सत्ता शूद्रों के हाथों में आनी चाहिये जो बहुसंख्यक हैं। शूद्रों से उनका तात्पर्य श्रमिक वर्ग से था।

परंपरावादी प्रवृत्तिः-

■ **आर्य समाजः-**

- उत्तर भारत में आर्य समाज एक महत्वपूर्ण तथा प्रभावकारी संस्था के रूप में स्थापित हुआ। इसकी स्थापना दयानंद सरस्वती ने 1875 में की। दयानंद सरस्वती ने प्राचीन ग्रंथ के रूप में वेदों के महत्व पर अत्यधिक बल दिया और उसे ही हिंदू धर्म का वास्तविक आधार माना।
- **योगदान-**

- वेदों के आधार पर उन्होंने मूर्ति पूजा, बहुदेववाद, पुरोहितवाद, आदि धार्मिक कर्मकांडों पर चोट की।
- सामाजिक कुरीतियों के रूप में उन्होंने बाल विवाह, अंतर्जातीय विवाह तथा स्त्री शिक्षा का समर्थन किया। उन्होंने छुआछूत को अस्वीकर कर दिया एवं जाति विभाजन

की आलोचना की, किंतु उन्होंने वेदों पर आधारित चतुर्वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया।

- कॉलेज गुट के आर्य समाजियों ने डीएवी स्कूल एवं कॉलेज की स्थापना कर आधुनिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

- **सीमाएँ**-

- अत्यधिक पुनरुत्थानवादी होने के कारण इसने मुस्लिमों के प्रति विद्वेष को जन्म दिया।
- वेदों की व्याख्या उच्च वर्ण के हिंदुओं को ही आकर्षित कर सकी, जबकि निम्न जाति के लोग इसके प्रति आकर्षित नहीं हो सके।

प्रश्नः 'आर्य समाज आंदोलन ईसाई मिशनरियों के धर्मान्तरण की नीति के विरूद्ध एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करता था।' इस कथन का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

उत्तरः- औपनिवेशिक शासन व्यवस्था किसी भी देश अथवा समाज के लिए आर्थिक शोषण की समस्या ही उत्पन्न नहीं करती, बल्कि उसकी उपस्थिति में एक प्रकार के सांस्कृतिक तनाव को भी जन्म देती है। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत ईसाई मिशनरियों की उपस्थिति में इसी प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो गई।

1813 में भारत में ईसाई मिशनरियों को खुले तौर पर धर्म प्रसार की छूट दी गई। इसके पश्चात् इन मिशनरियों के द्वारा निरंतर जनजातीय समूहों एवं दलित वर्ग के लोगों का ईसाई पंथ में धर्मान्तरण का प्रयास किया जाता रहा। परिणामस्वरूप 1881 की जनगणना में भारत में ईसाईयों की संख्या में वृद्धि देखी गई। यह कुछ हिन्दू सुधारकों की चिन्ता का कारण बना।

आर्य समाज ने ईसाई मिशनरियों के धर्मान्तरण की नीति के विरूद्ध प्रतिक्रिया दिखाई। हालांकि हिन्दू धर्म के अंतर्गत ऐसा कोई धर्मान्तरण का मॉडल मौजूद नहीं था, परन्तु दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज में एक नये प्रकार के मॉडल 'शुद्धि आंदोलन' की शुरूआत की। इस आंदोलन का लक्ष्य था उन हिन्दुओं को, जो किसी दूसरे धर्म में धर्मान्तरित हो चुके थे उन्हें पुनः हिन्दू धर्म में लाना। इसके लिए उन्होंने जोरदार प्रचार करना आरम्भ कर दिया।

परन्तु औषधि रोग से भी ज्यादा घातक सिद्ध हुई। इसने अन्य धर्म के प्रचारकों को भी उकसाया। इस कारण भारतीय धार्मिक जीवन में साम्प्रदायिकता का जहर घुल गया।

प्रश्नः 'आर्य समाज अपनी तमाम विलक्षणताओं के बावजूद भारत में आंशिक आधुनिकीकरण नहीं ला सका।' इस कथन का परीक्षण कीजिए।

उत्तरः अन्य सुधार आंदोलनों की तरह आर्य समाज भी भारत को एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में स्थापित करने के लिए संकल्पित था। अतः इसने आधुनिकता की दिशा में निम्नलिखित कदम उठायेः-

1. **धर्म सुधारः**- समाज सुधार से पहले धर्म सुधार एक आवश्यक शर्त था। आर्य समाज ने धर्म सुधार पर बल देते हुए पुरोहितवाद, संस्कारवाद, मंदिर में मूर्ति पूजा आदि की आलोचना की।
2. **समाज सुधारः**- उसने महिला उत्थान कार्यक्रम पर बल देते हुए बाल विवाह, सती प्रथा, विधवाओं की दयनीय दशा आदि पर चोट की तथा जाति शोषण एवं छुआ-छूत की आलोचना की। इस प्रकार, उसने जाति विभाजन एवं लैंगिक विभाजन को कमजोर कर दिया।
3. **आधुनिक शिक्षा को प्रोत्साहनः**- कॉलेज गुट के आर्य समाजियों ने डीएवी स्कूल एवं कॉलेज की स्थापना कर आधुनिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

- परन्तु निम्नलिखित कारणों से आर्य समाज आंदोलन अपेक्षित रूप से भारत में आधुनिकता नहीं ला सका।

1. यह समस्त ज्ञान का स्रोत वेदों को मानता था, इसलिए इसका दृष्टिकोण अत्यधिक परम्परावादी और रूढ़िवादी हो गया।
2. 'वेदों की ओर लौटो' का नारा निम्न जाति के लोगों को आकर्षित नहीं कर सका।
3. उसके द्वारा चलाए जाने वाले शुद्धि आंदोलन ने साम्प्रदायिकता को बल प्रदान किया।

मुस्लिम सुधार आंदोलन

1. **पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति**
2. **सुधारवादी प्रवृत्ति**

पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति को प्रेरित करने वाले कारकः-

1. मुस्लिम भारत में शासक वर्ग से जुड़े रहे थे। अतः उनमें सत्ता खो देने का तीखा एहसास था।
2. ब्रिटिश राजस्व नीति के तहत मुस्लिम किसानों का शोषण हो रहा था।
3. चूँकि प्रतिरोध के लिए उनके पास कोई आधुनिक विचारधारा नहीं थी, इसलिए उन्होंने धर्म को ही प्रतिरोध का आधार बनाया।

- **पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति को फराजी एवं वहाबी जैसे आंदोलनों ने प्रोत्साहन दिया।**

फराजी आंदोलन

- फराजी एक सम्प्रदाय था, जिसकी स्थापना हाजी शरीयतुल्ला ने की थी। 1838 एवं 1858 के बीच बंगाल में यह आंदोलन चला। आरम्भ में फराजी आन्दोलन अधिक राजस्व निर्धारण तथा बेदखल किये गए किसानों के

असंतोष के कारण आरम्भ हुआ, परन्तु आगे दूदू मियाँ के नेतृत्व में इस आन्दोलन ने रेडिकल धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों की वकालत की।

- फराजी आंदोलन ने इस्लाम को सभी प्रकार की गैर-इस्लामी प्रक्रिया से मुक्त कर उसे मूलरूप में स्थापित करना चाहा। साथ ही, इसने कुरान को मुख्य आध्यात्मिक निदेशक की मान्यता दिलाने का प्रयत्न किया। यद्यपि यह कृषक असंतोष का परिणाम था, परंतु इस पर धार्मिक रंग चढ़ गया।

वहाबी आंदोलन

- इस आंदोलन के आरंभिक प्रेरक अरब के एक प्रमुख संत शेख अब्दुल वहाब थे। भारत में उनके अनुयायियों ने वहाबी विचारों के आधार पर मुस्लिमों को संगठित करने का प्रयास किया तथा कृषक असंतोष को एक धार्मिक आंदोलन की दिशा दे दी। भारत में इस आंदोलन को लोकप्रियता सैयद अहमद रायबरेलवी के कारण मिली। यह आंदोलन उत्तर-पश्चिम, पूर्वी तथा मध्य भारत में सक्रिय रहा।
- इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य हजरत मुहम्मद साहब के इस्लाम को पुनर्स्थापित करना था अर्थात् 'दर-उल-हर्ब' (मूर्तिपूजक देश) को 'दर-उल-इस्लाम' (इस्लाम का देश) बनाना। पहले वहाबियों ने पंजाब के सिखों के विरुद्ध जेहाद की घोषणा की और आगे जब पंजाब पर ब्रिटिश का कब्जा हो गया, तो फिर वहाबियों ने ब्रिटिश के विरुद्ध जेहाद की घोषणा की।
- वहाबी आंदोलन अपनी सांप्रदायिक छवि के कारण कभी भी राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरूप धारण नहीं कर सका।

सुधारवादी प्रवृत्ति

- **अलीगढ़ आंदोलन**, इसके संगठनकर्त्ता सर सैय्यद अहमद खान, काजी नजरूल इस्लाम तथा चिराग अली थे।
- **योगदानः-**

1. समाज सुधार के क्रम में महिलाओं के उत्थान के लिए कार्य किया गया एवं पर्दा प्रथा का विरोध किया गया।
2. कुरान की आधुनिक व्याख्या की गई।
3. शिक्षा के विकास के लिए काम किया गया तथा 1875 में अलीगढ़ में एंग्लो-ओरिएंटल कॉलेज की स्थापना की गई।

- **सीमाएँः-**

1. सर सैय्यद अहमद खान इस मिथ्या धारणा के शिकार हो गए कि अगर भारतीय मुसलमानों को विकास के पथ पर बढ़ना है, तो उन्हें ब्रिटिश की कृपा प्राप्त करनी चाहिए।
2. वे मुसलमानों के आरक्षण के पक्षपाती तथा प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं के विकास के विरोधी बन गए।

आधुनिक भारत में समाज सुधार के केंद्र में महिलाएँ

- एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्या, जिसने 19वीं सदी के सुधारकों का ध्यान सबसे अधिक आकर्षित किया, वह थी महिलाओं की दशा। जेम्स मिल जैसे ब्रिटिश चिंतक ने यह घोषित किया था कि किसी भी सभ्यता की सफलता की कसौटी उसके अंतर्गत महिलाओं की दशा है। भारतीय सुधारकों ने इसे एक चुनौती के रूप में लिया। उन्होंने यह महसूस किया कि भारत की अधिकांश सामाजिक समस्याओं का कारण है- महिलाओं को हीन अवस्था।
- उस काल में महिलाओं से संबंधित सामाजिक कुरीतियों में बाल हत्या, बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा प्रथा आदि प्रचलित थीं। 19वीं सदी के सुधारकों ने उनकी दशा में सुधार के लिये निम्नलिखित कदम उठाए-
- **बाल हत्याः** बाल हत्या सामान्यतः राजपूतों में प्रचलित थी, जो कन्याओं के जन्म लेते ही उन्हें मार देते थे। गवर्नर जनरल जॉन शोर ने 1795 ई. में तथा वेलेजली के समय 1804 ई. में शिशु वध को प्रतिबंधित कर दिया।
- **सती प्रथाः** सती प्रथा के उन्मूलन के लिये 1829 ई. के बंगाल रेग्युलेशन के आधार पर कदम उठाया गया। 1830 ई. में मद्रास और बंबई में भी यह कानून लागू किया गया।
- **बाल विवाह का उन्मूलनः** भारत में बाल विवाह की समस्या प्रारंभ से रही है। आधुनिक काल में ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने इसे रोकने का साहसिक प्रयास किया। विद्यासागर तथा उनके समर्थकों के दबाव के कारण 1860 ई. में लड़की की विवाह की न्यूनतम आयु 10 वर्ष कर दी गई। इससे कम आयु में विवाह को अपराध घोषित कर दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने बाल विवाह को प्रतिबंधित करने के लिये समय-समय पर तीन अधिनियम पारित किये; सिविल मैरिज एक्ट या नेटिव मैरिज एक्ट (1872 ई.), सम्मति आयु अधिनियम (1891 ई.) तथा बाल विवाह निरोधक अधिनियम (शारदा एक्ट 1929)।
- **विधवा प्रथाः** इस काल में विधवा प्रथा भी एक प्रमुख समस्या थी। एक तरह से देखा जाए तो विधवा विवाह सती प्रथा उन्मूलन का तार्किक परिणाम था। जैसा कि हम जानते हैं कि जब तक विधवाओं की दशा में सुधार नहीं किया जाता, तब तक सती प्रथा उन्मूलन का कोई अर्थ नहीं था। अतः ईश्वर चंद्र विद्यासागर के अथक प्रयासों की वजह से 1856 ई. में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम लाया गया।
- **महिला शिक्षाः** महिला साक्षरता तथा महिला शिक्षा की स्थिति भी उन्नीसवीं सदी के सुधारकों के लिये चिंता का कारण थी क्योंकि महिलाओं की दशा में सुधार महिला

शिक्षा के बिना संभव नहीं था। अत: इस संदर्भ में समाज सुधारकों द्वारा उल्लेखनीय प्रयास किये गए।

- आगे चलकर **कुछ सजग महिलाएँ** भी सामने आई, जिन्होंने महिला उत्थान के लिये कार्य किया। **भोपाल की बेगम** ने अलीगढ़ में लड़कियों की शिक्षा के लिये स्कूल स्थापित किया। **बेगम रुकैय्या सखावत** तथा महाराष्ट्र की एक महिला **ताराबाई शिंदे** ने अपने प्रयास से शिक्षा प्रणाली स्थापित की तथा **'स्त्री-पुरुष तुलना'** नामक पुस्तक लिखकर पुरुषों के विशेषाधिकारों पर चोट की। उसी प्रकार पूना में सुधारक महिला के रूप में **पंडिता रमाबाई** ने एक विधवा आश्रम- शारदा सदन की स्थापना बंबई में की।

दलितवर्गीय आंदोलन

- 19वीं सदी के सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आंदोलन का प्रमुख बल जाति व्यवस्था में सुधार पर भी था, अत: इसके द्वारा जाति विभाजन की आलोचना की गई। इस दिशा में सर्वप्रथम पहल सवर्ण नेताओं ने की तथा राजा राममोहन राय से लेकर स्वामी विवेकानंद तक विभिन्न सुधारकों ने जाति व्यवस्था की आलोचना की। फिर भी शोषण को समाप्त करने के लिये कोई सक्रिय प्रयास नहीं किया गया था। अंत में कुछ दलित वर्ग के नेता उभरकर सामने आए और उन्होंने स्वयं जातीय शोषण के विरुद्ध संघर्ष आरंभ किया।

महाराष्ट्र

- **ज्योतिबा फुले**- उन्होंने सत्यशोधक समाज की स्थापना की तथा अपने पत्र 'गुलामगिरी' के माध्यम से अपने रैडिकल विचारों को व्यक्त किया। उन्होंने सवर्ण हिंदुओं को आर्य अथवा विदेशी करार दिया, जबकि निम्न एवं दलित जाति के लोगों को भारत का आरंभिक वाशिंदा कहा। इनके द्वारा पूना में निम्न जाति के लोगों के लिये एक बालिका विद्यालय की भी स्थापना की गई।
- **गोपाल बाबा वलंगकर**- 19वीं सदी के अंत में गोपाल बाबा वलंगकर द्वारा महार जाति को संगठित करने का प्रयास किया गया।
- **भीमराव अंबेडकर**- अंबेडकर ने 1920 के दशक में महार जाति को नेतृत्व प्रदान कर एक संगठित जाति आंदोलन खड़ा किया। अंबेडकर द्वारा महार जाति की दशा में सुधार के लिये निम्नलिखित कदम उठाए गए-

- मनुस्मृति जलाकर ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रति विरोध का प्रदर्शन किया गया।
- उन्होंने महारों को मरे हुए पशु को ढोने से परहेज करने का सुझाव दिया।
- 1930 के दशक में जबरन मंदिर प्रवेश कार्यक्रम प्रारंभ किया।
- दलित वर्ग के लिये संवैधानिक सुरक्षा की माँग की।
- अछूतों की दशा में सुधार के लिये उन्होंने अखिल भारतीय अछूत फेडरेशन का गठन किया।

■ **दलित वर्ग के उत्थान के लिए गाँधी और अंबेडकर के दृष्टिकोण में अंतर-**

1. अंबेडकर दलित वर्ग की दशा में सुधार के लिये राजनीतिक एवं आर्थिक सत्ता के हस्तांतरण को आवश्यक मानते थे, किंतु गाँधीजी समाज सुधार के माध्यम से दलित वर्ग की स्थिति में सुधार के समर्थक थे।
2. अंबेडकर दलितों की दशा सुधारने के लिये पृथक् निर्वाचक मंडल के समर्थक थे, जबकि गाँधीजी विरोधी थे।
3. अंबेडकर जाति व्यवस्था के विरोध में आक्रामक रवैया अपनाने के लिये तैयार रहते थे। उदाहरण के लिए, जबरन मंदिर प्रवेश, वहीं गाँधीजी मेल-मिलाप की नीति के माध्यम से दलित वर्ग की स्थिति में सुधार के समर्थक थे।
4. अंबेडकर जाति संरचना को समाप्त करना आवश्यक मानते थे, किंतु गाँधीजी जाति संरचना में सुधार के समर्थक थे।
5. अंबेडकर एक बुद्धिजीवी थे, किंतु व्यावहारिक रूप में जनसामान्य से कटे हुए थे, जबकि गाँधीजी एक जन नेता के साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्त्ता भी थे।

त्रावणकोर

- **श्री नारायण गुरु**- इन्होंने एक दलित जाति एझावा को संगठित कर एक संगठन 'श्री नारायण गुरु धर्म परिपालन योगम्' की स्थापना की। इनका नारा था- 'एक ईश्वर, एक धर्म व एक जाति।'

मद्रास

- **ई. वी. रामास्वामी नायकर 'पेरियार'**- मद्रास में जाति उत्पीड़न का विरोध करने वाले एक प्रमुख नेता के रूप में ई. वी. रामास्वामी नायकर उर्फ पेरियार का उद्भव हुआ। प्रारंभ में यह असहयोग आंदोलन में सक्रिय रहे थे, परंतु बाद में इन्होंने असहयोग आंदोलन से अपना नाता तोड़ दिया। यहाँ वी. रामास्वामी नायकर ने दलितों को संगठित करने का काम किया और 'आत्मसम्मान आंदोलन' चलाया। आत्मसम्मान आंदोलन में ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को चुनौती दी गई तथा लोगों से ब्राह्मणवाद का विरोध करने के लिये आगे आने के लिए कहा गया। वे द्रविड़ राजनीति के पिता कहे जाते हैं।

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन का महत्त्व

- इस आंदोलन के साथ भारत में आधुनिकता का प्रवर्तन हुआ अर्थात् भारत में एक ऐसे आधुनिक समाज का निर्माण हुआ, जो युगीन चुनौतियों को स्वीकार कर सकता था।

- इसने भारतीय समाज की शल्य चिकित्सा कर दी। इसने कठोर जाति व्यवस्था पर प्रहार किया तथा धार्मिक कर्मकांडों एवं पुरोहितवाद पर चोट की, महिलाओं की दशा में सुधार के लिये कदम उठाए। इस प्रकार भारतीय समाज में उत्थान की प्रक्रिया को बल मिला।
- इसने प्रचलित सामंती सामाजिक मूल्यों पर चोट की। इसके परिणामस्वरूप आधुनिक राष्ट्रवादी चेतना का विकास हुआ।
- क्षेत्रवाद, जातिवाद एवं लैंगिक विषमता के कम होने से आधुनिक राष्ट्रवाद की चेतना का विकास संभव हुआ।

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन की सीमाएँ

- 19वीं सदी का भारतीय पुनर्जागरण धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र तक ही सीमित रहा। इसे यूरोपीय पुनर्जागरण की तरह भौगोलिक अन्वेषण अथवा वैकल्पिक अन्वेषण का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ।
- 19वीं सदी के भारतीय सुधारक एक वैकल्पिक आधुनिकता को लाने में विफल रहे। उनका पाश्चात्य तत्त्वों के साथ देशी तत्त्वों को रचनात्मक रूप से जोड़ने का प्रयास असफल हो गया। यही वजह है कि भारत में बुद्धिजीवी वर्ग पाश्चात्य एवं देशी मॉडल के बीच विभाजित रहा। वहीं पाश्चात्य समर्थक आज भूमंडलीकरण की संस्कृति के कट्टर समर्थक के रूप में उभरे हैं, तो दूसरी तरफ देशी मॉडल के समर्थक परंपरा एवं धार्मिक पुनरुत्थान में लिप्त हैं।
- समाज सुधार से संबंधित कई संस्थाओं की दृष्टि अत्यधिक अतीतोन्मुखी थी। इसके परिणामस्वरूप पुनरुत्थानवादी प्रकृति को बल मिला तथा संप्रदायवाद को प्रोत्साहन मिला।
- कुछ हिंदू सुधारकों ने वेदों की श्रेष्ठता पर बल दिया तथा वेदोत्तर विकास को अस्वीकार कर दिया, जबकि उस समय तक वैदिक परंपरा भी पुरानी पड़ चुकी थी तथा वेदों की कुछ मान्यताओं पर स्वयं गीता ने प्रहार कर दिया था।
- समाज सुधारकों ने कुछ महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं को तो उठाया, किंतु कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं की उपेक्षा कर दी। उदाहरण के लिये, उन्होंने छुआछूत के उन्मूलन के लिये कोई विशेष काम नहीं किया। आगे गाँधीजी जैसे सुधारक के आगमन के पश्चात् इस दिशा में गंभीर प्रयास किया जा सका।
- 19वीं सदी के सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन का सामाजिक आधार अभिजात्य था, अतः यह नगरीय क्षेत्र तक ही सीमित था।

धार्मिक-सामाजिक धार्मिक आंदोलन से राजनीतिक आंदोलन की ओर

19वीं सदी का समाज एवं धर्म सुधार आंदोलन भारतीय समाज में एक प्रकार की शल्य चिकित्सा सिद्ध हुआ क्योंकि उसके पश्चात् एक स्वच्छ भारत का निर्माण संभव हुआ तथा भारत का विकास आधुनिक राष्ट्र के रूप में संभव हुआ।

कहा जाता है कि 19वीं सदी का सुधार आंदोलन अंतर्वस्तु में राष्ट्रीय, जबकि बाह्य आकृति में धार्मिक था। धीरे-धीरे भारतीय राष्ट्रवाद समाज एवं धर्म सुधार आंदोलन से राजनीतिक आंदोलन की ओर बढ़ने लगा। जैसा कि हम जानते हैं कि 1857 के महाविद्रोह के समय भारतीय मध्यम वर्ग का झुकाव ब्रिटिश की ओर रहा था, परन्तु अब धीरे-धीरे उनका ब्रिटिश शासन से मोह भंग होने लगा था। उनके द्वारा कई क्षेत्रीय संगठनों की स्थापना की जा रही थी।

1870 में महादेव गोविन्द राणाडे ने पूना सार्वजनिक सभा की स्थापना की। 1866 में दादाभाई नौरोजी ने ईस्ट इंडिया एसोसिएशन का गठन किया। 1876 ई. में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और आनंद मोहन बोस ने इण्डियन एसोसिएशन का गठन किया। प्रभाव एंव प्रसार की दृष्टि से यह एक अखिल भारतीय संगठन था। इसके द्वारा दो प्रमुख मुद्दे उठाये गये थे- प्रथम, ब्रिटिश सिविल सेवा की आयु में वृद्धि का तथा दूसरा, देश की आजादी का था।

आगे, इसी श्रृंखला में 1885 में बंबई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई।

प्रश्नः 19वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण और राष्ट्रीय पहचान के उद्भव के मध्य संलग्नताओं का परीक्षण कीजिए।

उत्तरः- 19वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण से तात्पर्य है समाज एवं धर्म सुधार आंदोलन, जो अपनी मूल उत्प्रेरणा में राष्ट्रीय था तो बाह्य आकृति में धार्मिक।

भारत में राष्ट्र निर्माण के मार्ग में कुछ निश्चित बाधाएँ थीं और ये बाधाएँ थीं भारत का आंतरिक विभाजन, यथा- लैंगिक विभाजन, जातीय विभाजन, क्षेत्रीय विभाजन आदि। जैसा कि हम जानते हैं कि आधुनिक राष्ट्र बनने की एक आवश्यक शर्त होती है उस क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों में परस्पर जुड़े होने का भाव। फिर इसके लिए आंतरिक विभाजन को कमजोर करना आवश्यक था। यहीं 19वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

भारतीय पुनर्जागरण का बल व्यापक सुधार कार्यक्रम पर रहा था, जो इस प्रकार हैं-

1. **धर्म सुधारः**-धर्म सुधार, समाज सुधार की एक आवश्यक शर्त थी क्योंकि धर्म और समाज के बीच गहरा जुड़ाव था।

अधिकांश सामाजिक बुराईयों को धार्मिक कर्मकांड से समर्थन मिलता था, इसलिए राजा राममोहन राय से लेकर रानाडे तक, सभी समाज सुधारकों ने मंदिर में मूर्ति पूजा, पुरोहितवाद आदि आडम्बरों पर चोट की। स्वामी विवेकानंद ने यह घोषित किया कि आगामी 50 वर्षों तक हमारा सबसे बड़ा धर्म, राष्ट्र धर्म है।

2. **समाज सुधारः**- 19वीं सदी के सुधारकों ने महिला उत्थान कार्यक्रम पर बल दिया तथा जाति विभाजन एवं छुआछूत को अपना निशाना बनाया। इसके परिणामस्वरूप लैंगिक विभाजन और जाति विभाजन कमजोर पड़ा। ईश्वरचंद्र विद्यासागर, बिरेस लिंगम एवं डी.के. कर्वे जैसे सुधारकों ने महिला उत्थान के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया।

3. **आधुनिक विचारधारा को प्रोत्साहनः**- जैसा कि हम जानते हैं, इस काल में तर्कवाद, मानववाद, व्यक्तिवाद जैसी विचारधाराओं का उद्‌भव हुआ तथा आधुनिक युग में भारत के शिक्षित वर्ग के बीच इनका प्रसार हुआ, जिसके कारण क्षेत्रीय विभाजन कमजोर पड़ा।

इस प्रकार, 19वीं सदी के सुधार आंदोलन ने भारत को राष्ट्र निर्माण में प्रोत्साहन दिया।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन

भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस

- प्राय: भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के पर्यायवाची के रूप में देखा जाता रहा है, परन्तु सच्चाई इससे अलग है। यह सही है कि भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस, राष्ट्रीय आंदोलन में एक प्रभावी संगठन रहा, परन्तु भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस का एक भाग हमेशा राष्ट्रीय आंदोलन से बाहर चलता रहा और समय के साथ कॉन्ग्रेस में भी बदलाव आया।
- उदारवादी चरण में भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन में अधिक दूरियां थीं। उग्रवादी चरण में थोड़ी निकटता आयी, फिर गांधीवादी चरण में और भी निकटता आ गई, परन्तु किसी भी चरण में भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस, राष्ट्रीय आंदोलन का पर्यायवाची नहीं बन सकी।

उदारवादी चरण	उग्रवादी चरण	गाँधीवादी चरण

भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना

- भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना दिसम्बर, 1885 में हुई। इसका प्रथम अधिवेशन दिसम्बर, 1885 में ही बम्बई के गोकुल दास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय में हुआ जिसमें संपूर्ण भारत के 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। अखिल भारतीय स्तर पर यह भारतीय राष्ट्रवाद की पहली सुनियोजित अभिव्यक्ति थी।

कॉन्ग्रेस की स्थापना से संबंधित विवाद

■ **सुरक्षा कपाट की अवधारणा क्या है?**

- कॉन्ग्रेस एक ऐसी संस्था थी जो ब्रिटिश की पहल पर ब्रिटिश के द्वारा तथा ब्रिटिश हित में गठित की गई थी। इस विचार के प्रतिपादक लाला लाजपत राय थे।

■ **सुरक्षा कपाट की अवधारणा का आधार-**

- ब्रिटिश अधिकारी तथा ए.ओ. ह्यूम के मित्र विलियम वेडरबर्न के द्वारा लिखित ह्यूम की जीवनी में यह कहा गया कि ह्यूम को एक विद्रोह की आशंका थी, इसलिये वह सुरक्षा कपाट के तौर पर प्रतिनिध्यात्मक संस्था के रूप में कॉन्ग्रेस की स्थापना करना चाहते थे।

■ **सुरक्षा कपाट की अवधारणा के विरोधी मत-**

- कॉन्ग्रेस की स्थापना के संदर्भ में सेफ्टी वॉल्व का सिद्धांत तर्कसंगत नहीं जान पड़ता है क्योंकि इस व्याख्या को स्वीकार करने का अर्थ था- कॉन्ग्रेस जैसी संस्था की स्थापना को कुछ व्यक्तियों के षड्यंत्र का परिणाम मान लेना। किंतु इस धारणा को निम्नलिखित आधार पर चुनौती दी जा सकती है-
- 1950 के दशक में डफरिन के परिवार वालों के द्वारा उसके कुछ पत्रों का प्रकाशन किया गया, जिससे यह सूचना मिलती है कि शिमला में ए. ओ. ह्यूम डफरिन से मिला था लेकिन डफरिन ने कांग्रेस की स्थापना को गम्भीरता से नहीं लिया।
- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत अथवा लंदन की किसी भी लाइब्रेरी से इससे संबंधित कोई दस्तावेज प्राप्त नहीं हुआ।

तड़ित चालक का सिद्धांत

- गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों को आधार बनाकर एक तड़ित चालक सिद्धांत दिया गया है जो यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि ए. ओ. ह्यूम ने ब्रिटिश हित में भारतीय नेताओं का उपयोग नहीं किया, बल्कि भारतीय नेताओं ने ही भारतीय हित में ए. ओ. ह्यूम का उपयोग कर लिया।

प्रश्न: क्या सुरक्षा कपाट की अवधारणा कॉन्ग्रेस की स्थापना की वास्तविक व्याख्या करती है?

उत्तर: सुरक्षा कपाट की अवधारणा लाला लाजपत राय के द्वारा कॉन्ग्रेस के उदारवादी चरण पर प्रहार करने के क्रम में विकसित की गई थी। उनका कहना था कि एक संगठन के रूप में कॉन्ग्रेस की स्थापना एक अवकाश प्राप्त ब्रिटिश अधिकारी ए. ओ. ह्यूम के द्वारा ब्रिटिश वॉयसराय लॉर्ड डफरिन की सलाह पर ब्रिटिश हित में की गई थी।

अपने विचार के पक्ष में लाला लाजपत राय विलियम वेडरबर्न के द्वारा लिखी गई ए.ओ. ह्यूम की जीवनी का दृष्टांत देते हैं। इसमें सात गुप्तचरों के द्वारा प्रस्तुत सात दस्तावेज का जिक्र है जिनमें भारी विद्रोह की ओर संकेत है। परन्तु वेडरबर्न के विचार का खण्डन निम्नलिखित आधार पर किया जाता है-

1. स्वतंत्रता के पश्चात् भारत अथवा लंदन की किसी भी लाइब्रेरी से इससे संबंधित कोई दस्तावेज प्राप्त नहीं हुआ।
2. स्वतंत्रता के पश्चात् डफरिन के प्रकाशित पत्रों से इस बात की पुष्टि नहीं हो पाती।

इसलिए सुरक्षा कपाट की अवधारणा का समर्थन करने का मतलब है भारत में राष्ट्रीय उत्थान को कम करके आँकना। वस्तुत: कॉन्ग्रेस की स्थापना को 1870 से 1880 के दशक में राष्ट्रवादी चेतना के उभार से जोड़कर देखा जाना चाहिए।

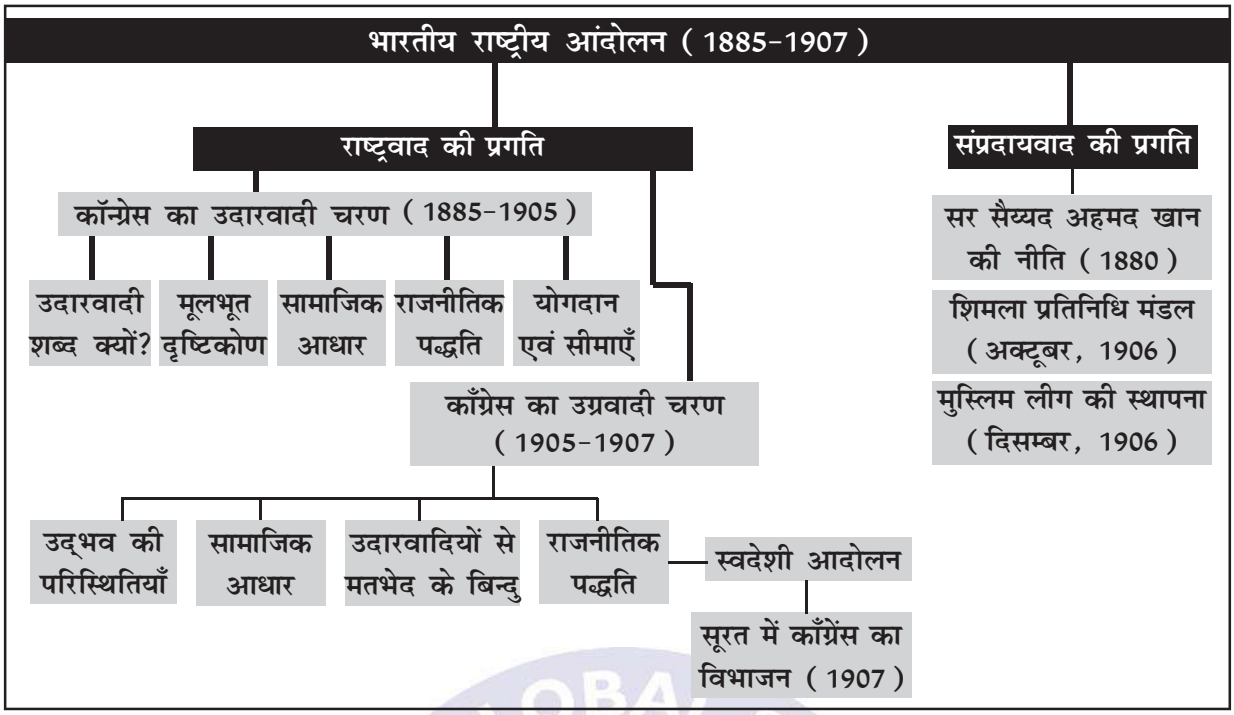

उदारवादी चरण (1885-1905 ई.)

■ **भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के आरंभिक चरण को उदारवादी चरण क्यों कहते हैं?**

- भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के आरंभिक चरण; यथा- 1885 से 1905 के बीच के काल को कॉन्ग्रेस के उदारवादी चरण की संज्ञा दी जाती है। 'उदारवादी' शब्द का प्रयोग निम्नलिखित कारणों से किया जाता है-

1. इस चरण में कॉन्ग्रेस पर जेम्स मिल तथा एडमण्ड बर्क जैसे उदारवादी ब्रिटिश चिंतकों के विचारों का प्रभाव था।
2. उदारवादी नेताओं के द्वारा संवैधानिक तरीकों को अपनाने पर बल दिया जाना। उनका नारा था- 'प्रतिनिधित्व के बिना कर नहीं'।
3. वे क्रमिक परिवर्तन में विश्वास करते थे, उग्र सुधार अथवा लंबी छलांग में नहीं।
4. वे संसदीय राजनीति में विश्वास करते थे, आंदोलन में नहीं।
5. उनके द्वारा अपनाई गई राजनीतिक पद्धति को लोकप्रिय प्रार्थना, प्रतिवेदन एवं स्मरण-पत्र का नाम दिया जाता है अर्थात् वे वर्ष में 3-4 दिनों के लिए एकत्रित होते, ब्रिटिश सरकारों को अपने पुराने प्रतिवेदनों की याद दिलाते तथा नये प्रतिवेदन प्रस्तुत करते, फिर आपस में विचार-विमर्श कर वापस लौट जाते। इस प्रकार, राजनीति उनके लिए मात्र अल्पकालिक पेशा थी।

■ **भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के उदारवादी चरण का सामाजिक आधार:**

- **उदारवादी नेतृत्व में अभिजात्यीय तत्वों की प्रधानता-**

1. उदाहरण के लिए, इनमें जमींदार, वकील, व्यापारी, पत्रकार, चिकित्सक, धर्मगुरु आदि शामिल थे। इसमें जनसामान्य का प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर था।
2. कॉन्ग्रेस के प्रतिनिधि मंडल में 90% हिंदू तथा केवल 6.5% मुसलमान शामिल थे।
3. इन प्रतिनिधि मंडलों में सवर्णों की प्रधानता थी, इनमें 40% केवल ब्राह्मण थे।

■ **उदारवादी चरण का योगदान:-**

1. भारतीयों को आधुनिक राजनीति से परिचित करवाया।
2. उदारवादी राजनीति के दबाव में 1892 का अधिनियम (मतदान देने का अधिकार) पारित हुआ।
3. सबसे बढ़कर उदारवादी नेताओं ने धन की निकासी की अवधारणा देकर औपनिवेशिक अर्थ तंत्र की मीमांसा कर दी अर्थात् उन्होंने 'श्वेतों के अधिभार' की अवधारणा को गहरी चोट पहुँचाई।
4. धर्मनिरपेक्ष मूल्यों पर आधारित राजनीति को प्रोत्साहन मिला।

■ **उदारवादी चरण की सीमाएँ:-**

1. उदारवादी नेता संवैधानिक राजनीति में विश्वास करते थे, अर्थात् वे क्रमिक परिवर्तन में विश्वास करते थे, लंबी छलांग में नहीं।
2. उन्हें जनता की शक्ति में विश्वास नहीं था। वे महज शिक्षित भारतीयों को ही भारत का वास्तविक नागरिक मानते थे।
3. वे भारत की अवनति के लिए ब्रिटिश सरकार को नहीं,

वरन् भारत में कार्यरत ब्रिटिश अधिकारियों को उत्तरदायी मानते थे।

4. उदारवादी नेताओं का सामाजिक आधार अभिजात्य था तथा राजनीति उनके लिए महज अल्पकालिक पेशा थी।
5. उदारवादी चरण में कॉन्ग्रेस पर जमीदारों तथा पूँजीपतियों का प्रभाव था। अतः कॉन्ग्रेस के द्वारा किसानों तथा श्रमिकों के समर्थक कानून का विरोध किया गया। उदाहरण के लिए, कॉन्ग्रेस ने जहाँ एक तरफ 1885 ई. के बंगाल रैयतवाड़ी कानून का विरोध किया, वहीं 1900 ई० के पंजाब लैंड एलिएनेशन कानून का विरोध किया।

प्रश्नः कॉन्ग्रेस के उदारवादी चरण के सामाजिक आधार को स्पष्ट कीजिए तथा उस तथ्य पर प्रकाश डालिए कि इसने कॉन्ग्रेस की राजनीति को किस प्रकार प्रभावित किया?

उत्तरः अगर हम उदारवादी चरण में कॉन्ग्रेस की राजनीति पर निगाह डालते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि कॉन्ग्रेस का सामाजिक आधार उच्च-मध्य वर्ग ने तैयार किया था। कॉन्ग्रेस की पहली बैठक में एक बड़ी संख्या वकीलों की थी। उनके अतिरिक्त इसमें पत्रकार, व्यापारी, महाजन, धर्म गुरू सभी की उपस्थिति थी। कॉन्ग्रेस की उपर्युक्त सामाजिक संरचना ने निश्चय ही कॉन्ग्रेस की राजनीति पर अपना प्रभाव छोड़ा। इसे हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं-

1. चूँकि कॉन्ग्रेस के दिग्गज नेता अपने पेशे में सफल व्यक्ति थे, इसलिए राजनीति उनके लिए अल्पकालिक पेशा बनकर रह गई थी।
2. कॉन्ग्रेस के उदारवादी नेता अंग्रेजी भाषी बुद्धिजीवी थे, इसलिए सामान्य जनता से न तो उनका सम्पर्क था और न ही जनता की शक्ति में विश्वास था।
3. इनकी अधिकांश माँगें मध्य वर्ग के हितों के अनुकूल थीं।
4. कुछ अवसरों पर उन्होंने जमींदारों एवं महाजनों के पक्ष में सरकार के द्वारा किसानों की सुरक्षा के लिए बनाये गये कानूनों का भी विरोध कर दिया। उदाहरण के लिए, 1885 का बंगाल रैयतवाड़ी कानून तथा 1900 का पंजाब लैंड एलिएनेशन एक्ट आदि।

प्रश्नः क्या उदारवादी चरण में कॉन्ग्रेस का नेतृत्व अभिजात्य ही बना रहा तथा जनसामान्य के मुद्दों एवं समस्याओं को अपने से दूर रखा? इस कथन के संदर्भ में अपना मत प्रस्तुत कीजिए।

प्रश्नः क्या कारण था कि 19वीं शताब्दी के अंत तक आते-आते नरमदलीय अपनी घोषित विचारधारा एवं राजनीतिक लक्ष्यों के प्रति राष्ट्र के विश्वास को जगाने में असफल हो गये थे?

(UPSC-2017, 150 शब्द)

प्रश्नः नरमपंथियों की भूमिका ने किस सीमा तक व्यापक स्वतंत्रता आंदोलन का आधार तैयार किया? टिप्पणी कीजिए। **(UPSC-2021, 150 शब्द)**

उत्तरः 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना उस राजनीतिक जागृति का परिणाम थी जो 1870 एवं 1880 के दशक में उत्पन्न हुई थी। क्षेत्रीय स्तर पर पूना सार्वजनिक सभा से लेकर मद्रास महाजन सभा तक कई क्षेत्रीय संस्थाओं की स्थापना हो चुकी थी।

भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस एक अखिल भारतीय संस्था के रूप में गठित हुई, जिसका उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं को एक समान मंच प्रदान करना था। इस रूप में कॉन्ग्रेस एक व्यापक राष्ट्रीय आकांक्षा से जुड़ गई। इसके अतिरिक्त उन्होंने भारतीयों को आधुनिक राजनीति से अवगत करवाया। सबसे बढ़कर उन्होंने राष्ट्रहित से जुड़ी हुई कुछ महत्वपूर्ण माँगें उठाईं; यथा- प्रतिनिध्यात्मक सरकार की माँग, प्रेस की आजादी, सिविल सेवा का भारतीयकरण, भारतीय उद्योगों को सुरक्षा, भू-राजस्व की दर कम करना आदि।

फिर भी, उनकी सबसे महत्वपूर्ण माँग थी भारतीय अर्थव्यवस्था के शोषण को रोकना। इसलिए उदारवादी कॉन्ग्रेस को भारत में 'आर्थिक राष्ट्रवाद का जनक' माना जाता है। दादाभाई नौरोजी जैसे उदारवादी नेताओं ने धन की निकासी के मुद्दे को गंभीरता से उठाया।

परन्तु उपर्युक्त योगदान के बावजूद उनकी कुछ निश्चित सीमाएँ भी बनी रहीं, जो इस प्रकार हैं-

1. राजनीति उनके लिए अल्पकालिक पेशा बनी रही तथा कॉन्ग्रेस का अधिवेशन महज एक वार्षिक सम्मेलन बनकर रह गया।
2. फिर व्यवहार में कॉन्ग्रेस मुट्ठी भर अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवियों का क्लब बनी रही।
3. सामान्य जनता से न तो उनका संपर्क था और न ही जनता की शक्ति में उनका विश्वास था।
4. उनके द्वारा अपनाई गई प्रार्थना, प्रतिवेदन और स्मरण-पत्र की पद्धति को उग्रवादी नेताओं ने खारिज कर दिया तथा उन्हें राजनीतिक भिक्षावृत्ति की संज्ञा दी।

इसलिए कॉन्ग्रेस के उदारवादी चरण में राष्ट्रीय आकांक्षा एवं वास्तविक उपलब्धि के बीच एक बड़ी खाई बनी रही।

उग्रवादी चरण (1905-1907 ई.)

- 19वीं सदी के अंत में उदारवादी राजनीति की आलोचना आरंभ हो गई थी। अरविंद घोष ने अपने एक पैम्पलेट 'न्यू लैंप फॉर द ओल्ड' में उदारवादी राजनीति की क्रमबद्ध

आलोचना प्रस्तुत की। फिर महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक एक उग्रवादी नेता के रूप में उभरे। उधर पंजाब के एक उग्रवादी नेता लाला लाजपत राय ने 1893 तथा 1900 के बीच होने वाले कॉन्ग्रेस के किसी भी अधिवेशन में हिस्सा नहीं लिया। इस प्रकार 1900 ई० तक कॉन्ग्रेस के अंदर, एक दूसरा गुट उभर चुका था।

उग्रवाद के उद्भव के कारण

■ **क्या भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उग्रवाद के उद्भव का कारण उदारवादी राजनीतिक विफलता में निहित था?**

• उग्रवाद के उद्भव का एक कारण उदारवादी राजनीति से मोहभंग अवश्य था, परंतु यह एकमात्र कारण नहीं था, अपितु उग्रवाद की जड़ समकालीन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में निहित थी।

1. औपनिवेशिक सरकार की प्रतिगामी आर्थिक नीतियों ने उग्रवाद के उदय का आधार तैयार किया। देश की आर्थिक स्थिति औपनिवेशिक शोषण की वजह से दयनीय हो रही थी। ग्रामीण गरीबी, दरिद्रता, प्राकृतिक प्रकोप, अकाल, महामारी आदि से जनता परेशान थी, परन्तु ब्रिटिश सरकार संसाधनों के अधिकाधिक दोहन की नीतियों के क्रियान्वयन में लगी हुई थी।
2. बढ़ती हुई बेरोजगारी के प्रति शिक्षित युवाओं में प्रतिक्रिया हुई।
3. भारतीय सुधारकों यथा- दयानंद सरस्वती, बंकिम चंद्र चटर्जी तथा स्वामी विवेकानंद जैसे सुधारकों के द्वारा प्रेरित भारतीय गौरव की भावना का प्रभाव पड़ा।
4. लॉर्ड कर्जन की नीतियों की वजह से भी उग्रवादी विचारधारा का तीव्र प्रसार हुआ। कर्जन ने भारत विरोधी दृष्टिकोण अपनाया। उसने भारतीयों को संवैधानिक एवं प्रशासनिक अधिकार देने के बदले सारी शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित करने का प्रयास किया। उसने भारतीयों को उच्च सरकारी पदों के अयोग्य करार दिया, कलकत्ता कॉरपोरेशन एक्ट (1899 ई.) द्वारा इसके सदस्यों की संख्या घटा दी, भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट (1904 ई.) के माध्यम से उच्च शिक्षा पर सरकारी नियंत्रण बढ़ा दिया तथा ऑफिसियल सीक्रेट एक्ट (1904 ई.) के माध्यम से समाचार पत्रों पर प्रतिबंध आरोपित कर दिया। उसका सबसे विवादास्पद कार्य बंगाल विभाजन था जिसका मुख्य उद्देश्य बंगाल में राष्ट्रीयता की भावना को कुचलना था। इस घटना ने बंगाल में उग्रवादी और सरकार विरोधी गतिविधियाँ तीव्र कर दी।
5. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य- 1896 में इथियोपिया के हाथों इटली की पराजय तथा 1905 में जापान के हाथों रूस की पराजय जैसी घटनाओं का प्रभाव।

उदारवादी तथा उग्रवादी नेताओं के बीच मतभेद के बिन्दु तथा कॉन्ग्रेस की राजनीति पर उसका प्रभाव

■ अगर हम उदारवादी एवं उग्रवादी नेताओं के बीच मतभेद के बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हैं, तो निम्नलिखित बिन्दु उभरकर आते हैं -

1. **सामाजिक संरचना:**- अगर उदारवादी नेता उच्च वर्ग का नेतृत्व करते थे, तो उग्रवादी निम्न-मध्य वर्ग का नेतृत्व करते थे।
2. **उद्देश्य:**- उद्देश्य के स्तर पर कोई विशेष मतभेद नहीं था क्योंकि उग्रवादी समूह से ही सही, उदारवादियों ने भी स्वराज्य अथवा स्वशासन का उद्देश्य अपना लिया था।
3. **दृष्टिकोण:**- उदारवादी नेताओं का विचार पाश्चात्यवादी था। उन्हें पाश्चात्य विचारधारा और पश्चिमी संस्थाओं में गहरा विश्वास था, वहीं उग्रवादी, उदारवादियों के द्वारा ब्रिटिश जनमत से की गई अपील को राष्ट्रीय अपमान मानते थे। उग्रवादियों को भारतीय अतीत एवं संस्कृति में गहरी आस्था थी। उनका मानना था कि तकनीकी के क्षेत्र में पश्चिमी देश, भारत से आगे हैं, परन्तु भारतीय संस्कृति, पश्चिमी संस्कृति की तुलना में कहीं अधिक समृद्ध है।
4. **राजनीतिक पद्धति:**- उदारवादियों की प्रार्थना, प्रतिवेदन और स्मरण-पत्र की पद्धति को उग्रवादी नेता राजनीतिक भिक्षावृत्ति की संज्ञा देते थे, बदले में उग्रवादियों का मुख्य बल 'निष्क्रिय प्रतिरोध' की पद्धति पर था। उन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोध के अंतर्गत स्वदेशी, बहिष्कार, स्वशासन तथा राष्ट्रीय शिक्षा पर बल दिया।

■ **प्रभाव** - उग्रवादी आंदोलन के बढ़ते हुए दबाव ने कॉन्ग्रेस की राजनीति को एक अलग प्रकार की दिशा दे दी। कॉन्ग्रेस ने प्रतिवेदन की राजनीति को छोड़कर आंदोलन की राजनीति को अपना लिया, जिसका परिणाम था 1905 में स्वदेशी आंदोलन की शुरूआत।

उग्रवादियों की सीमाएँ

उग्रवादी राजनीति की निम्नलिखित सीमाएँ थीं-

• यद्यपि उन्होंने अंतिम लक्ष्य के रूप में पूर्ण स्वराज को मान लिया था, किंतु इस लक्ष्य में स्पष्टता नहीं थी।

• उग्रवादी नेताओं ने हिंदू पुनरुत्थानवाद पर बल दिया।

हालाँकि, इस नारे के आधार पर अशिक्षित भारतीयों को कुछ हद तक संगठित किया जा सका, किंतु इसके कारण संप्रदायवाद को बल मिला।

- उन्होंने भारतीय किसानों की वर्गीय माँगों को नहीं उठाया। कभी भी कर-रोको आंदोलन को प्रोत्साहित नहीं किया। इसकी वजह थी कि बहुत सारे उग्रवादी नेता स्वयं जमींदार एवं भू-स्वामी थे। उनका तर्क यह था कि भारतीय किसानों का मुद्दा समाज को विभाजित कर सकता है।

प्रश्न: लॉर्ड कर्जन ने एक अनजान उत्प्रेरक की भूमिका निभाई तथा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को एक नई गति एवं ऊर्जा प्रदान कर दी?

उत्तर: यह भी इतिहास की एक विडम्बना है कि ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड कर्जन भारत में कॉन्ग्रेस को शांतिपूर्ण मौत देने की प्रतिबद्धता के साथ आया था, परन्तु इसके विपरीत उसने कॉन्ग्रेस को एक नई गति एवं ऊर्जा प्रदान कर दी तथा कॉन्ग्रेस की राजनीति को प्रतिवेदन से आंदोलन की ओर मोड़ दिया।

राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने के लिए लॉर्ड कर्जन एक के बाद दूसरी प्रतिक्रियावादी नीति को अपनाता रहा। उदाहरण के लिए, 1899 का नगर निगम अधिनियम लाकर निर्वाचित सदस्यों की संख्या कम करना, 1904 के कलकत्ता विश्वविद्यालय अधिनियम के आधार पर कलकत्ता विश्वविद्यालय पर नियंत्रण बढ़ाना और सबसे बढ़कर उसने 1905 में बंगाल विभाजन का कदम उठाकर राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर कर दिया।

कर्जन के द्वारा उठाये गये उपर्युक्त कदमों का परिणाम हुआ कॉन्ग्रेस के अंदर उग्रवादियों का मजबूत होना। अब तक उग्रवादी महज विचारों तक ही सीमित रहे थे, परन्तु बंगाल विभाजन के पश्चात् उन्हें क्रियान्वयन का अवसर मिला। इसी का परिणाम था स्वदेशी आंदोलन, जिसने राष्ट्रीय आंदोलन की तीव्रता को बढ़ा दिया।

इस प्रकार, कर्जन ने भारतीय राष्ट्रवाद में अनजान उत्प्रेरक की भूमिका निभाई।

स्वदेशी आन्दोलन

- भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में 20वीं सदी का उदय, स्वदेशी आन्दोलन के संगठन से जुड़ा है। स्वदेशी आन्दोलन का प्रबल केन्द्र बंगाल रहा, जहाँ से यह देश के अन्य हिस्सों में प्रसारित हुआ। इस आन्दोलन के दौरान पहली बार ग्रामीण एवं शहरी छात्र, युवक, महिलाएँ सभी सक्रिय राजनीति में आए। स्वदेशी आन्दोलन की विशेषता यह थी कि, इसका दायरा महज राजनीति तक सीमित नहीं था। कला, साहित्य, संगीत, विज्ञान, उद्योग एवं जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी इस आन्दोलन का असर पहुँचा।
- वस्तुत: स्वदेशी आन्दोलन बंगाल विभाजन के विरोध में एक आन्दोलन के रूप में पैदा हुआ। लॉर्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन कर एक व्यापक असंतोष को जन्म दिया। यद्यपि घोषित रूप में लॉर्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन का कारण प्रशासनिक पुनर्व्यवस्थापन को बताया, किंतु उसका वास्तविक उद्देश्य भारत में मुस्लिम जनसंख्या को राष्ट्रीय आंदोलन से बाहर खींचकर राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करना था। किंतु स्वयं लॉर्ड कर्जन को यह अनुमान नहीं था कि बंगाल विभाजन इतना व्यापक एवं उग्र प्रतिरोध को जन्म देगा। बंगाल विभाजन की प्रतिक्रिया में स्वदेशी आंदोलन की शुरूआत हुई। 16 अक्टूबर, 1905 को बंगाल के विभाजन का क्रियान्वयन हुआ तथा इस दिन बंगाल के राष्ट्रवादियों ने एकता के प्रतीक के रूप में रक्षाबंधन का त्यौहार मनाया।
- **बंगाल विभाजन के खिलाफ प्रारंभ हुए आन्दोलन के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन में तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं-**

1. **रचनात्मक स्वदेशी अथवा आत्मशक्ति:-** आंदोलनकारी नेताओं का यह मानना था कि सरकार के खिलाफ संघर्ष चलाने के लिये जनता का प्रत्येक मामले में स्वावलंबी होना आवश्यक है क्योंकि स्वावलंबन एवं आत्मनिर्भरता का प्रश्न राष्ट्रीय स्वाभिमान, आदर एवं आत्मविश्वास के साथ जुड़ा है। रवींद्रनाथ टैगोर 1904 ई. से लेख लिखकर लोगों को इस दिशा में प्रोत्साहित कर रहे थे। अत: आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु स्वदेशी उद्योग-धंधे, राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान आदि स्थापित करने की दिशा में व्यापक प्रयास प्रारंभ हो गए। 1905 ई. में प्रथम औद्योगिक सम्मेलन रोमेश चन्द्र दत्त की अध्यक्षता में बनारस में आयोजित किया गया। पी.पी. राय ने प्रसिद्ध बंगाल केमिकल स्वदेशी स्टोर खोला। अश्विनी कुमार दत्त ने अपनी संस्था 'स्वदेश बांधव समिति' द्वारा बारीसाल में गाँवों के विकास का कार्यक्रम चलाया। राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार के लिए सतीश चंद्र मुखर्जी ने 'डॉन सोसायटी' की स्थापना की।
2. **राजनीतिक उग्रवाद:-** अरविंद घोष तथा बिपिन चंद्र पाल राजनीतिक उग्रवाद पर बल दे रहे थे। अरविंद घोष ने ही निष्क्रिय प्रतिरोध की अवधारणा रखी, जिसमें स्वदेशी, बहिष्कार, स्वशासन तथा राष्ट्रीय शिक्षा के लक्ष्य शामिल थे।
3. **क्रांतिकारी राष्ट्रवाद:-** प्रमथ मित्र तथा बारीन्द्र कुमार घोष जैसे युवा नेताओं के द्वारा क्रांतिकारी राष्ट्रवाद को प्रोत्साहन दिया जा रहा था। इनके द्वारा 1902 ई. में बंगाल

में एक क्रांतिकारी संगठन 'अनुशीलन समिति' की स्थापना की गई।

स्वदेशी आंदोलन का विस्तार

- यह बंगाल से आरंभ हुआ तथा बंगाल से इसका विस्तार पंजाब, महाराष्ट्र एवं दक्षिण में मद्रास में हुआ। आंध्र प्रदेश में यह एक नए नाम से प्रचलित हुआ। यहाँ इसे **'वंदे मातरम्'** आंदोलन के नाम से जाना गया।
- बंगाल में स्वदेशी आंदोलन के एक प्रेरक तत्व स्वामी विवेकानंद रहे थे, परंतु धीरे-धीरे बंगाल पर तिलक के जुझारू राष्ट्रवाद का प्रभाव पड़ने लगा था। परंतु बंगाल में स्वदेशी आंदोलन का मौलिक स्वर आर्थिक ही रहा था।
- महाराष्ट्र भी स्वदेशी आंदोलन का महत्वपूर्ण गढ़ था। यहाँ स्वदेशी आंदोलन को संगठित करने का कार्य बाल गंगाधर तिलक ने किया। परंतु जहाँ बंगाल के आंदोलन का मुख्य स्वर आर्थिक था, वहीं महाराष्ट्र के आंदोलन का स्वर मुख्यतया धार्मिक था। तिलक ने धार्मिक प्रतीकों का सहारा लेकर लोगों को संगठित करने का काम किया।
- तिलक ने 1896 में गौरक्षा समिति का गठन किया तथा इस मुद्दे पर लोगों को संगठित करने का प्रयास किया। फिर 20वीं सदी के आरंभ में उन्होंने गणेश उत्सव और शिवाजी उत्सव जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया।

योगदान

1. पहली बार कॉन्ग्रेस, प्रतिवेदन से आंदोलन की राजनीति की ओर मुड़ी।
2. स्वदेशी आंदोलन के मध्य वे तमाम प्रवृत्तियां विकसित हुईं जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में अपना प्रभाव बनाए रखा; यथा- स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा को प्रोत्साहन। इसने आगे गांधीवादी आंदोलन का भी मार्ग तैयार कर दिया।
3. स्वदेशी आंदोलन के दबाव में सरकार ने 1911 में बंगाल के विभाजन को रद्द कर दिया।
4. देशी उद्योग के रूप में बंगाल में प्रफुल्ल चंद्र राय के द्वारा 'बंगाल केमिकल्स' तथा मद्रास में चिदंबरम् पिल्लई के द्वारा एक 'नेविगेशन कंपनी' की स्थापना की गई। बहिष्कार की नीति के कारण भी देशी उद्योगों को प्रोत्साहन मिला तथा इसके अतिरिक्त बैंकिंग तथा बीमा क्षेत्र में भी भारतीय पूंजी का विस्तार हुआ।
5. देशी भाषाओं को प्रोत्साहन मिला क्योंकि उग्रवादी नेताओं और क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों के द्वारा उग्र विचारों को प्रोत्साहन देने के लिए देशी समाचार पत्रों का प्रकाशन किया गया।
6. देशी कला के विकास में भी इस आंदोलन का योगदान रहा। अवनींद्रनाथ टैगोर के द्वारा मुगल चित्रकला को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया।

सीमाएं

1. स्वदेशी आंदोलन के नेता मुस्लिमों का समर्थन प्राप्त करने में असफल रहे। इसका महत्वपूर्ण कारण मुस्लिमों के द्वारा बंगाल विभाजन का समर्थन किया जाना था। इस आंदोलन में हिंदू धार्मिक प्रतीकों के इस्तेमाल आदि ने भी मुसलमानों को स्वदेशी आंदोलन से अलग रखा।
2. स्वदेशी आंदोलन बंगाल के किसानों को आकर्षित नहीं कर सका क्योंकि नेताओं ने प्रगतिशील कृषि कार्यक्रमों को नहीं अपनाया।

स्वदेशी आन्दोलन का समाप्त होना

- स्वदेशी आन्दोलन के खतरे को सरकार भाँप गई थी। अत: साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन के रूप में इसे शक्तिशाली दमनकारी कदम का शिकार होना पड़ा।
- कॉन्ग्रेस में उभर रहे आपसी मतभेद ने उग्रवादियों तथा उदावादियों के मध्य की खाई इतनी गहरी कर दी कि 1907 में कॉन्ग्रेस का विभाजन हो गया।
- स्वदेशी आन्दोलन के पास कोई प्रभावी संगठन का नहीं होना।

उदारवादी एवं उग्रवादी दल के बीच मतभेद

- स्वदेशी आंदोलन के मध्य ही उदारवादी एवं उग्रवादी नेताओं के बीच मतभेद उभरकर आये। मतभेद के निम्नलिखित बिंदु थे -

1. उदारवादियों का मानना था कि बंगाल का विभाजन महज बंगाल की समस्या है। अत: स्वदेशी आंदोलन को बंगाल तक ही सीमित होना चाहिए, किंतु उग्रवादी बंगाल विभाजन की समस्या को अखिल भारतीय समस्या मानते थे तथा इसका विस्तार संपूर्ण देश में करना चाहते थे।
2. उदारवादी बहिष्कार की नीति को केवल विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तक ही सीमित रखना चाहते थे, जबकि उग्रवादी इसे अन्य क्षेत्रों में भी लागू करना चाहते थे।

सूरत का विभाजन

- 1906 के कलकत्ता अधिवेशन में उग्रवादियों ने कॉन्ग्रेस अध्यक्ष के रूप में तिलक का नाम प्रस्तावित किया, किंतु मेहता-गोखले गुट ने दादा भाई नौरोजी का नाम प्रस्तावित कर उग्रवादियों को मात दे दी तथा उग्रवादी, दादा भाई नौरोजी की उम्मीदवारी का विरोध नहीं कर सके, किंतु उग्रवादी समूह के दबाव में कॉन्ग्रेस को 'स्वराज', 'स्वदेशी', 'बहिष्कार' और राष्ट्रीय शिक्षा जैसे चार भारी-भरकम प्रस्ताव स्वीकार करने पड़े।

- जब कलकत्ता अधिवेशन से उदारवादी नेता लौट रहे थे तो अपने को अपमानित महसूस कर रहे थे। अब 1907 का कॉन्ग्रेस अधिवेशन नागपुर में होने वाला था, चूँकि नागपुर उग्रवादियों का गढ़ था, इसलिए गोखले-मेहता गुट ने अंतिम समय में अधिवेशन का स्थान नागपुर की जगह सूरत को तय किया।
- उस समय उग्रवादी गुट में यह अफवाह चरम बिंदु पर थी कि उग्रवादियों ने कलकत्ता अधिवेशन में जो रियायतें प्राप्त की हैं, उदारवादी नेता सूरत अधिवेशन में उन्हें समाप्त करने वाले हैं, इसलिए उग्रवादी प्रत्येक स्थिति में अपने अध्यक्ष को चाहते थे।
- अत: एक बार फिर उन्होंने तिलक का नाम प्रस्तावित किया, किंतु मेहता-गोखले गुट ने तभी एक उदारवादी नेता रास बिहारी घोष का नाम मनोनीत किया, किंतु उग्रवादियों ने इसे स्वीकार नहीं किया तथा कॉन्ग्रेस पंडाल में बलवे शुरू हो गए। इसकी परिणति सूरत के विभाजन के रूप में हुई अर्थात् उदारवादियों ने एक नया संविधान लाकर उग्रवादियों को कॉन्ग्रेस से बाहर कर दिया।

सम्प्रदायवाद की प्रगति

- सम्प्रदायवाद एक आधुनिक विचारधारा है तथा ब्रिटिश शासन के अंतर्गत इसे विकसित होने का पूरा अवसर मिला। सम्प्रदायवाद यह मानकर चलता है कि एक विशिष्ट धार्मिक सम्प्रदाय के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक हित दूसरे धार्मिक सम्प्रदाय के उन हितों से पृथक होते हैं। फिर भी, इसे सम्प्रदायवाद का उदारवादी चरण मान सकते हैं।
- परन्तु जब सम्प्रदायवाद ऐसा मानने लगता है कि एक विशिष्ट धार्मिक सम्प्रदाय के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हित दूसरे सम्प्रदाय के उन हितों के विरोधी होते हैं, तो सम्प्रदाय उग्र चरण में पहुंच जाता है।

भारतीय राजनीति में सम्प्रदायवाद को प्रेरित करने वाले कारक

1. 19वीं सदी के **समाज एवं धर्मसुधार आंदोलन** से पुनरूत्थानवादी प्रवृत्ति को बल मिला तथा सम्प्रदायवाद को प्रोत्साहन मिला।
2. **ब्रिटिश इतिहास लेखन एवं जनगणना:**- जेम्स मिल जैसे ब्रिटिश विद्वान के द्वारा भारतीय इतिहास के हिन्दू काल और मुस्लिम काल में विभाजन से सम्प्रदायवाद को बल मिला।
3. **सर सैय्यद अहमद खान की अवसरवादी नीति** तथा उनके द्वारा यह घोषित किया जाना कि हिन्दू एवं मुसलमान दो पृथक कौम हैं। वस्तुत: 1857 के विद्रोह में हिंदू और मुसलमान दोनों ने मिल-जुलकर अपनी भूमिका निभाई थी, किंतु ब्रिटिश ने 1857 के विद्रोह को मुस्लिम षड्यंत्र का परिणाम करार दे दिया। फिर ब्रिटिश ने इस विद्रोह के पश्चात् मुस्लिम विरोधी नीति अपनायी। परिणामत: शिक्षा एवं सरकारी सेवा में मुस्लिम पहले से ही पिछड़े हुए थे, वे अब और भी पिछड़ते चले गए।

- इस बात को सबसे पहले महसूस किया सर सैयद अहमद खान ने। सर सैयद अहमद खान, जो 1870 के दशक में राष्ट्रवादी रहे थे, 1880 के दशक में आकर राज पक्षधर हो गए क्योंकि उन्होंने ऐसा महसूस किया कि ब्रिटिश समर्थन के बिना मुस्लिम समाज का उत्थान संभव नहीं है।
- अगर एक दृष्टि से देखा जाए तो मुस्लिम संप्रदायवाद की आधारभूत संरचना सर सैयद अहमद खान ने ही निर्मित कर दी। उन्होंने भारत में एक प्रतिनिध्यात्मक संस्था के विकास को हतोत्साहित किया क्योंकि उनका मानना था कि इन संस्थाओं का विकास मुस्लिम अल्पसंख्यकों के हित में नहीं है।

शिमला प्रतिनिधि मण्डल

- अक्टूबर, 1906 में नवाब सलीमुल्लाह एवं आगा खाँ के अधीन 35 कुलीन मुसलमानों का प्रतिनिधिमंडल वायसराय लॉर्ड मिंटो से मिला तथा उसके समक्ष माँग रखी कि साम्राज्य में अर्पित की गई सेवा के बदले हमें जनसंख्या से अधिक मताधिकार मिले।

मुस्लिम लीग का गठन

- दिसम्बर, 1906 ई. में ढाका में आगा खाँ, ढाका के नवाब सलीमुल्लाह और नवाब मोहसिन-उल-मुल्क के नेतृत्व में मुस्लिम लीग का गठन हुआ। वकार-उल-मुल्क मुस्लिम लीग के पहले अध्यक्ष थे। मुस्लिम लीग ने आरंभ में ब्रिटिश राज पक्षधर नीति अपना ली।

■■■

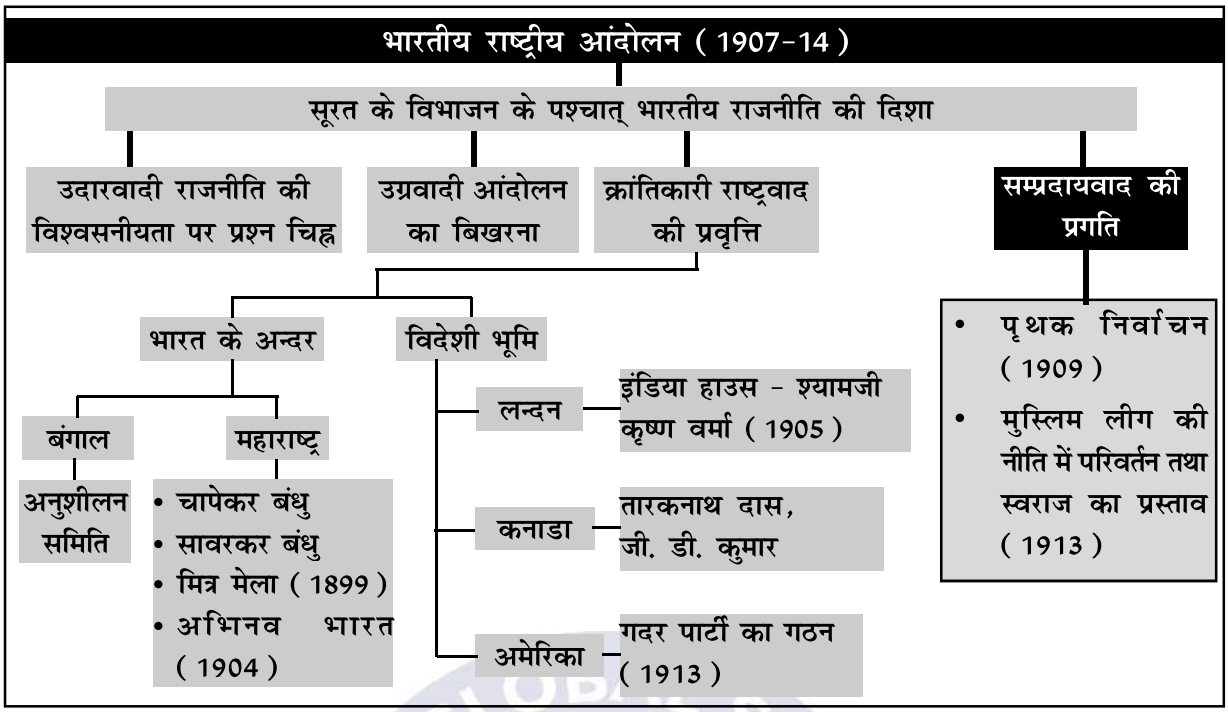

सूरत विभाजन के पश्चात् राष्ट्रीय आंदोलन की दशा एवं दिशा

उदारवादी राजनीति की विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न

- सूरत विभाजन के पश्चात् कॉन्ग्रेस महज मुट्ठीभर उदारवादी नेताओं का क्लब बनकर रह गयी तथा एक बार फिर वह प्रतिवेदन की राजनीति की ओर लौट गयी। उदारवादी अपने कार्यक्रम एवं नीतियों को यथोचित गति प्रदान नहीं कर सके तथा युवा पीढ़ी ने उनके नेतृत्व को नकार दिया। साथ ही, उदारवादी अपने उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का व्यापक प्रचार-प्रसार भी नहीं कर सके। इस कारण उदारवादी नेतृत्व ने अपनी विश्वसनीयता खो दी।

उग्रवादी आंदोलन का बिखरना

- सूरत विभाजन के पश्चात् उग्रवादी आंदोलन भी बिखर गया। तिलक छह वर्षों के लिए मांडले जेल भेज दिए गए। अरविन्द घोष ने राजनीति से संन्यास ले लिया तथा लाला लाजपत राय अमेरिका की ओर पलायन कर गये। अजीत सिंह को देश से निर्वासित कर दिया गया एवं निर्वासन के पश्चात् वे फ्रांस चले गए।

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति

- क्रांतिकारी राष्ट्रवाद ने राष्ट्रीय आंदोलन में उत्पन्न राजनीतिक शून्य को भरने का प्रयास किया। अत: इस काल में क्रांतिकारी घटनाओं को प्रोत्साहन मिला। इन क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों पर दयानंद सरस्वती, बंकिम चंद्र चटर्जी और स्वामी विवेकानंद जैसे चिंतकों का भी प्रभाव था। साथ ही, अंतर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी गतिविधियों; जैसे- आयरिश विद्रोह ने भी क्रांतिकारियों को प्रभावित किया।
- इन क्रांतिकारियों ने विशेष रूप से वैयक्तिक वीरता पर बल दिया। जिसमें क्रूर एवं अलोकप्रिय ब्रिटिश अफसरों तथा देशद्रोहियों की हत्या करना, कोष (धनराशि) एकत्र करने के लिये डाका डालना, ब्रिटेन के शत्रु देशों से सैनिक सामग्री प्राप्त करने के प्रयास करना आदि शामिल था।
- देश से लेकर विदेश की भूमि तक क्रांतिकारी फैल गये। भारत में बंगाल एवं महाराष्ट्र इसके प्रमुख केन्द्र बने।
- बंगाल में प्रमुख क्रांतिकारी गुट मिदनापुर एवं कलकत्ता की अनुशीलन समिति था। इसकी स्थापना प्रमथनाथ मित्र, जितेंद्रनाथ मुखर्जी तथा बारींद्र कुमार घोष आदि के द्वारा 1902 ई. में की गई थी।
- महाराष्ट्र में क्रांतिकारी आंदोलन का उदय 1895 में तब हुआ, जब चापेकर बंधुओं ने प्लेग कमिश्नर रैण्ड तथा आयरस्ट की हत्या कर दी। आगे सावरकर बंधुओं ने 1899 ई. में 'मित्र मेला' नामक संगठन की स्थापना की। 1904 में विनायक दामोदर सावरकर ने लंदन में 'अभिनव भारत' की स्थापना की।
- इसके अलावा रास बिहारी बोस तथा सचिन्द्र नाथ सान्याल ने पंजाब, दिल्ली तथा संयुक्त प्रांत में क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन किया।
- विदेशों में क्रांतिकारी आंदोलन की आधारशिला रखने का श्रेय श्यामजी कृष्ण वर्मा को जाता है। कुछ अंग्रेज मित्रों की सहायता से उन्होंने 'इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' नामक अपना एक अखबार शुरू किया। उन्होंने लंदन में 1905 ई. में

'होमरूल सोसाइटी' तथा 'इंडिया हाउस' की भी स्थापना की। 1907 ई. में नासिक के एक क्रांतिकारी दल ने वी. डी. सावरकर के नेतृत्व में इंडिया हाउस पर कब्जा कर लिया। इसी दल के एक सदस्य मदनलाल ढींगरा ने 1909 ई. में कर्नल वाइली की हत्या कर दी।

- पेरिस तथा जिनेवा में क्रांतिकारी मैडम भीकाजी कामा सक्रिय थीं। 'वंदे मातरम्' पत्र द्वारा क्रांतिकारी विचारधारा का प्रकाशन प्रारंभ किया।
- क्रांतिकारियों ने अमेरिका के सैन-फ्रांसिस्को में 1913 में 'गदर आंदोलन' की शुरुआत की। इस आंदोलन के प्रणेता सोहन सिंह भाखना तथा लाला हरदयाल थे। 'गदर' (साप्ताहिक पत्र) इस पार्टी का मुखपत्र था। इस आंदोलन के मुख्य कार्यक्रम में सशस्त्र क्रांति के माध्यम से भारत में ब्रिटिश शासन को समाप्त करना तथा अंग्रेजों के हटने के पश्चात् भारत में स्वतंत्रता एवं समानता के आधार पर एक लोकतांत्रिक सरकार का गठन करना शामिल था।
- क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों की महत्ता इस बात में है कि जब भी राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में शिथिलता आई, क्रांतिकारी राष्ट्रवाद ने उसे एक नई ऊर्जा प्रदान की तथा लोगों में आत्मसम्मान एवं राष्ट्रवाद की भावना को जगाया। सबसे बढ़कर, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1929 ई. के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज के लक्ष्य को अपनाया था, किंतु क्रांतिकारियों ने इस लक्ष्य को बहुत पहले ही अपना लिया था।
- **कामागाटामारू की घटना (1914)** भी क्रांतिकारी राष्ट्रवाद से जुड़ी है। यह प्रकरण कनाडा में भारतीयों के प्रवेश से संबंधित था। कनाडा सरकार द्वारा ऐसे भारतीयों का अपने यहाँ प्रवेश वर्जित कर दिया गया था, जो सीधे भारत से नहीं आए थे। वस्तुतः भारतीय मूल के व्यापारी गुरुदत्त सिंह ने कामागाटामारू नामक एक जापानी जहाज से पूर्वी एवं दक्षिण-पूर्वी एशिया के करीब 376 यात्रियों के साथ वैंकूवर की ओर प्रस्थान किया।
- किन्तु कनाडा सरकार के सख्त रवैये के कारण कामागाटामारू जहाज को वैंकूवर की जल सीमा को छोड़ना पड़ा। अंग्रेजों द्वारा जहाज को सीधे कलकत्ता लाने का आदेश दिया गया। जहाज के कलकत्ता पहुँचते ही कुछ यात्रियों और पुलिस के मध्य झड़पें हुईं, जिनमें करीब 18 यात्री मारे गए। शेष यात्रियों को जेल में डाल दिया गया।

संप्रदायवाद की प्रगति

- **भारत शासन अधिनियम, 1909 :-** ब्रिटिश सरकार द्वारा 1909 के अधिनियम को लागू करने का मुख्य उद्देश्य मुस्लिम अल्पसंख्यकों को खुश करना, उदारवादियों का हाथ मजबूत करना तथा उग्रवादियों की शक्ति को तोड़ना था। भारत के वायसराय लॉर्ड मिंटो तथा भारत सचिव मॉर्ले के नाम पर इसे 'मॉर्ले-मिंटो एक्ट' भी कहा जाता है।
- 1909 के अधिनियम को सबसे अधिक याद किया जाता है इसके पृथक निर्वाचन पद्धति के दुष्परिणामों के लिए। इसने राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था में धर्म के औचित्य को सिद्ध कर दिया। इसने आगे सांप्रदायिक राजनीति के लिए मार्ग खोल दिया।
- वस्तुतः 1909 के अधिनियम में भौगोलिक प्रतिनिधित्व के स्थान पर विभिन्न हितों, वर्गों, धार्मिक समुदायों और जातियों के आधार पर प्रतिनिधित्व तय किया गया। उदाहरण के लिए, विश्वविद्यालय प्रेसीडेंसी, महानगर निगमों, वाणिज्य मंडलों तथा बागान मालिकों, भूमिपतियों तथा व्यावसायिक वर्गों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया।
- मुस्लिम चुनाव क्षेत्र के प्रावधान को ही पृथक् निर्वाचन व्यवस्था कहा गया है। इस एक्ट का यही पहलू सबसे विवादास्पद भी रहा है। इसके तहत मुस्लिमों को पहली बार पृथक् निर्वाचन दिया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्वि-राष्ट्रवाद का विचार पृथक निर्वाचन पद्धति की तार्किक परिणति था।

- **मुस्लिम लीग की नीतियों में परिवर्तन तथा स्वराज का प्रस्ताव (1913):-** 1912-13 ई. में मुस्लिम लीग की राजनीति में एक नई बात देखी गई। इस लीग में यंग पार्टी के कुछ सदस्य; यथा-मुहम्मद अली, शौकत अली, हकीम अजमल खाँ, हसन इमाम, जाफर अली खाँ और मौलाना अबुल कलाम आजाद का उदय हुआ। इन्होंने मुस्लिम लीग की नीतियों को कांग्रेस की नीतियों के निकट ला दिया। इन्हीं के प्रभाव में 1913 ई. में लखनऊ अधिवेशन में लीग ने भी स्वराज के लक्ष्य को अपना लिया। अब लखनऊ पैक्ट की भूमिका तैयार हो गई।

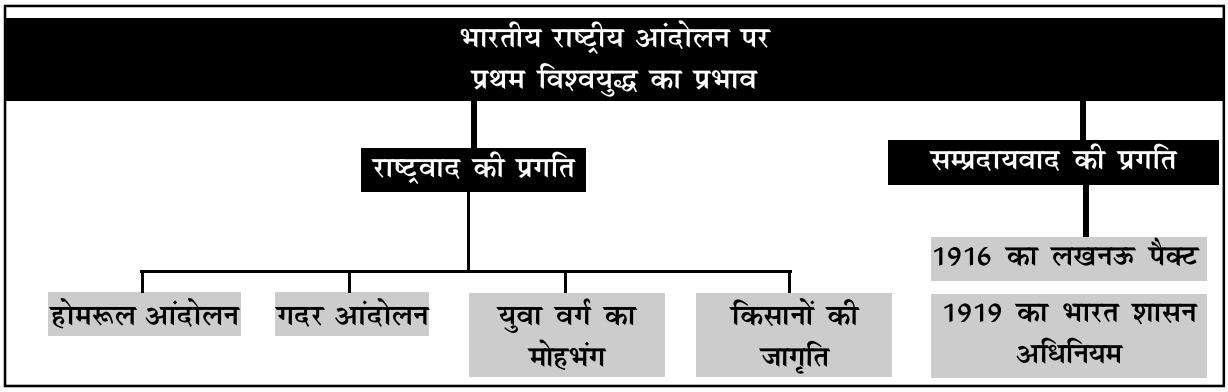

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव

- प्रथम विश्वयुद्ध (1914-19 ई.) में ब्रिटिश सरकार ने भारत को भी एक युद्धरत राष्ट्र घोषित कर दिया था। हालाँकि, इस युद्ध में भारत प्रत्यक्ष रूप से भागीदार नहीं था, फिर भी इसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर व्यापक प्रभाव डाला, जिसे भारतीय अर्थव्यवस्था, क्रांतिकारी गतिविधियों तथा राजनीतिक क्षेत्र में विशेष तौर पर देखा जा सकता है। एक तरह से इसने राष्ट्रीय आंदोलन में नई ऊर्जा एवं गति ला दी।

होमरूल आंदोलन

- प्रथम विश्वयुद्ध की स्थिति में जब एक तरफ गांधीजी एवं अन्य भारतीयों के द्वारा ब्रिटिश के साथ युद्ध प्रयास में सहयोग की नीति अपनाई जा रही थी, उस समय तिलक एवं श्रीमती एनी बेसेंट ने पृथक्-पृथक् होमरूल लीग का गठन कर होमरूल आंदोलन प्रारम्भ किया। 'होमरूल' शब्द आयरलैण्ड से लिया गया था और उसका बल स्वराज अथवा स्वशासन प्राप्त करने पर रहा था।
- सबसे पहले तिलक ने अप्रैल, 1916 में होमरूल लीग की स्थापना की। तिलक ने अपनी संस्था के द्वारा कर्नाटक, महाराष्ट्र (बम्बई छोड़कर), मध्य प्रांत तथा बरार में जागरूकता फैलाने का कार्यक्रम निर्धारित किया। भारत के शेष हिस्सों की जिम्मेवारी सितंबर, 1916 में स्थापित एनी बेसेंट की लीग को दी गयी।
- इस आन्दोलन के मुख्य कार्यक्रम राजनीतिक विषयक एवं जन जागरण संबंधी पुस्तिकाओं का प्रकाशन एवं विक्रय, राजनीतिक विषयों पर वाद-विवाद एवं भाषण आयोजित करवाना, समाज सेवा करना तथा जन सभाएँ आयोजित करवाना निर्धारित किये गए। तिलक ने 'मराठा' एवं 'केसरी' समाचार-पत्रों को होमरूल आंदोलन की अवधारणा स्पष्ट करने तथा प्रचार-प्रसार का माध्यम बनाया था। बेसेंट ने 'कॉमनवील' तथा 'न्यू इंडिया' जैसे पत्रों के माध्यम से अपने लीग के उद्देश्यों का प्रचार किया।
- तिलक ने क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा तथा भाषाई राज्यों की मांग को स्वराज्य की माँग के साथ जोड़ दिया। तिलक ने यह घोषणा की कि, 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा'।
- यद्यपि यह सत्य है कि होमरूल आन्दोलन अपने लक्ष्य को वास्तविक रूप से प्राप्त किये बगैर बिखर गया, तथापि इसने कुछ दीर्घकालिक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ भी हासिल कीं। इसने नये क्षेत्रों में आन्दोलनकारी राजनीति का प्रसार कर आन्दोलन को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया। इससे पहले आन्दोलन का फैलाव बंगाल, महाराष्ट्र अथवा पंजाब तक ही सीमित रहा था।
- इस आन्दोलन ने भावी राष्ट्रीय आन्दोलन को अनेक महत्वपूर्ण नेता भी प्रदान किए। उदाहरण के लिए, मद्रास में सत्यमूर्ति, बंगाल में सी. आर. दास, संयुक्त प्रांत में जवाहर लाल नेहरू आदि। सबसे बढ़कर होमरूल आन्दोलन की महत्ता इस बात में है कि यह गाँधीवादी चरण के आन्दोलन से पूर्व, पहला अखिल भारतीय स्तर का जन आन्दोलन था। इसने सदा के लिये आन्दोलन के रूख को उदारवादी चरण से जन आन्दोलन की तरफ मोड़ दिया।

गदर आंदोलन

- प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान क्रांतिकारी संगठनों की गतिविधियों में तेजी देखी गई। इस काल में क्रांतिकारियों ने विदेशों से सहायता लेकर भारत में ब्रिटिश सत्ता का तख्ता पलटने का प्रयास किया। इसी क्रम में लाला हरदयाल, सोहन सिंह भाखना एवं भाई परमानंद द्वारा 1913 ई. में सेन-फ्रांसिस्को में गठित गदर पार्टी ने प्रथम विश्वयुद्ध का फायदा उठाकर यूरोप से भारत तक बड़ा नेटवर्क स्थापित कर लिया और ब्रिटिश सरकार का तख्तापलट करने का प्रयास किया।
- हालाँकि उसकी योजना सफल नहीं रही परन्तु गदर आंदोलन ने भारतीयों में राष्ट्रवादी चेतना को प्रोत्साहन देने का प्रयास किया। इस पार्टी द्वारा अंग्रेजी, हिन्दी एवं गुरूमुखी भाषा में 'गदर' नामक पत्र का प्रकाशन कर क्रांतिकारी विचारधारा को प्रोत्साहित किया गया।

युवा वर्ग का मोहभंग

- सामान्यत: युवा वर्ग पश्चिमी सभ्यता को सबसे अच्छा

समझता था तथा उससे प्रभावित रहता था। परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध के काल में उसने यूरोप में जो खून-खराबा देखा इससे उसका पश्चिमी सभ्यता से मोह-भंग हो गया। इस कारण भी आंदोलन की मन:स्थिति बनी।

किसानों की जागृति

- प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारत से बाहर भेजे गए सैनिक जब अपने गाँव की ओर गये तब उन्होंने पश्चिमी सभ्यता की कमजोरियों को उजागर किया। इस कारण किसानों में राजनीतिक जागृति आयी।

संप्रदायवाद की प्रगति

- **1916 का लखनऊ पैक्ट:**- जैसा कि हम जानते हैं कि मुस्लिम लीग ने स्थापना के समय से ही ब्रिटिश राज पक्षधर नीति अपना ली थी, परन्तु 1910 ई. के पश्चात् इस पर मुस्लिम राष्ट्रवादी नेताओं का प्रभाव बढ़ने लगा। इसके परिणामस्वरूप 1913 ई. में मुस्लिम लीग ने 'स्वराज' के लक्ष्य को अपना लिया। इस प्रकार, लक्ष्य के स्तर पर मुस्लिम लीग कॉन्ग्रेस के निकट आ गयी। उसकी तार्किक परिणति थी 1916 का लखनऊ पैक्ट।
- इस पैक्ट में कॉन्ग्रेस और लीग ने मिलकर स्वराज की माँग को आगे बढ़ाने का निर्णय लिया, बदले में कॉन्ग्रेस ने पृथक निर्वाचन को स्वीकार कर लिया। यह कॉन्ग्रेस के निर्णय की भूल मानी जाती है क्योंकि कॉन्ग्रेस ने अनजाने में राजनीति में धार्मिक पहचान को स्वीकृति देकर साम्प्रदायिक शक्ति को बढ़ावा दे दिया।
- **1919 का भारत शासन अधिनियम :**- स्वशासन के मुद्दे पर एक होमरूल आंदोलन चलाया जा चुका था। अत: 20 अगस्त, 1917 की अगस्त घोषणा में स्पष्ट रूप में यह कहा गया कि भारत में ब्रिटिश शासन का उद्देश्य स्वशासन का विस्तार करना है। किंतु कुल मिलाकर 1919 का मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार बिल अन्य बातों की बजाय साम्राज्यवादी हित में लाया गया था।
- सिद्धान्तत: इस सुधार बिल में पृथक निर्वाचन पद्धति की आलोचना की गई, किंतु व्यवहार में इसे न केवल बने रहने दिया गया बल्कि इसका विस्तार भी किया गया। अब सिख, एंग्लो-इंडियन तथा यूरोपियों को भी यह अधिकार मिल गया।
- मतदान का विस्तार किया गया, परंतु शहरी बुद्धिजीवियों की तुलना में ग्रामीण कुलीनों को अधिक मताधिकार दिया गया, ताकि वे विधानमण्डलों में ब्रिटिश सहयोगी तथा परिवर्तन विरोधी शक्ति के रूप में कार्य कर सकें।
- इसके माध्यम से भारतीय राजनीति का प्रांतीयकरण हुआ। फिर इसने संप्रदायवाद को भी प्रोत्साहन दिया। दरअसल, केन्द्रीय स्तर पर भारतीयों को सरकार में कोई भागीदारी नहीं दी गई, जबकि सीमित रूप में ही सही प्रांतीय स्तर पर भारतीयों को राजनीति में भागीदारी मिली। इस कारण भारतीय नेता प्रांतीय राजनीति की ओर मुड़ गए। इससे राजनीति का प्रांतीयकरण हो गया, वहीं हिन्दू नेता हिन्दू-बाहुल्य प्रांतों की ओर तथा मुस्लिम नेता मुस्लिम-बाहुल्य प्रांतों की ओर मुड़ गए। इस कारण राजनीति का साम्प्रदायीकरण हुआ।

अभ्यास प्रश्न: 'प्रथम विश्वयुद्ध ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में अंतर्राष्ट्रीय आयाम जोड़ दिये।' इस कथन का परीक्षण कीजिए।

(प्रश्न विश्लेषण: यह प्रश्न अपने स्वरूप में Hypothetical है। Key Words हैं- 'प्रथम विश्वयुद्ध', 'राष्ट्रीय आंदोलन', 'अंतर्राष्ट्रीय आयाम')

उत्तर: भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव दो रूपों में व्यक्त होता है, प्रथम- राष्ट्रीय आंदोलन में तीव्रता आई, दूसरे- वह अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य से जुड़ गया। इसे निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है-

- स्वराज अथवा स्वशासन की मांग को लोकप्रिय बनाने के लिये तिलक एवं ऐनी बेसेंट के द्वारा पृथक् होमरूल लीग का गठन कर होमरूल आंदोलन चलाया गया। 'होमरूल' शब्द आयरलैंड से लिया गया था, अत: यह आयरिस स्वशासन के विचार से प्रभावित था।
- उसी प्रकार, भारत एवं भारत से बाहर युवाओं द्वारा क्रांतिकारी राष्ट्रवादी घटनाओं को अंजाम दिया गया। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका गदर आंदोलन ने निभाई। यह वह काल था, जब भारतीय क्रांतिकारी वैश्विक स्तर पर होने वाले साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के प्रभाव में आ गए थे।
- युद्ध के बाद गांधीजी द्वारा रौलेट सत्याग्रह आंदोलन का संचालन किया गया। रौलेट सत्याग्रह आंदोलन भी कहीं-न-कहीं वैश्विक स्तर पर होने वाले साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन से प्रेरित था।
- अंत में, प्रथम विश्वयुद्ध के मध्य ही ओटोमन खलीफा का मुद्दा उभरा, जो आगे खिलाफत आंदोलन का आधार बना।
- इसके अतिरिक्त विदेशी मोर्चे से लौटते हुए सैनिक किसानों के बीच में जागृति ला रहे थे, अत: इस काल में अनेक किसान सभाएँ गठित हो रही थीं।

इस प्रकार, प्रथम विश्वयुद्ध ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में अंतर्राष्ट्रीय आयाम जोड़ दिया।

■■■

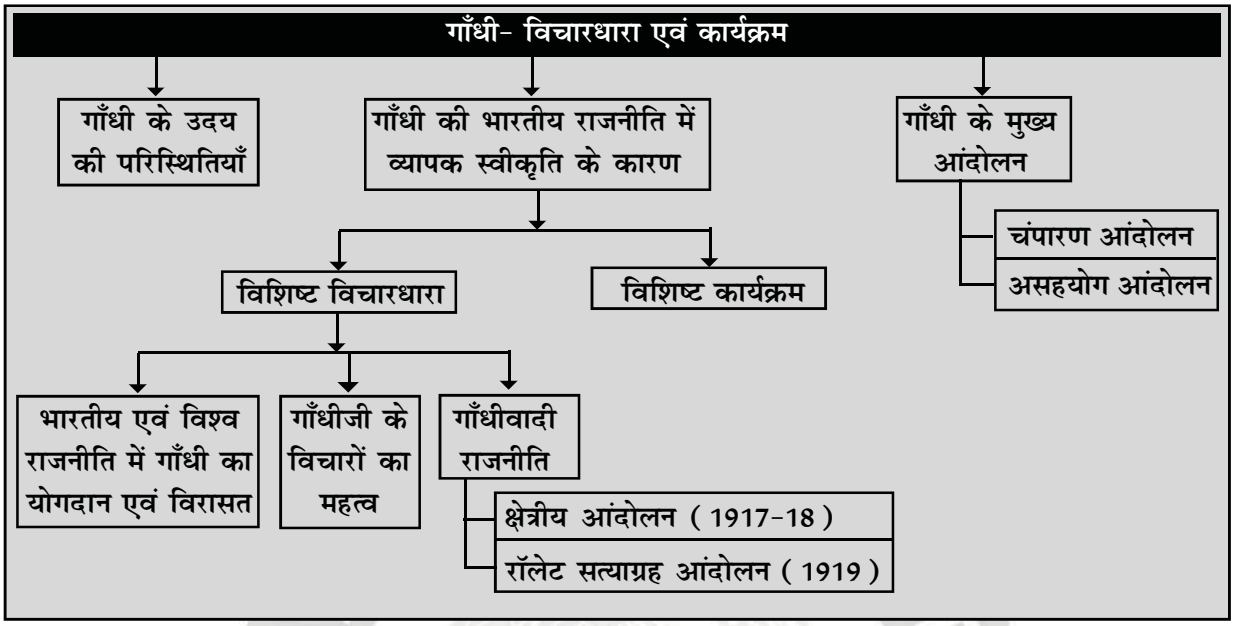

- गाँधीजी ने अपना राजनीतिक जीवन दक्षिण अफ्रीका से शुरू किया था। वे 1915 ई. में प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारत आए थे। आरंभ में उन्होंने ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग की नीति अपनाई तथा लोगों से यह अपील की कि ब्रिटिश सरकार को अधिक से अधिक सहायता दें और बढ़-चढ़कर सेना में भर्ती हों। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ही उन्होंने चंपारण, अहमदाबाद और खेड़ा जैसे आंदोलनों में हिस्सा लेकर अपनी पहचान बनाई, फिर प्रथम अखिल भारतीय आंदोलन रॉलेट सत्याग्रह में शामिल हुए।

गाँधी के उद्‌भव की परिस्थितियाँ

- गाँधी के आगमन के समय एक राजनीतिक शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो चुकी थी। कांग्रेस का उदारवादी कार्यक्रम जनता के बीच अपना विश्वास खो चुका था तथा उग्रवादी नेता एक जनआन्दोलन लाने में विफल रहे थे। इसलिए भारतीय राजनीति में गाँधीजी का उद्‌भव अपेक्षाकृत आसान था।
- भारत आगमन से पहले ही गाँधी जी ने अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली थी। दक्षिण अफ्रीका में ही उन्होंने अंहिसा और सत्याग्रह की तकनीक, रचनात्मक कार्यक्रम सभी तकनीकों को विकसित कर लिया था। इसलिए भारत में स्वीकृति मिलने में उन्हें आसानी हुई।
- प्रथम विश्व युद्ध ने भारत में विभिन्न सामाजिक वर्गों को प्रभावित किया। पूँजीपति वर्ग प्रथम विश्व युद्ध के मध्य औद्योगिक वस्तुओं पर करारोपण तथा युद्ध के पश्चात् की अनिश्चितता से विक्षुब्ध थे, जबकि श्रमिक वर्ग उद्योगों में छँटनी के खतरे को झेल रहे थे। उसी प्रकार, धनी किसान कृषि वस्तुओं के मूल्यों में गिरावट से परेशान थे, जबकि निम्न वर्गीय किसान भुखमरी और अकाल की समस्या से ग्रस्त थे। इसके अतिरिक्त प्रथम विश्व युद्ध के मध्य पहली बार भारत की युवा पीढ़ी ने पाश्चात्य संस्कृति के कुरूप चेहरे को देखा अर्थात् स्वतंत्रता एवं प्रजातंत्र को जन्म देने का दावा करने वाले देश किस प्रकार मानव के विरूद्ध रासायनिक और जैविक युद्धास्त्रों का प्रयोग कर रह थे। यह भी एक वजह है कि गाँधीवादी राष्ट्रवाद को विभिन्न वर्गों का समर्थन प्राप्त हुआ।
- गाँधी के आगमन के समय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी आंदोलन का एक माहौल निर्मित था। उपनिवेशों में इसने साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन का रूप लिया, तो स्वतंत्र देशों में पूँजीवाद विरोधी आंदोलन का। अतः गाँधीवादी आंदोलन को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उभर रही इन नवीन वैचारिक शक्तियों से भी प्रोत्साहन मिला।

गाँधी की भारतीय राजनीति में व्यापक स्वीकृति के कारण

गाँधी की विशिष्ट विचारधारा

गाँधीजी की विचारधारा अत्यधिक विलक्षण थी, जो लोगों को आसानी से आकर्षित कर लेते थे। इसके निम्नलिखित महत्वपूर्ण पहलू थे-

- **सत्याग्रह :** इस पद्धति में संबंधित व्यक्ति अथवा व्यवस्था के विरूद्ध आक्रोश अथवा घृणा का भाव नहीं होता, वरन् सुधार के लिए एक मानवीय अपील होती है। अतः

प्रतिपक्षी के लिए भी इस प्रकार के आंदोलन का उग्र दमन करना अत्यधिक कठिन हो जाता है। एक राजनीतिक पद्धति के रूप में यह अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ, क्योंकि इसने अत्याधुनिक हथियारों को व्यर्थ बना दिया।

- **अहिंसा:** अहिंसा की अवधारणा को भारतीय संस्कृति में व्यापक स्वीकृति प्राप्त है। गाँधी जी ने सफलतापूर्वक इसका उपयोग राजनीति में किया जो अपने-आप में दुर्लभ पद्धति थी। अहिंसा की पद्धति जनआंदोलन के लिए अनुकूल थी। इसके माध्यम से गाँधीवादी आंदोलन में व्यापक भागीदारी संभव हुई। महिलाओं ने भी इसमें व्यापक भागीदारी निभायी। फिर अहिंसा की अवधारणा ने धनी वर्ग को भी यह आश्वासन दिया कि उनके विरूद्ध बल प्रयोग नहीं किया जाएगा। अत: गाँधीवादी आंदोलन में उनकी भी भागीदारी सुनिश्चित हुई।
- **स्वराज:** गाँधी के स्वराज की परिकल्पना भी अलग थी। जहाँ अधिकतर कांग्रेसी नेताओं के बीच स्वराज का अर्थ था राजनीतिक स्वतंत्रता, वहीं गाँधी के लिए पहले यह नैतिक स्वतंत्रता थी, फिर राजनीतिक स्वतंत्रता। इस प्रकार गाँधी की स्वराज विषयक संकल्पना अस्पष्ट थी, किंतु इसकी अस्पष्टता में ही इसका महत्व छिपा हुआ था क्योंकि विभिन्न वर्ग इसकी व्याख्या अपने ढंग से कर लेते थे।
- **पश्चिमी सभ्यता की आलोचना:**- उन्होंने पश्चिमी सभ्यता एवं पाश्चात्य आधुनिकता की आलोचना की। उन्होंने 'हिंद स्वराज' नामक पुस्तक में यह घोषित किया कि भारत ब्रिटिश के पैरों तले नहीं, बल्कि पश्चिमी सभ्यता के पैरों तले रौंदा जा रहा है। उनका आधुनिकता विरोधी दर्शन उन लोगों को आकर्षित कर रहा था जो आधुनिकता की दौड़ में पीछे छूट गये थे।
- **वर्ग समन्वयवाद:**- गाँधीजी के न्यास के सिद्धांत (Trusteeship Theory) को इस संदर्भ में देखा जा सकता है अर्थात् वे यह मानकर चलते थे कि पूँजीपति वर्ग को समाज के ट्रस्टी के रूप में काम करना चाहिए और अतिरिक्त धन लोककल्याण पर खर्च करना चाहिए। उनके वर्ग समन्वयवाद का राजनीतिक महत्व था। वे इसी आधार पर राष्ट्रीय आंदोलन में संयुक्त मोर्चा बना सके, अर्थात् पूँजीपति और श्रमिक तथा जमींदार एवं किसान, सभी को अपने आंदोलन से जोड़ सके।

गाँधी का विशिष्ट कार्यक्रम

- अनेक कांग्रेसी नेताओं के विपरीत, जिन्होंने पश्चिमी वेशभूषा को महत्व दिया था, गाँधी जी ने साधारण वेश-भूषा धारण की। वे जनसामान्य की तरह ट्रेन के तीसरे दर्जे में यात्रा करते थे। यही वजह है कि वे भारतीय किसानों के निकट पहुँच गए। उनका बोलचाल भी किसानों को आकर्षित करता था क्योंकि अपने भाषण में जहाँ-तहाँ वे रामायण की चौपाईयों को उद्धृत करते थे।
- गाँधी ने रचनात्मक ग्रामीण कार्यक्रम के माध्यम से, जिसमें प्रभात फेरी, चरखा, गाँव की सफाई, ग्राम पंचायत का गठन, छुआ-छूत का विरोध आदि शामिल था, लाखों भारतीय गाँवों को कांग्रेस की राजनीति से जोड़ दिया।
- गाँधी ने भारतीय समाज के बहुलवादी चरित्र को समझा और फिर उसी के अनुकूल उन्होंने अपना राजनीतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। अत: उनकी राजनीति वर्ग आधारित न होकर, जन आधारित हो गई।
- गाँधी का नजरिया व्यावहारिक था। अत: वे संघर्ष के साथ-साथ समझौता और वार्ता में भी विश्वास करते थे। यही वजह है कि चाहे कितनी भी प्रतिकूल परिस्थिति हो, वे अपने समर्थकों के लिए कुछ न कुछ रियायत प्राप्त कर ही लेते थे। अत: स्वाभाविक रूप में जनता गाँधीवादी नेतृत्व के प्रति आकर्षित होती गई।

अफवाहों की भूमिका

- गाँधी जी की प्रसिद्धि में अफवाहों ने भी भूमिका निभाई, क्योंकि भारतीय जनता ने सदा गाँधी की छवि को बड़ा करके देखा तथा उन्हें एक ऐसे मुक्तिदाता के रूप में प्रस्तुत किया जो उन्हें शोषक समूह से मुक्ति दिला सकता था।

भारतीय एवं विश्व राजनीति में गाँधी का योगदान एवं विरासत

- गाँधी ने भारतीय राजनीति में नवाचार (Innovation) लाया अर्थात् सत्याग्रह एवं अहिंसा की पद्धति को अपनाया।
- उन्होंने वैकल्पिक राजनीति की शुरूआत की अर्थात् उन्होंने मैकियावेली के यथार्थवाद को अस्वीकार कर धर्म (नैतिकता) पर आधारित राजनीति पर बल दिया।
- गाँधी के आगमन से पूर्व कांग्रेस का सामाजिक आधार सीमित था। इसे महज कुछ खास वर्गों का समर्थन प्राप्त था, किंतु गाँधी जी ने कांग्रेस को सामान्य जनता से जोड़ दिया। वस्तुत: उनके आगमन से पूर्व कांग्रेस की राजनीति महाराष्ट्र के चितपावन ब्राह्मण, बंगाल के भद्रलोक तथा तमिल ब्राह्मणों तक ही सीमित थी, किंतु गाँधी जी ने इसे बिहार, संयुक्त प्रांत, गुजरात आदि अन्य अपरंपरागत क्षेत्रों में फैलाया। साथ ही कांग्रेस की राजनीति से नये वर्गों को जोड़ा।

- गाँधी जी के अंतर्गत राष्ट्रीय आंदोलन तात्कालिक सामाजिक मुद्दों से भी जुड़ गया। अत: राष्ट्रनिर्माण एवं समाज सुधार दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती रहीं। उन्होंने राजनीति में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहन दिया तथा छुआ-छूत के विरूद्ध एक बड़ा संघर्ष आरंभ किया।
- उन्होंने पश्चिमी सभ्यता की आलोचना कर आधुनिकतावाद का वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत किया। उदाहरण के लिए, व्यक्तिवाद की जगह सामुदायिकता की भावना पर बल तथा मशीनीकरण की जगह मानव श्रम पर बल दिया।
- गाँधी जी के पश्चात् भी भारतीय राजनीति एवं विश्व राजनीति में गाँधीवाद की विरासत देखी जा सकती है। भारतीय राजनीति में यह विरासत भू-दान आंदोलन, चिपको आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन आदि के रूप में अभिव्यक्त हुई। दूसरी तरफ, विश्व राजनीति में मार्टिन लूथर किंग के आंदोलन, दक्षिण अफ्रीका में अल्बर्ट लूथली की राजनीति आदि पर गाँधीवाद की झलक देखी जा सकती है।

वर्तमान में गाँधीजी के विचारों का महत्व

- गाँधीजी ने हिंसा की संस्कृति से अपने को पृथक कर अहिंसा की पद्धति को अपनाया। इससे वर्तमान विश्व में धार्मिक उन्माद एवं आतंकवाद जैसी समस्या का निराकरण हो सकता है।
- वर्तमान में राज्य की शोषक एवं दमनात्मक मशीनरी को देखते हुए गाँधीजी के द्वारा दी गयी प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा उचित प्रतीत होती है क्योंकि उसमें सत्ता नीचे से ऊपर की ओर जाती है।
- वर्तमान विश्व अति मशीनीकरण की समस्या से जूझ रहा है। आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस कुछ उच्च स्तर के रोजगारों के लिए नया खतरा बनकर आया है। ऐसी स्थिति में गाँधीजी के इस विचार का व्यापक महत्व दिखता है कि मशीन के द्वारा मानव श्रम का विस्थापन नहीं होना चाहिए।
- अति उत्पादन वर्तमान सभ्यता के लिए सबसे बड़ा खतरा बनकर आया है। यह पर्यावरण संकट से लेकर आतंकवाद आदि सभी समस्याओं की जड़ है। इसलिए कुछ विद्वान गाँधीजी को एक उत्तर आधुनिकतावादी चिंतक मानते थे। आगे वन्दना शिवा से लेकर बाबा आम्टे तक विभिन्न पर्यावरणवादियों को गाँधीजी के विचारों से प्रेरणा मिली।

गाँधीवादी राजनीति

क्षेत्रीय आंदोलन

- गाँधीजी ने सर्वप्रथम भारत में अपनी पहचान क्षेत्रीय आंदोलनों के माध्यम से बनायी थी; यथा- चंपारण सत्याग्रह (1917 ई.), अहमदाबाद मिल मजदूर आंदोलन (1918 ई.) तथा खेड़ा सत्याग्रह (1918 ई.)।

चम्पारण सत्याग्रह, अहमदाबाद और खेड़ा सत्याग्रह :-

- गाँधीजी ने अपना पहला आन्दोलन बिहार के **चम्पारण** में किया। राजकुमार शुक्ल के आमंत्रण पर गाँधी जी वहाँ गए। उन्होंने वहाँ तिनकठिया पद्धति के विरुद्ध आंदोलन छेड़ा। तिनकठिया पद्धति में उस क्षेत्र के प्रत्येक किसान से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह प्रत्येक 20 कट्ठा में 3 कट्ठा जमीन नील की खेती के लिए अलग कर दे। गाँधी जी का यह आन्दोलन सफल रहा और चम्पारण में तिनकठिया पद्धति का अंत हो गया।
- फिर 1918 ई. में **अहमदाबाद के मिल मजदूरों** के पक्ष में उन्होंने आंदोलन छेड़ा। यहाँ पर मिल मालिकों तथा मजदूरों में प्लेग बोनस को लेकर विवाद छिड़ा था। प्लेग का प्रकोप खत्म होने के पश्चात् मिल मालिक इसे समाप्त करना चाहते थे, जबकि मजदूर इसे जारी रखना चाहते थे। मिल मालिकों में से एक अंबालाल साराभाई, गाँधी जी के मित्र थे। उनकी मदद् से गाँधी जी ने अंतत: मजदूरों के इस मामले को एक ट्रिब्यूनल को सौंप देने को राजी कर लिया जिसने बाद में 35 प्रतिशत बोनस मिल मजदूरों को देने का आदेश दिया। इस तरह यह आन्दोलन सफल रहा।
- 1918 ई. में उन्होंने **गुजरात के खेड़ा** जिले के किसानों के पक्ष में आंदोलन छेड़ा। वस्तुत: खेड़ा जिले में फसल नष्ट हो गई थी, किंतु सरकार अकाल संहिता की अनुशंसा के आधार पर भू-राजस्व की राशि माफ करने के लिए तैयार नहीं थी। सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी के सदस्यों-विट्ठल भाई पटेल तथा गाँधी जी ने पूरी जाँच-पड़ताल के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि किसानों की माँग जायज है और राजस्व संहिता के तहत पूरा लगान माफ किया जाना चाहिए।
- इस आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गुजरात सभा ने। इस वर्ष गाँधी जी इसके अध्यक्ष थे। इस आंदोलन में उन्हें इन्दुलाल याज्ञिक का भी सहयोग मिला। यहाँ भी गाँधी जी का आंदोलन सफल रहा।

इन आंदोलनों का निम्नलिखित लाभ सामने आया-

- इससे सामान्य भारतीय को गाँधीवादी राजनीति में विश्वास होने लगा। उन्हें लगा कि अब तक भारतीय नेता केवल कहते थे, परन्तु वास्तव में गाँधीजी हमारे लिए कुछ करते भी हैं।
- सबसे बढ़कर इन आंदोलनों के मध्य गाँधी के अंतर्गत युवा नेताओं का एक वर्ग तैयार हो गया। इन्होंने भावी गाँधीवादी आंदोलन में भी अहम् भूमिका निभाई। दूसरे

शब्दों में, बिहार आन्दोलन में गाँधी को श्रीकृष्ण सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह, भूलाभाई देसाई, डॉ० राजेंद्र प्रसाद आदि का समर्थन मिला। उसी प्रकार गुजरात आंदोलन के मध्य गाँधी को वल्लभ भाई पटेल, इंदुलाल याज्ञिक, शंकरलाल बैंकर आदि का सहयोग मिला।

रॉलेट सत्याग्रह

- अखिल भारतीय नेता के रूप में गाँधी जी की सबसे पहली पहचान रॉलेट सत्याग्रह के समय बनी। 10 सितंबर, 1917 ई. को ब्रिटिश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सिडनी रॉलेट की अध्यक्षता में भविष्य में क्रांतिकारी गतिविधियों को रोकने तथा कानूनी सुधारों की रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिये सेडीशन समिति गठित की गई थी। सरकार ने तमाम विरोधों के बावजूद इसको कानूनी रूप प्रदान कर दिया।
- रॉलेट अधिनियम एक काला कानून था, जिसके तहत किसी भी व्यक्ति को किसी भी समय गिरफ्तार किया जा सकता था। इसका नारा था 'कोई वकील नहीं, कोई दलील नहीं, कोई अपील नहीं'। गाँधीजी को उम्मीद थी कि युद्ध के पश्चात् भारत को स्वशासन मिलेगा, किंतु भारत को मिला रॉलेट अधिनियम।
- गाँधी ने इस अधिनियम के विरूद्ध एक अखिल भारतीय आंदोलन छेड़ने का निर्णय लिया। इसके लिए एक 'अखिल भारतीय सत्याग्रह समिति' का गठन हुआ तथा 6 अप्रैल, 1919 को रॉलेट सत्याग्रह आरंभ हुआ। चूँकि प्रथम विश्व युद्ध के मध्य, सरकार के द्वारा पंजाब से जबरन भर्ती किये जाने की नीति के कारण पंजाब में पहले से ही असंतोष व्याप्त था। अत: पंजाब में यह आंदोलन उग्र एवं हिंसक हो गया और फिर 13 अप्रैल, 1919 को जालियाँवाला बाग हत्याकाँड हुआ। अत: गाँधी ने 18 अप्रैल, 1919 को रॉलेट सत्याग्रह आंदोलन को वापस ले लिया, परन्तु इस आंदोलन से निम्नलिखित लाभ प्राप्त हुए–
  - यद्यपि यह आंदोलन तीन वर्ष आगे तक रहा, परन्तु ब्रिटिश द्वारा किसी को गिरफ्तार करने का साहस नहीं हुआ।
  - इस आंदोलन से गाँधीजी को जो अनुभव मिला, उसका उपयोग वे अगले आंदोलन में कर सके।

■■■

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

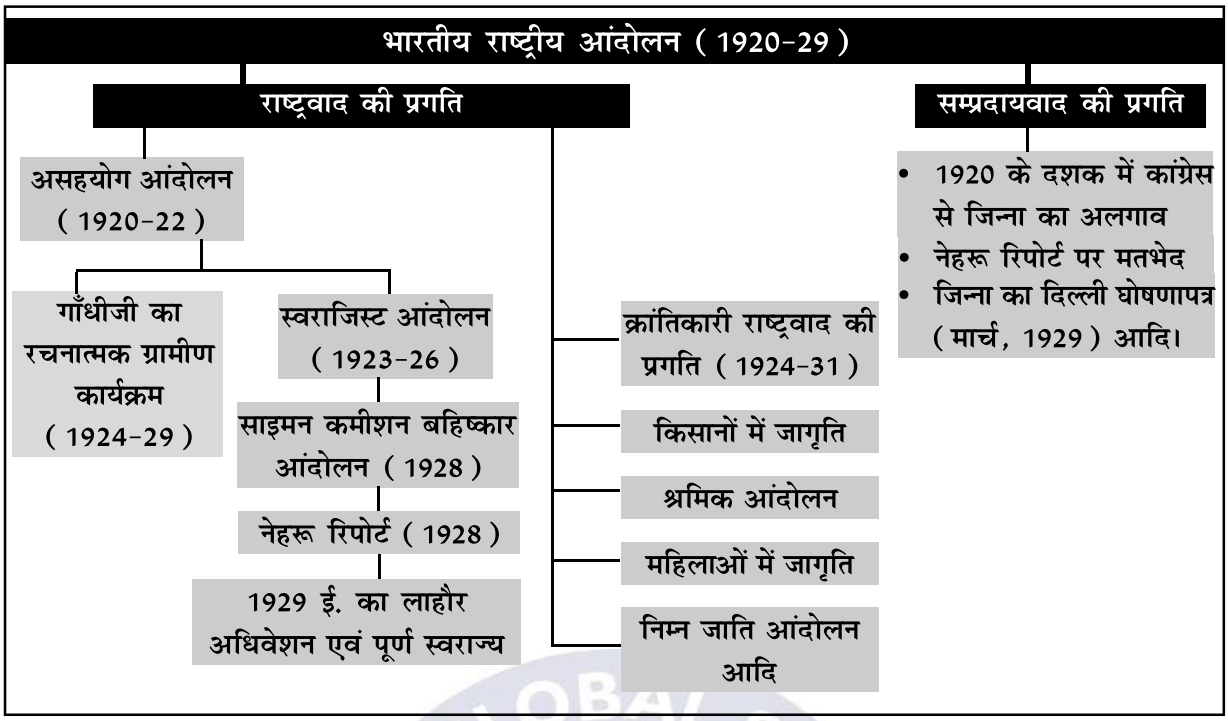

असहयोग आंदोलन (1920 ई.)

- 1920-21 ई. में असहयोग आंदोलन के साथ ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने जन आंदोलन के दौर में प्रवेश किया। असहयोग आंदोलन, जो आवश्यक रूप से खिलाफत मुद्दे के साथ संबद्ध था, में उस अहिंसात्मक संघर्ष की रणनीति को पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर अपनाया गया जिसे आगे कांग्रेस द्वारा विभिन्न आंदोलनों के प्रमुख अस्त्र के रूप में उपयोग किया जाना था। राष्ट्रीय आंदोलन में पहली बार कांग्रेस एक ऐसे आंदोलन के समर्थन में खड़ी थी जिसका स्पष्ट उद्देश्य ब्रिटिश सरकार के किसी भी दमनात्मक कार्य में असहयोग करना था।

कारण :-

1. **रॉलेट एक्ट (1919)**- प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् जनता को उम्मीद थी कि ब्रिटिश सरकार उनके हितों की रक्षा के लिये कुछ करेगी, परन्तु सरकार ने देश में मार्च, 1919 में रॉलेट एक्ट के नाम से नया कानून लागू कर दिया जिसका उद्देश्य युद्धकालीन प्रतिबंधों को स्थायी बनाना था। इस अधिनियम ने सरकार को किसी भी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाए कैद में रखने का अधिकार दिया था।
2. **जलियाँवाला बाग नरसंहार**- रॉलेट एक्ट के विरोध के दौरान हुए जलियाँवाला बाग नरसंहार ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की बर्बरता को और उजागर किया। दरअसल 13 अप्रैल, 1919 को वैशाखी के दिन पंजाब में अपने जनप्रिय नेताओं डॉ. सैफुद्दीन किचलू तथा डॉ. सत्यपाल की गिरफ्तारी के खिलाफ विरोध प्रकट करने के लिये जलियाँवाला बाग में एक भीड़ इकट्ठी हुई थी। इसी भीड़ पर अमृतसर के कमांडर जनरल डायर ने बिना चेतावनी दिए, चौतरफा गोली चलाने का आदेश दे दिया जिसमें हजारों लोग मारे गए।
3. **हंटर समिति की रिपोर्ट**- जलियाँवाला बाग हत्याकांड पर सरकार की हंटर समिति की रिपोर्ट ने भी कॉन्ग्रेसियों में गहरा असंतोष भर दिया क्योंकि इसमें जलियाँवाला बाग हत्याकांड जैसे बर्बरतापूर्ण कार्य को सही ठहराया गया था तथा जनरल डायर को अपराधमुक्त कर दिया गया था।
4. **खिलाफत का मुद्दा**- गाँधीजी को 1920 ई. में खिलाफत के रूप में एक नया मुद्दा मिल गया। खिलाफत आंदोलन भारत में मुख्यतः मुसलमानों द्वारा चलाया गया राजनीतिक-धार्मिक आंदोलन था, जिसका मुख्य उद्देश्य तुर्की के खलीफा के पद की पुनर्स्थापना करने के लिये अंग्रेजों पर दबाव बनाना था।

- दरअसल, प्रथम विश्व युद्ध में मुसलमानों का सहयोग पाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने उनसे वादा किया था कि ब्रिटेन तुर्की की अखंडता तथा सार्वभौमिकता बनाए रखेगा। परन्तु ब्रिटेन ने युद्ध की समाप्ति पर तुर्की के साथ कठोर व्यवहार किया।

खिलाफत आंदोलन के कारण :-

- 1912-13 ई. के बाल्कन युद्ध के बाद 1913 ई. में आयोजित लंदन सम्मेलन में यूरोपीय शक्तियों द्वारा तुर्की के विरुद्ध विरोध की नीति को अपनाया गया। इस मुद्दे को लेकर मुस्लिम लीग में नाराज़गी थी।

- प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पेरिस शांति सम्मेलन, 1919 में तुर्की को कठोर दंड देने का निर्णय लिया गया। इसमें खलीफा के पद को समाप्त किये जाने का प्रावधान भी शामिल था। चूँकि तुर्की का खलीफा पूरे विश्व में सुन्नी मुसलमानों का धर्मगुरू माना जाता था। अत: ऐसे व्यवहार से मुसलमानों का क्षुब्ध होना स्वाभाविक ही था।
- उसी तरह, मुस्लिम लीग की निरंतर मांग के बावजूद अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी पर सरकार नियंत्रण कम करने के लिए राजी नहीं थी। सरकार के इस फैसले से भी लीग में असंतोष था।

गाँधी द्वारा खिलाफत आंदोलन का समर्थन करने के कारण :-

- गाँधीजी ने खिलाफत आंदोलन के प्रति सहानुभूति व्यक्त की तथा उसे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का एक ऐसा अवसर माना जो कि आगे सौ वर्षों तक नहीं प्राप्त होना था। इसके अतिरिक्त गाँधीजी द्वारा खिलाफत आंदोलन का समर्थन करने के निम्नलिखित कारण थे-
- वह ब्रिटिश की 'फूट डालो और राज करो' की नीति का जवाब 'जोड़ो और विरोध करो' की नीति से देना चाहते थे।
- तुर्की के सैनिक कमांडर मुस्तफा कमाल पाशा ने प्रथम विश्वयुद्ध में यूरोपीय शक्तियों को चुनौती दी, लेकिन मित्र राष्ट्रों ने प्रथम विश्वयुद्ध जीतने के पश्चात् स्वयं को अपराजेय घोषित कर दिया था। अत: गाँधीजी ने खिलाफत का मुद्दा उठाकर एक तरह से स्वयं को साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे से जोड़ दिया।

घटनाक्रम:-

- राष्ट्रवादियों के प्रभाव में मुस्लिम लीग ने 1920 में असहयोग का प्रस्ताव पारित किया। तत्पश्चात् गाँधी ने भी कांग्रेस पर पंजाब ज्यादती, खिलाफत ज्यादती तथा स्वराज के मुद्दे पर एक आखिल भारतीय आंदोलन शुरू करने का दबाव डाला। किंतु कुछ कांग्रेसी नेता गाँधी के इस प्रस्ताव का विरोध कर रहे थे, किंतु गाँधी ने 1 अगस्त, 1920 को असहयोग आंदोलन आरंभ किया। सितम्बर, 1920 में कलकत्ता के विशेष अधिवेशन में इस प्रस्ताव को स्वीकृति मिली। फिर दिसंबर, 1920 में नागपुर के कांग्रेस अधिवेशन में इसे हरी झंडी मिल गयी।

असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रम :-

- इस आन्दोलन में दो प्रकार के कार्यक्रम रखे गए- नकारात्मक तथा रचनात्मक कार्यक्रम। नकारात्मक कार्यक्रमों में उपाधियों एवं राजकीय सम्मानों का त्याग, सरकार से संबद्ध विद्यालयों एवं महाविद्यालयों का बहिष्कार, न्यायालयों का बहिष्कार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आदि की गणना की जा सकती है।
- दूसरी तरफ, रचनात्मक कार्यक्रमों में राष्ट्रीय शिक्षण संस्थानों की स्थापना, ग्राम पंचायतों की स्थापना, कताई-बुनाई को प्रोत्साहन, हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर, छूआ-छूत का अंत तथा अहिंसा के पालन पर बल दिया गया। गाँधी जी ने जनता को आश्वासन दिया कि अगर उपर्युक्त कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक संपादित किया गया तो, एक वर्ष में स्वराज की प्राप्ति हो जायेगी।
- इस समय गाँधीजी ने 'कैसर-ए-हिंद' और जमनालाल बजाज ने 'राय बहादुर' की उपाधि सरकार को वापस कर दी। मोतीलाल नेहरू, तेजबहादुर सप्रू और सैफुद्दीन किचलू तथा चित्तरंजनदास जैसे महत्वपूर्ण वकीलों ने अपने पेशे का परित्याग किया। इस कार्यक्रम को सरल बनाने के लिए बड़ी संख्या में राष्ट्रीय स्कूल तथा कॉलेज खोले गए। इनमें जामिया मिलिया इस्लामिया, काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ तथा गुजरात विद्यापीठ प्रमुख हैं। सुभाष चन्द्र बोस को राष्ट्रीय महाविद्यालय का अध्यक्ष बनाया गया।
- चरखे का प्रसार तथा तिलक स्वराज फंड की स्थापना पर विशेष बल दिया गया। कॉन्ग्रेस की सदस्यता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई और देखते-देखते तिलक स्वराज फण्ड में 1 करोड़ रुपये जमा हो गये। खादी तो राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रतीक बन गई।
- स्वदेशी आधार को मजबूत करने के लिये विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के निर्णय को और प्रभावी ढंग से लागू किया गया।
- 5 फरवरी, 1922 को चौरी-चौरा नामक स्थान पर एक बड़ी हिंसक घटना हुई। इस हिंसात्मक घटना के पश्चात् गाँधी ने 12 फरवरी, 1922 को यह आंदोलन वापस ले लिया।

असहयोग आंदोलन में सामाजिक भागीदारी :-

- इस आंदोलन में पहली बार किसानों की भागीदारी, छात्रों और बुद्धिजीवियों की भागीदारी, मुस्लिमों की भागीदारी तथा महिलाओं की भागीदारी हुई।

असहयोग आन्दोलन का योगदान :-

- असहयोग आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अंतर्गत पहला जन आंदोलन था। इसमें विभिन्न वर्गों की भागीदारी हुई। अब कांग्रेस पर कोई आरोप नहीं लगा सकता था कि कांग्रेस महज मुट्ठी भर अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व करती है।
- क्षेत्रीय आधार पर भी, असहयोग आंदोलन का व्यापक विस्तार देखा गया। कांग्रेस के पूर्व आंदोलन के विपरीत, जो

केवल राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय क्षेत्रों को अधिक प्रभावित करते थे, असहयोग आंदोलन ने बिहार संयुक्त प्रांत, गुजरात जैसे अपरपंरागत क्षेत्रों पर भी गहरा प्रभाव छोड़ा।

- कांग्रेस की स्वदेशी एवं बहिष्कार की नीति से देशी उद्योगों को लाभ मिला। रचनात्मक कार्यक्रम के तहत देशी शिक्षण संस्थानों की स्थापना भी हुई; यथा- काशी विद्यापीठ, जामिया मिलिया इस्लामिया आदि। गाँवों में चरखे को प्रोत्साहन मिला तथा छुआ-छूत विरोधी आंदोलन को बल मिला।
- कांग्रेस का संगठनात्मक सुधार हुआ तथा ग्राम, तालुका एवं जिला स्तर पर समितियों का गठन हुआ। असहयोग आंदोलन ने हिंदू-मुस्लिम एकता को प्रोत्साहन दिया।

असहयोग आन्दोलन की सीमाएँ :-

- गांधी जी द्वारा आंदोलन को वापस लिये जाने के कारण लोगों में, विशेषकर युवाओं में, निराशा की लहर फैल गई। उदाहरण के लिए, जवाहरलाल नेहरू ने अपनी निराशा जताई और सुभाषचंद्र बोस ने इसे राष्ट्रीय संकट कहा। वहीं दूसरी तरफ असहयोग और खिलाफत के बीच जो सहमति थी, वह टूट गई।
- खिलाफत जैसे धार्मिक मुद्दे पर एक अखिल भारतीय आंदोलन शुरू करने के निर्णय ने भारतीय राजनीति में एक बहुत गलत मिसाल कायम की, इससे देश में सांप्रदायिक राजनीति को प्रोत्साहन मिला।

प्रश्नः उन परिस्थितियों की व्याख्या कीजिए जिसके कारण असहयोग आंदोलन और खिलाफत आंदोलन के बीच सह-संबंध स्थापित हुआ?

उत्तरः राष्ट्रवादी प्रभाव में मुस्लिम लीग पहले से ही सरकार से दूर हटने लगी थी। फिर हाल में कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिस कारण युवा नेताओं के प्रभाव में मुस्लिम लीग ने खिलाफत के प्रस्ताव को अपना लिया।

1. 1912-13 में यूरोप में ऑटोमन साम्राज्य एवं पूर्वी यूरोप के ईसाई राज्यों के बीच जो संघर्ष हुआ, उसमें पश्चिमी देशों ने ईसाई राज्यों के प्रति अपना झुकाव दिखाया था।
2. मुस्लिम लीग के अनुरोध के बावजूद सरकार ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रबंधक को अपने नियंत्रण में ले लिया था।
3. प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् सेव्रे की गुप्त संधि में तुर्की को कठोरतापूर्वक दंडित किया जा रहा था, जबकि तुर्की का खलीफा मुस्लिम विश्व का प्रधान था।

मुस्लिम लीग ने जून, 1920 के लखनऊ प्रस्ताव में खिलाफत का प्रस्ताव पारित किया। गांधीजी ने खिलाफत का समर्थन किया तथा फिर गांधीजी कांग्रेस पर भी दबाव डालने लगे कि कांग्रेस भी पंजाब ज्यादती, खिलाफत ज्यादती एवं स्वराज्य के मुद्दे पर अखिल भारतीय आंदोलन आरंभ करे।

हालाँकि कांग्रेस के अंदर गाँधी जी के इस प्रस्ताव का विरोध बना रहा, परन्तु फिर भी गांधीजी ने सितम्बर, 1920 में कलकत्ता के विशेष अधिवेशन में असहयोग के प्रस्ताव का अनुमोदन तो ले लिया, किंतु वे अगस्त में ही असहयोग आंदोलन आरंभ कर चुके थे, फिर आगे दिसम्बर, 1920 के नागपुर अधिवेशन में उन्होंने असहयोग के प्रस्ताव का पूरी तरह अनुमोदन ले लिया।

इस प्रकार असहयोग एवं खिलाफत के मुद्दे के बीच सह-संबंध स्थापित हुआ।

प्रश्नः क्या गांधी के द्वारा खिलाफत के मुद्दे पर असहयोग आंदोलन चलाया जाना उनकी धर्म-निरपेक्ष साख पर बट्टा लगता है? अपने मत के पक्ष में उत्तर दीजिए

उत्तर : हालांकि यह सही है कि खिलाफत जैसे धार्मिक मुद्दे पर राजनीतिक आन्दोलन चलाया जाना अल्पकालिक लाभ के लिये दीर्घकालिक घाटे का सौदा सिद्ध हुआ। परन्तु हम ऐसा नहीं कह सकते कि यह गाँधी की धर्मनिरपेक्ष छवि को खराब करता है। इसके कारण निम्नवत् हैं-

- गाँधी 'डिवाइड एंड रूल' के जवाब में 'यूनाइट एंड फाइट' की नीति अपना रहे थे।
- प्रो. इरफान हबीव खिलाफत के मुद्दे को व्यापक वैश्विक सन्दर्भ में देखते हैं। उनके विचार में जब प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियों के समक्ष सभी अपने घुटने टेक चुके थे तो मुस्तफा कमाल पाशा के अधीन तुर्की पश्चिमी साम्राज्यवाद के विरूद्ध अकेला खड़ा था। वैसी स्थिति में गाँधी जी ने तुर्की को समर्थन देकर अपने आप को साम्राज्यवादी विरोध के मोर्चे से जोड़ दिया।
- गाँधी कम्पोजिट राष्ट्रवाद में विश्वास करते थे जिसके तहत विभिन्न धार्मिक एवं जातीय पहचान के होते हुये भी विभिन्न समूह भारतीय राष्ट्रवाद की मुख्य धारा से जुड़े रहे।

उपर्युक्त कथन के प्रकाश में हम ऐसा कह सकते हैं कि गांधीजी के द्वारा खिलाफत का मुद्दा उठाया जाना उनकी धर्मनिरपेक्ष छवि पर प्रश्न नहीं लगाता।

प्रश्नः भारतीय आदोलन में असहयोग आंदोलन की भूमिका का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

उत्तरः असहयोग आंदोनल ने कांग्रेस के नेतृत्व को राष्ट्रीय आंदोलन में रूपांतरित कर दिया। उसने उसके स्वरूप एवं लक्ष्य दोनों को परिवर्तित किया। इसे निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है।

1. कांग्रेस का आंदोलन प्रायः बंगाल के भद्रलोक, महाराष्ट्र के चितपावन ब्राह्मण तथा मद्रास के ब्राह्मणों तक सीमित रहा था। परन्तु असहयोग आंदोलन, उत्तर प्रदेश, बिहार, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक जैसे अपरम्परागत क्षेत्र तक भी फैल गया।
2. इसमें व्यापक जनभागीदारी रही। छात्र एवं बुद्धिजीवी, किसान, श्रमिक, महिलाएं, मुसलमान सभी इसमें शामिल रहे थे। यह कांग्रेस के नेतृत्व में पहला जन आंदोलन था।

एक तरह से देखा जाये तो यह समकालीन विश्व में सबसे बड़ा आंदोलन था और लॉर्ड डफरिन जैसा कोई ब्रिटिश इस प्रकार का विचार नहीं कर सकता था कि कांग्रेस केवल मुट्ठीभर अल्पसंख्यक समूह का प्रतिनिधित्व करती है।

3. असहयोग आंदोलन ने स्वतंत्रता के लक्ष्य का भी विस्तार किया। इसने राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ सामाजिक स्वतंत्रता पर भी बल दिया, इसका एक प्रमुख कार्यक्रम रहा था छूआ-छूत का अंत।
4. असहयोग आंदोलन ने बहिष्कार की नीति पर बल देकर देशी उद्योगों को भी प्रोत्साहन दिया, साथ ही रचनात्मक कार्यक्रम के तहत इसने देशी शिक्षण संस्थानों की स्थापना पर बल दिया। उदाहरण के लिए, काशी विद्यापीठ, जामिया-मिलिया-इस्लामिया विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ आदि।
5. असहयोग आंदोलन के मध्य संगठनात्मक सुधारों पर भी बल दिया गया। उदाहरण के लिए, कांग्रेस संगठन को मजबूत बनाने के लिए ग्राम, ताल्लुक, जिला, प्रांतीय एवं अखिल भारतीय स्तर पर समिति का गठन किया गया।

परन्तु तस्वीर का एक दुःखद पहलू भी है। असहयोग आंदोलन की अपनी निश्चित सीमाएँ रहीं-

1. खिलाफत के मुद्दे पर असहयोग आंदोलन चलाया जाना। राजनीतिक में धर्म का औचित्य सिद्ध करना।
2. गांधीजी के द्वारा अचानक असहयोग आंदोलन वापस लिए जाने के कारण एक तरफ युवाओं में निराशा हुई। उदाहरण के लिए, जवाहर लाल नेहरू ने अपनी निराशा जताई और सुभाष चंद्र बोस ने राष्ट्रीय संकट कहा। वहीं दूसरी तरफ असहयोग और खिलाफत के बीच की जो सहमति थी, वो सहमति टूट गई।

उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद असहयोग आंदोलन ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को व्यापक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रश्नः- पिछली शताब्दी के तीसरे दशक से भारतीय स्वतंत्रता की स्वप्न दृष्टि के साथ सम्बद्ध हो गये नये उद्देश्यों को उजागर कीजिए। (250 शब्द, UPSC-2017)

उत्तरः- राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में, 1920 का दशक एक रचनात्मक चरण के रूप में आया, जिसके दौरान नए उद्देश्य और कार्यक्रम पेश किए गए और उन्होंने आंदोलन को एक नया आयाम दिया।

पहले स्वतंत्रता आंदोलन का उद्देश्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता था, लेकिन इस चरण के दौरान इसमें आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता भी जुड़ गया। नए उद्देश्यों ने आंदोलन की संपूर्ण रणनीति को प्रभावित किया।

आर्थिक स्वतंत्रता का उद्देश्य-

1920 के दशक में राष्ट्रीय आंदोलन के राजनीतिक और आर्थिक मोर्चे एक-दूसरे के करीब आ गए। फिर, इस बात पर जोर दिया गया कि भारतीय समाज के आंतरिक अंतर्विरोध ों को भी दूर किया जाना चाहिए। यह अंतर्विरोध उद्योगपतियों और श्रमिकों, जमींदारों और किसानों के बीच मौजूद था। इस दौरान वामपंथी दल अर्थात् कम्युनिस्ट और समाजवादी दल काफी सक्रिय हो गए और किसानों और श्रमिकों को लामबंद करना जारी रखा। इसके अलावा, ट्रेड यूनियन आंदोलन को प्रोत्साहन मिला और 1936 में अखिल भारतीय किसान सभा का गठन हुआ। फिर इसी दौरान, सुभाष और जवाहर लाल नेहरू जैसे युवा नेताओं के अंतर्गत कांग्रेस ने आंतरिक परिवर्तन किया और कराची अधिवेशन (1931), लखनऊ अधिवेशन (1936) और फैजपुर अधिवेशन (1937) में इसने कुछ समाजवादी कार्यक्रम को अपनाया।

सामाजिक स्वतंत्रता का उद्देश्य-

जाति आंदोलन के साथ-साथ महिला अधिकारों के आंदोलन ने राष्ट्रीय आंदोलन में सामाजिक आयाम जोड़े। 1920 के दशक के बाद से महाराष्ट्र में भीमराव अंबेडकर और मद्रास में रामास्वामी पेरियार नायकर जैसे नेताओं ने निचली जाति के लोगों के मुद्दे को राष्ट्रीय प्राथमिकता की सूची में लाया और यहाँ तक कि गांधी ने भी इसे स्वीकार किया। इसी तरह, महिला नेताओं जैसे श्रीमती एनी बेसेंट और डॉ. सरोजिनी नायडू ने महिलाओं के मताधिकार के लिए अभियान चलाया।

इस प्रकार, 1920 के दशक के बाद से राष्ट्रीय आंदोलन की प्रकृति और अधिक समावेशी हो गई।

असहयोग आंदोलन एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन के मध्य कांग्रेस के अंतर्गत भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में उभरने वाली प्रवृत्तियाँ

- असहयोग आंदोलन एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन कांग्रेस के नेतृत्व में व्यापक जनआंदोलन को दर्शाते हैं, परन्तु इसके बीच के काल में भी आंदोलन चलता रहा था तथा विभिन्न प्रकार की राजनीतिक प्रवृत्तियाँ उभरती रही थीं। ये इस प्रकार हैं-

रचनात्मक ग्रामीण कार्यक्रम

- गाँधी कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं के एक समूह के साथ रचनात्मक ग्रामीण कार्यक्रम की ओर मुड़ गये और लगभग 1924 से 1929 तक उस कार्यक्रम में संलग्न रहे। रचनात्मक ग्रामीण कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यों को अपनाया गया था; यथा-चरखे को लोकप्रिय बनाना, प्रभात फेरी, सड़कों की सफाई, ग्राम पंचायत का गठन, अस्पृश्यता का अंत आदि।
- बिपिन चद्र ने इसे संघर्ष-विराम-संघर्ष का नाम दिया अर्थात् गाँधीजी संघर्ष करते थे, फिर बीच में विराम लेकर पिछले संघर्ष के लाभ को संगठित करते और अगले संघर्ष की तैयारी करते। ऊपरी स्तर पर देखने से यह ज्ञात होता है कि गाँधी का रचनात्मक ग्रामीण कार्यक्रम केवल प्रतीकात्मक एवं प्रभावहीन था, परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में गाँधीवादी राष्ट्रवाद को फैलाने और कांग्रेस के जनाधार को बढ़ाने में इसका अहम योगदान रहा था।

स्वराज आंदोलन

- असहयोग आन्दोलन की असफलता के पश्चात् कांग्रेस दो खेमों में विभाजित हो गयी। कांग्रेस का एक खेमा चाहता था कि कांग्रेसियों को पूरी तरह से ग्रामीण क्षेत्रों में रचनात्मक कार्यों में जुट जाना चाहिए। इस खेमे से जुड़े प्रमुख नेता थे – चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, राजेन्द्र प्रसाद, वल्लभ भाई पटेल, एम. ए. अंसारी आदि। ये अपरिवर्तवादी थे। इनका मानना था कि गाँधीवादी रचनात्मक कार्यों के माध्यम से ग्रामीण जनता में जागरुकता आयेगी जो किसी भी आन्दोलन को प्रारंभ करने के लिए आवश्यक है।
- दूसरी तरफ, सी.आर. दास, मोतीलाल नेहरू तथा विठ्ठल भाई पटेल जैसे नेता अपरिवर्तनवादी खेमे की विचारधारा से संतुष्ट नहीं थे। इन्होंने औपनिवेशिक सत्ता का विरोध जारी रखने के लिए विधान मंडलों का बहिष्कार करने की बजाय असहयोग आन्दोलन को विधान मंडलों में ले जाने का सुझाव रखा। इनका कहना था कि विधान परिषदों का सदस्य बनकर वे ब्रिटिश सांविधानिक सुधारों के पाखंड का पर्दाफाश करेंगे। 1 जनवरी, 1923 को इन नेताओं ने एक नई पार्टी 'स्वराज पार्टी' के गठन की घोषणा की।
- स्वराज पार्टी ने भी कांग्रेस के ही कार्यक्रम को अपना कार्यक्रम बनाया तथा रचनात्मक कार्यक्रम की आवश्यकता पर बल दिया। अंतर सिर्फ इतना था कि इस नई पार्टी ने साल के अंत में होने वाले चुनावों में भागीदारी का निश्चय किया था।
- 1 नवम्बर, 1923 के चुनावों में स्वराज पार्टी ने भाग लिया। इस चुनाव में स्वराज पार्टी को बड़ी सफलता प्राप्त हुई। सेंट्रल लेजिस्लेटिव एसेंबली की 105 निर्वाचित सीटों में से 42 पर इनकी जीत हुई। मध्य प्रांत में इसे स्पष्ट बहुमत मिला, तो बंगाल में यह सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी। बम्बई एवं संयुक्त प्रांत में इसका प्रदर्शन अच्छा रहा। सिर्फ मद्रास तथा पंजाब में जातिवादी राजनीति और साम्प्रदायिकता के उभार के चलते इसे खास सफलता नहीं मिल पायी।
- स्वराजी कठिन संघर्ष तथा सभी वर्गों के समर्थन के बावजूद भी 'कौंसिल प्रवेश की राजनीति' के दीर्घकालिक प्रभाव उत्पन्न करने में सफल नहीं हुए। अत: यह आंदोलन शीघ्र ही बिखरने लगा तथा 1926 ई. तक स्वराज पार्टी का अवसान हो गया। इसके बावजूद स्वराज पार्टी की सबसे बड़ी सफलता यह रही कि इसने ऐसे समय में राजनीतिक गतिविधियों को जारी रखा, जब राष्ट्रीय आंदोलन सुस्त पड़ गया था।

साइमन कमीशन (1927 ई.)

- 1919 ई. के भारत शासन अधिनियम के अनुसार लागू की गई द्वैध शासन प्रणाली की सफलता या असफलता की जाँच हेतु एक कमीशन का गठन होना था। इसी के परिप्रेक्ष्य में नवम्बर, 1927 ई. में साइमन कमीशन के गठन की उद्घोषणा हुई। इसमें सात सदस्य थे। साइमन कमीशन के मुद्दे पर सभी भारतीय पार्टियों ने आपत्ति जताई। इस आपत्ति के निम्नलिखित कारण थे -
  1. कमीशन का गठन समय से दो वर्ष पूर्व किया गया था।
  2. इस कमीशन के सभी सातों सदस्य श्वेत थे, जबकि उस समय ब्रिटिश पार्लियामेंट में भारतीय सदस्य के रूप में लॉर्ड सिन्हा (सत्येन्द्र प्रसन्न सिन्हा) तथा सकलतवाला कार्यरत थे।
  3. भारतीय नेताओं का कहना था कि भारत की कोई संस्था ही भारतीय संविधान की निर्माता हो सकती थी।
  4. भारतीय नेताओं का कहना था कि स्वराज संबंधी योग्यता के लिए किसी परीक्षा की जरूरत नहीं होती है। यह हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।

- 3 फरवरी, 1928 को साइमन कमीशन के बंबई के तट पर उतरने के साथ ही देशव्यापी बहिष्कार आंदोलन प्रारंभ हो गया, जिसमें लगभग सभी दलों ने भागीदारी की। इतना तक कि सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के द्वारा गठित इंडियन लिबरल फेडरेशन तथा जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने भी इसका विरोध किया। इसके साथ ही हिंदू महासभा भी इसके विरोध में शामिल थी।
- संयुक्त प्रांत में जवाहरलाल नेहरू और गोविन्द वल्लभ पंत ने इसका विरोध किया। लखनऊ में खलिकुज्जमा ने इस विरोध का नेतृत्व संभाला। पंजाब में इसके विरोध प्रदर्शन में लाला लाजपतराय पर पुलिस ने लाठी चलायी तथा घायल होने से उनकी मृत्यु हो गई।
- 1930 ई. में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित की गई। इसमें निम्नांकित प्रावधान किये गए थे –
  - इस आयोग ने माना कि भारत सरकार अधिनियम, 1919 द्वारा स्थापित द्वैध शासन व्यवस्था सफल नहीं रही है, अतः इसे समाप्त कर प्रांतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाए तथा भारत की विविधता को देखते हुए केंद्र में संघीय व्यवस्था की स्थापना की जाए।
  - पृथक् निर्वाचन व्यवस्था को जारी रखा जाए तथा अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिये गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को विशेष अधिकार दिया जाए।
  - विधानमंडलों का पुनर्गठन कर सदस्य संख्या का विस्तार किया जाए।
  - इसके अतिरिक्त मताधिकार का विस्तार करने, सेना का भारतीयकरण करने तथा भारत के संबंध में गृह सरकार की शक्तियों को कम करने की बात कही गई।
- भारतीयों ने इस रिपोर्ट को अस्वीकार कर दिया क्योंकि इसमें उनकी मुख्य माँग 'स्वराज' या 'डोमिनियन स्टेटस' देने का उल्लेख तक नहीं किया गया था।

साइमन कमीशन बहिष्कार कार्यक्रम का महत्व :-

- इसने भारतीय दलों को राजनीतिक मोर्चे पर लामबंद कर ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध के लिये प्रेरित किया। इससे राष्ट्रीय आंदोलन को नवीन गति प्राप्त हुई।
- इसमें छात्रों की व्यापक भागीदारी रही, जिसके परिणामस्वरूप छात्रों ने पहली बार राजनीतिक अनुभव प्राप्त कर अनेक छात्र संगठनों को जन्म दिया।
- इसने भारतीयों की 'स्वशासन' की माँग को प्राथमिकता क्रम में ऊपर ला दिया तथा भारतीयों द्वारा भारत के संविधान को निर्मित किये जाने की माँग को प्रबलता से उठाया जाने लगा।

नेहरू रिपोर्ट (1928 ई.)

- भारत के प्रथम देशीय संविधान, नेहरू रिपोर्ट का निर्माण साइमन कमीशन के मुद्दे के साथ जुड़ा हुआ है। दरअसल, 1928 ई. में भारत सचिव बर्केनहेड ने भारतीय दलों को चुनौती दी कि अगर आप में योग्यता है तो आप सर्वसम्मति से एक संविधान प्रस्तुत करें। परिणामतः 1928 ई. में कांग्रेस की एक बैठक हुई और मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति का गठन हुआ जिसका कार्य भारतीय संविधान का निर्माण करना था।
- दिसम्बर, 1928 ई. में कलकत्ता में सर्वदलीय सम्मेलन में नेहरू रिपोर्ट रखी गयी। इसमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रावधान थे –
- भारत को डोमिनियन स्टेटस का दर्जा प्राप्त हो, जिसकी स्थिति ब्रिटिश शासन के अंतर्गत अन्य डोमिनियन राज्यों की तरह हो। इस व्यवस्था में प्रतिरक्षा एवं विदेश मामले ब्रिटिश शासन के पास तथा आंतरिक मामलों में भारत को स्वायत्तता प्राप्त होनी थी।
- यहाँ डोमिनियन स्टेटस की चर्चा करते हुए कहा गया था कि संविधान में नागरिकता की व्याख्या होनी चाहिए तथा मौलिक अधिकारों की घोषणा की जानी चाहिए।
- केन्द्र की तरह प्रांतों में भी उत्तरदायी सरकार की स्थापना होगी, जो गवर्नर की कार्यकारिणी परिषद् से जुड़ी होगी। राजनीतिक संरचना मोटे तौर पर एकात्मक ही थी और अवशिष्ट शक्तियाँ केंद्र को दिए जाने का प्रावधान था।
- नेहरू रिपोर्ट में सिफारिश की गई कि सांप्रदायिक चुनाव पद्धति को समाप्त कर उसके स्थान पर संयुक्त निर्वाचन पद्धति अपनाई जाए, जिसमें अल्पसंख्यक वर्ग के हितों को भी सुनिश्चित किया जाए। इस रिपोर्ट में वयस्क मताधिकार की बात की गई।
- महिलाओं के लिये समान अधिकार तथा संगठन बनाने की स्वतंत्रता एवं धर्म का हर प्रकार के राज्य से पृथक्करण की भी चर्चा की गई थी।
- नेहरू रिपोर्ट में कहा गया कि अगर एक वर्ष तक डोमिनियन स्टेटस का दर्जा नहीं दिया गया तो इस सीमा के पश्चात् पूर्ण स्वराज की बात करने के लिए कांग्रेस स्वतंत्र होगी।
- **असफलता :-** संयुक्त निर्वाचक मंडल एवं कुछ अन्य विषयों पर कॉन्ग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच मतभेद था। परन्तु इस समय नेहरू समिति पर हिंदू महासभा तथा सिख

लीग का दबाव था, जो मुस्लिम लीग को रियायत देने के लिए तैयार नहीं थीं। इसके कारण जिन्ना की माँगों पर कोई सहमति नहीं बन पाई, परिणामस्वरूप मुस्लिम लीग ने सर्वदलीय सम्मेलन से अपने को बाहर कर लिया।

1929 ई. का लाहौर अधिवेशन एवं पूर्ण स्वराज्य

- कॉन्ग्रेस पर युवा वर्ग का प्रभाव बढ़ रहा था। जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस ने पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्यों को स्वीकार करवाने के लिये कांग्रेस के भीतर ही एक दबाव समूह के रूप में 'इंडिपेंडेंस फॉर इंडिया लीग' की स्थापना की। वे डोमिनियन स्टेटस की जगह पूर्ण स्वराज की माँग का पक्षधर थे। दूसरी तरफ, गाँधी भी 6 वर्ष के लंबे अंतराल के बाद सक्रिय राजनीति में लौट आए।
- 1929 ई. में गाँधीजी की मध्यस्थता से जवाहरलाल को लाहौर अधिवेशन का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। लाहौर अधिवेशन में निम्नलिखित महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए-
  1. इसमें पूर्ण स्वराज के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया।
  2. सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रस्ताव को भी स्वीकार कर लिया गया।
  3. 31 दिसंबर, 1929 को मध्य रात्रि में रावी नदी के तट पर तिरंगा झंडा फहराया गया तथा 26 जनवरी, 1930 ई. को संपूर्ण देश में 'स्वतंत्रता दिवस' मनाने का निर्णय लिया गया।
- एक तरह से अगर देखा जाये तो लाहौर प्रस्ताव एवं पूर्ण स्वराज्य की घोषणा एक आंदोलन से कम नहीं थी क्योंकि भारत एक नये लक्ष्य की ओर बढ़ गया था।

1920 के दशक में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में विभिन्न वर्गों की भागीदारी

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की प्रगति

- असहयोग आंदोलन की असफलता ने आंदोलन के युवा कार्यकर्त्ताओं के मध्य निराशा तथा असंतोष के बीज बो दिए। युवाओं का एक वर्ग जो गाँधीवादी समाधान से संतुष्ट नहीं था, उसने अपने को क्रांतिकारी राजनीति से जोड़ लिया। संयुक्त प्रांत में दो पुराने क्रांतिकारी सचिन सान्याल एवं योगेन्द्र चन्द्र चटर्जी की पहल पर कानपुर में 1924 में 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' का गठन किया गया। इस संस्था की स्थापना का उद्देश्य था सशस्त्र क्रांति के माध्यम से औपनिवेशिक सत्ता को उखाड़ फेंकना तथा एक संघीय गणतंत्र संयुक्त राज्य भारत की स्थापना करना।
- हिंदुस्तान रिपब्लिकन आर्मी ने धन जमा करने के उद्देश्य से पहली बड़ी कार्यवाही काकोरी में रेल का खजाना लूट कर की, परंतु इसके पश्चात् बहुत से क्रांतिकारी नेता गिरफ्तार हो गए। इसमें राम प्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह, अशफाक उल्ला खाँ तथा राजेंद्र लाहिड़ी को फाँसी दे दी गई।
- काकोरी ट्रेन डकैती के पश्चात् पार्टी को पुनर्संगठित करने का काम चन्द्रशेखर आजाद ने किया। 1928 ई. में दिल्ली के फिरोजशाह कोटला की बैठक में भगतसिंह की पहल पर पार्टी का नाम बदलकर 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' रखा गया। इस पर समाजवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव देखा गया।
- जब पूरे देश में सविनय अवज्ञा आंदोलन का जोर था तो उसी समय चटगाँव के एक राष्ट्रीय स्कूल के शिक्षक सूर्यसेन ने इंडियन रिपब्लिकन आर्मी के नाम से 18 अप्रैल को चटगाँव शस्त्रागार पर कब्जा कर लिया। इसके तत्काल बाद ही भारत की एक अस्थाई स्वतंत्र सरकार का गठन किया गया जिसके राष्ट्रपति स्वयं सूर्यसेन थे। इस क्रांतिकारी संगठन में व्यापक रूप से महिलाओं की भी भागीदारी दिखती है।
- कुल मिलाकर क्रांतिकारी, बलपूर्वक ब्रिटिश सरकार का तख्ता पलटने में कामयाब नहीं हो पाए। फिर भी क्रांतिकारियों का योगदान इस बात में महत्वपूर्ण है कि जब भी कांग्रेस के अंतर्गत आंदोलन की मुख्य धारा शिथिल पड़ जाती, तो क्रांतिकारी राष्ट्रवादी इस शून्य को भरने का प्रयास करते तथा अभूतपूर्व आत्मत्याग तथा बलिदान का उदाहरण देकर लोगों में राष्ट्रीयता को जगाने का प्रयास करते।

किसानों में जागृति

- 1920 के दशक में किसानों में भी जागृति आ रही थी तथा किसानों की प्रांतीय सभा का गठन हो रहा था। अवध में किसान सभा की स्थापना हुई, जिसने बेदखली रोको आन्दोलन (1920-21) प्रारम्भ किया। आगे मदारी पासी के नेतृत्व में उत्तरी-पश्चिमी संयुक्त प्रांत में एका आंदोलन (1921-22) ने जोर पकड़ लिया। केरल के मालाबार तट पर मोपला कृषकों ने हिन्दू भू-स्वामियों के खिलाफ विद्रोह कर दिया, जिसने कहीं-कहीं भयंकर साम्प्रदायिक रूख अख्तियार कर लिया। 1928 में, बारदोली के किसानों ने वल्लभाई पटेल को सत्याग्रह शुरू करने के लिए आमंत्रित किया जिसमें उन सभी किसनों ने कर का भुगतान न करने का संकल्प लिया। 1929 ई. में सहजानंद सरस्वती ने बिहार किसान संघ की स्थापना की।

श्रमिक आंदोलन

- अब श्रमिकों में भी विरोध की चेतना जाग रही थी। 1920 के असहयोग आंदोलन में भी श्रमिकों की बड़ी सक्रियता रही थी और फिर 1920 में ऑल इण्डिया ट्रेड

यूनियन कांग्रेस (AITUC) की स्थापना हुई जिसकी अध्यक्षता लाला लाजपत राय ने की।

- 1920 के दशक में श्रमिकों को संगठित करने में साम्यवादी नेताओं की भी अहम भूमिका रही। इसी काल में साम्यवादियों के द्वारा श्रमिक एवं किसान पार्टी तथा "गिरनी कामगार यूनियन" का गठन किया गया।

महिलाओं में जागृति

- 1920 के दशक में महिलाओं में भी जागृति आ रही थी। आयरिश महिला श्रीमती एनी बेसेंट तथा मार्ग्रेट कजिंस के द्वारा कई महिला संगठनों की स्थापना की गई। इंटरनेशनल वुमेन्स एसोसिएशन के भाग के रूप में उन्होंने वुमेन्स इंडियन एसोसिएशन का भी गठन किया।
- श्रीमती एनी बेसेन्ट तथा सरोजिनी नायडू जैसी महिला नेताओं ने महिला मताधिकार के मुद्दों को गंभीरता से उठाया। इनके प्रयास से 1921 और 1930 के बीच प्रांतीय बिहार मंडलों में महिलाओं को मताधिकार मिला।
- 1927 में अखिल भारतीय महिला कॉन्फ्रेंस का गठन हुआ तथा इसने महिला शिक्षा से लेकर महिला मताधिकार तक कई मुद्दों को उठाया।
- फिर स्वयं गांधीवादी आंदोलन ने भी महिला जागृति में बढ़-चढ़कर भूमिका निभाई। कहा जाता है कि विश्व के कुछ अन्य लोकप्रिय नेताओं; यथा- सोवियत रूस के लेनिन, चीन के माउत्से तुंग तथा वियतनाम के हो-ची-मिन्ह की तुलना में गांधीवादी आंदोलन में महिलाओं की कहीं अधिक भागीदारी रही थी।

निम्न जातीय आंदोलन

- 1920 के दशक में स्वतंत्रता के अर्थ का विस्तार सामाजिक स्वतंत्रता के क्षेत्र में भी हुआ। महिला एवं निम्न जाति आंदोलन को इस संदर्भ में देखने की जरूरत है।
- निम्न जाति में जागृति फैलाने में ई.वी. रामास्वामी नायकर 'पेरियार' तथा डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। इन दोनों ने मनु स्मृति को जलाकर जाति व्यवस्था की आलोचना की। पेरियार नायकर ने मद्रास में निम्न जाति के उत्थान के लिए 'आत्मसम्मान आंदोलन' आरंभ किया तथा 'कुडि अरसु' नामक पत्र के माध्यम से अपने विचारों को फैलाते रहे। आगे ये द्रविड़ आंदोलन के जनक बने।
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने न केवल महाराष्ट्र की अछूत जाति महारों को संगठित किया, बल्कि सम्पूर्ण जीवन निम्न जाति एवं महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ते रहे और सामाजिक न्याय के विचारों को फैलाते रहे।
- **डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने दलितों की सुरक्षा के क्रम में निम्नलिखित कदम उठाये-**
  1. उन्होंने महारों को यह सुझाव दिया कि वे गंदगी की सफाई और मरे हुए पशुओं को ढोना बंद करें।
  2. उन्होंने ब्रिटिश के समक्ष दलित वर्ग के उत्थान की बात उठाई।
  3. साइमन कमीशन एवं गोलमेज सम्मेलन में उन्होंने दलितों के मौलिक अधिकार और पृथक निर्वाचन की माँग रखी।
  4. वे विधानमंडल में दलितों के शोषण की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते रहे। आगे संविधान सभा में उन्होंने दलित वर्ग के हितों को संरक्षित कर दिया।

अभ्यास प्रश्नः

1. *1920 के दशक से राष्ट्रीय आंदोलन ने कई वैचारिक धाराओं को ग्रहण किया और अपना सामाजिक आधार बढ़ाया। विवेचना कीजिए। (250 शब्द, UPSC-2020)*
2. *गांधीवादी प्रावस्था के दौरान विभिन्न स्वरों ने राष्ट्रवादी आंदोलन को सुदृढ़ एवं समृद्ध बनाया था। विस्तारपूर्वक स्पष्ट कीजिए। (250 शब्द, UPSC-2019)*

सम्प्रदायवाद की प्रगति

1920 के दशक में कांग्रेस से जिन्ना का अलगाव :-

- 1920 के दशक में गाँधी के नेतृत्व में जनआंदोलन का युग आरंभ हुआ तो जिन्ना को अपना राजनीतिक कद छोटा होने का भय सताने लगा। अतः जिन्ना कांग्रेस से दूर होते चले गये तथा मुस्लिम लीग के नेता के रूप में उभरे। उन्होंने अपनी सांप्रदायिक पहचान बनाए रखने पर बल दिया।
- फिर भी, वे अभी भी उदार सम्प्रदायवादी बने रहे। यही वजह है कि साइमन कमीशन बहिष्कार आंदोलन में भी जिन्ना के अधीन मुस्लिम लीग का एक गुट शामिल हुआ। फिर 1928 में नेहरू रिपोर्ट ने संयुक्त निर्वाचन का प्रस्ताव रखा, तो इस पर मुस्लिम लीग के शफी खान का गुट वार्ता करने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था, वहीं जिन्ना वार्ता करने के लिए तैयार थे।
- वस्तुतः 22 दिसंबर, 1928 ई. को कलकत्ता सर्वदलीय सम्मेलन, जिसकी अध्यक्षता डॉ. अंसारी कर रहे थे, में नेहरू रिपोर्ट को पुनः विचारार्थ रखा गया। इसमें मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना ने पृथक् निर्वाचन पद्धति को छोड़ने एवं मुस्लिमों के हितों को संरक्षित करने

की दृष्टि से नेहरू रिपोर्ट में तीन संशोधनात्मक सुझाव दिये जो कि निम्नलिखित हैं-

1. केन्द्रीय विधानमंडल में एक-तिहाई सीटें मुसलमानों के लिए आरक्षित की जाएं।
2. पाँच मुस्लिम बहुल प्रांतों में मुसलमानों को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाए।
3. अवशिष्ट शक्तियाँ प्रांतों में निहित कर दी जाएं।

- परन्तु कलकत्ता सर्वदलीय सम्मेलन में भी इन माँगों पर सहमति नहीं बन सकी। इसके परिणामस्वरूप मुस्लिम लीग ने सर्वदलीय सम्मेलन से अपने को बाहर कर लिया।

जिन्ना का दिल्ली घोषणापत्र (मार्च, 1929) :-

- कलकत्ता सर्वदलीय वार्ता टूटने के बाद जिन्ना ने दिल्ली घोषणा-पत्र लाया तथा इसमें 14 सूत्रीय साम्प्रदायिक माँगें रखी गयीं और ये माँगें आगे मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिक राजनीति का आधार बन गईं। जिन्ना की 14 माँगों में प्रमुख माँगें निम्नलिखित थीं-

1. भारत का संविधान परिसंघात्मक हो, जिसमें अवशिष्ट शक्तियाँ प्रांतों को प्राप्त हों।
2. केंद्रीय विधानमंडल में मुसलमानों के लिये कम-से-कम एक तिहाई प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।
3. सभी प्रांतों को एक समान स्वायत्तता प्रदान करने के साथ-साथ प्रांतीय विधानमंडलों तथा अन्य निर्वाचित निकायों में अल्पसंख्यकों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाए।
4. विभिन्न सांप्रदायिक समूहों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए पृथक् निर्वाचन मंडल की व्यवस्था लागू रहे।
5. विधानमंडलों एवं अन्य निर्वाचित संस्थाओं में ऐसा कोई प्रस्ताव पारित नहीं किया जाए, जिसका किसी संप्रदाय के तीन-चौथाई सदस्यों ने विरोध किया हो।

- इसके अतिरिक्त, सभी संप्रदायों के लिये धार्मिक स्वतंत्रता, सिंध को बंबई से अलग करने तथा राज्य एवं स्थानीय संस्थाओं की सेवाओं में मुस्लिमों के लिये पर्याप्त आरक्षण की व्यवस्था सुनिश्चित करने की माँग की गई।

■■■

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

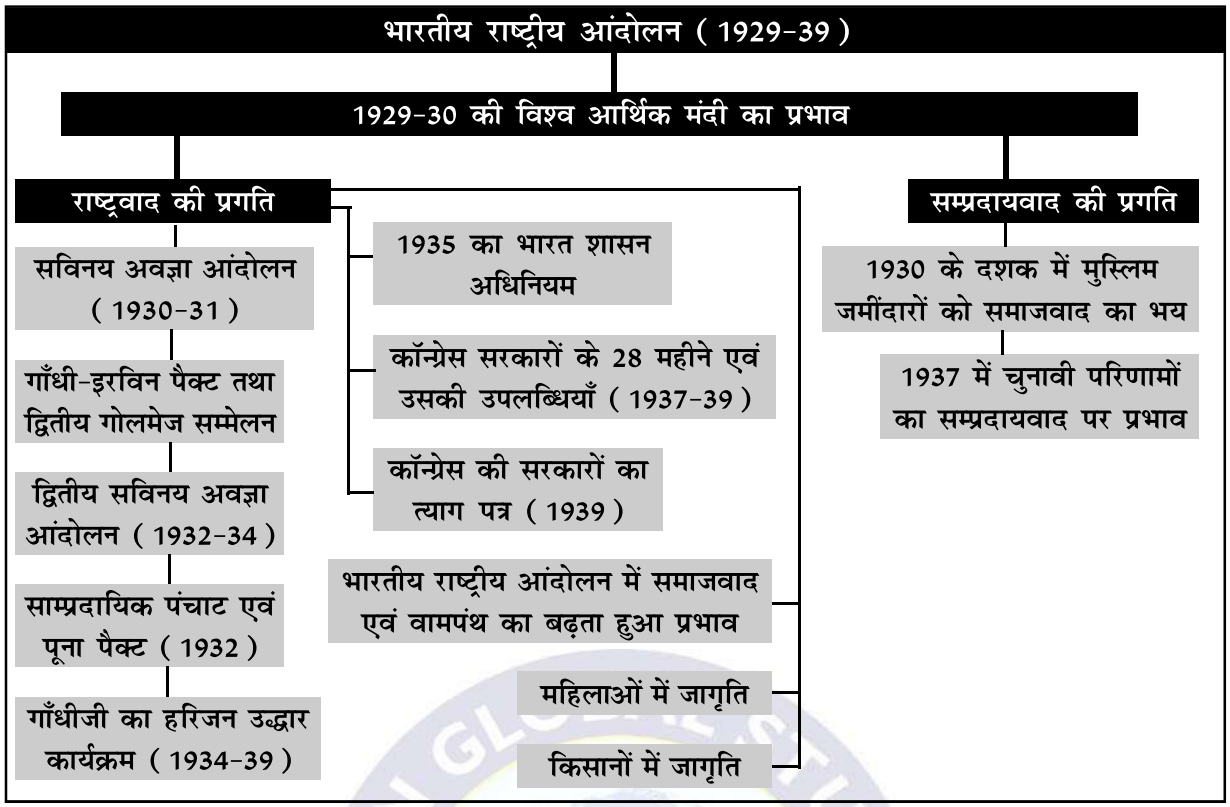

सविनय अवज्ञा आंदोलन

- 1930 तक भारत में आंदोलन की पृष्ठभूमि बनने लगी थी। इसमें निम्नलिखित कारकों का योगदान रहा था-

1. 1929-30 की विश्व आर्थिक मंदी ने भारत के विभिन्न सामाजिक वर्गों को प्रभावित किया। इसने धनी एवं निर्धन किसान, पूँजीपति एवं श्रमिक, सभी पर पृथक्-पृथक् प्रभाव छोड़ा तथा विभिन्न आंदोलनों में उनकी भागीदारी को सुनिश्चित किया।

- धनी किसान इस मंदी से इसलिए प्रभावित हुए क्योंकि वे बाजार के लिए उत्पादन करते थे, वहीं निर्धन किसानों के लिए महाजनी ऋण की कमी पड़ गई। उसी प्रकार, पूँजीपति साम्राज्यवादी वरीयता के प्रावधान तथा रूपये को मजबूत किये जाने से क्षुब्ध थे। दूसरी तरफ, मजदूरों को छँटनी का भय सता रहा था। अतः इस दौरान मजदूरों की भागीदारी विभिन्न आंदोलनों में अपेक्षाकृत कम हुई थी। इसलिए 1930 के दशक में वर्गीय आंदोलन ने राजनीतिक दिशा को प्रभावित किया तथा इस काल में आंदोलनों में तेजी आयी।

2. भारतीय युवा वर्ग में असंतोष बढ़ रहा था। उनमें से अनेक युवा क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की ओर बढ़ रहे थे। गाँधीजी एक बार फिर उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में लाना चाहते थे।

3. गाँधीजी रचनात्मक ग्रामीण कार्यकम के माध्यम से कॉन्ग्रेस का जनाधार काफी विकसित कर चुके थे और अब वे नये आंदोलन के लिए तैयार थे।

4. 1929 के लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पारित किया तथा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति को एक आंदोलन छेड़ने के लिए भी अधिकृत किया। फिर जनवरी, 1930 में गाँधी ने इर्विन के समक्ष ग्यारह सूत्री मांगें रखीं, जिनका इर्विन द्वारा कोई जवाब नहीं देने पर गाँधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ने का निर्णय लिया।

- गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरूआत 'नमक कर कानून' के उल्लंघन के साथ करने का निर्णय लिया। फिर 12 मार्च, 1930 को गाँधीजी ने साबरमती आश्रम से 78 अनुयायियों के साथ यात्रा शुरू की जिसे 'दाण्डी मार्च' कहा जाता है। उन्होंने 6 अप्रैल, 1930 ई. को दांडी में नमक कानून का उल्लघंन किया।
- सविनय अवज्ञा आंदोलन में एक व्यापक कार्यक्रम अपनाया गया। उदाहरण के लिए, तटीय क्षेत्र में नमक कानून का उल्लंघन, रैयतवाड़ी क्षेत्र में कर रोको आंदोलन, जमींदारी क्षेत्र में चौकीदारी कर रोको आंदोलन, नशीले पदार्थों की बिक्री करने वाले दुकानों के समक्ष धरना आदि।
- गाँधी की गिरफ्तारी के शीघ्र बाद यह आंदोलन भारत के विभिन्न क्षेत्रों में फैल गया। दक्षिण भारत में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने नमक कानून का उल्लंघन किया।

उत्तर-पश्चिमी भारत में खान अब्दुल गफ्फार खाँ के नेतृत्व में पठानों ने 'खुदाई खिदमतगार' नामक संगठन बनाकर आंदोलन में भाग लिया। इसी तरह, आंदोलन का प्रसार पूर्वी एवं उत्तर-पूर्वी भागों में भी हुआ। फिर जनजातीय क्षेत्रों में आदिवासियों ने बड़े पैमाने पर वन कानूनों का उल्लंघन किया।

- **नमक को एक महत्त्वपूर्ण मुद्दे के रूप में क्यों चुना गया? :-** गाँधी ने सोच-समझकर नमक के मुद्दे को उठाया। नमक के माध्यम से उन्होंने भारत के करोड़ों चूल्हों को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ दिया। सामान्य लोगों के लिए नमक का मसला एक आर्थिक मसला था, जबकि भारतीय बुद्धिजीवियों के लिए यह राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रश्न था। इस तरह नमक के मुद्दे को उठाकर गाँधी ने भारतीय बुद्धिजीवी एवं जनसामान्य के बीच की खाई पाट दी।
- **सामाजिक भागीदारी :-** सविनय अवज्ञा आंदोलन में व्यापक जनभागीदारी हुई थी। इसमें असहयोग आंदोलन की तुलना में किसानों की भागीदारी अधिक रही। उसी प्रकार, इसमें महिलाओं की भी भागीदारी रही। सबसे बढ़कर, असहयोग आंदोलन के विपरीत इसमें पूँजीपति वर्ग की भागीदारी रही। किन्तु इसमें छात्रों और बुद्धिजीवियों की भागीदारी आंशिक दिखती है। दूसरी तरफ, असहयोग आंदोलन के विपरीत इसमें मजदूरों की भी सीमित भागीदारी रही। इसके अलावा, इस आंदोलन में हिंदुओं और मुस्लिमों में वैसी एकता देखने को नहीं मिली जैसी असहयोग आंदोलन के समय दिखाई दी थी।
- असहयोग आंदोलन एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन के मध्य एक मूलभूत अंतर यह था कि असहयोग आंदोलन ने 'स्वराज' को अपना लक्ष्य बनाया था, जबकि सविनय अवज्ञा आंदोलन ने 'पूर्ण स्वराज' को अपना लक्ष्य घोषित किया था।
- भारतीय पूंजीपति वर्ग द्वारा कॉन्ग्रेस पर आंदोलन समाप्त करने के लिए दबाव बनाया जा रहा था क्योंकि निरंतर श्रमिक हड़ताल, आंदोलन एवं राजनीतिक उथल-पुथल से इस वर्ग को घाटा उठाना पड़ रहा था। दूसरी तरफ, मध्य प्रांत, महाराष्ट्र और कर्नाटक क्षेत्र में आदिवासी विद्रोह अनियंत्रित और खतरनाक रूप धारण कर रहे थे।
- 5 मार्च, 1931 को गाँधी एवं वायसराय इर्विन के मध्य एक समझौता हुआ जो **'गाँधी-इर्विन समझौता'** के नाम से जाना जाता है। इस समझौते के निम्नलिखित पहलू थे-
    - गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को वापस ले लिया।
    - उन लोगों की रिहाई की जाए, जिन्होंने हिंसक घटनाओं में भाग नहीं लिया था।
    - उन लोगों को संपत्ति वापस दे दी जाए, जिनकी संपत्ति अधिग्रहण के पश्चात् किसी तीसरी पार्टी को नहीं बेची गयी हो।
    - तटीय क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों को अपनी जरूरत को पूरा करने के लिए नमक बनाने की भी अनुमति दी गई।
    - लोगों को शांतिपूर्ण ढंग से नशीले पदार्थों की दुकानों पर धरना देने का भी अधिकार दिया गया।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन (1931) :-

- 1930 में होने वाले प्रथम गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस ने हिस्सा नहीं लिया था, किंतु 1931 में गाँधी-इर्विन पैक्ट के पश्चात् कांग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि के रूप में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में हिस्सा लेने गाँधी जी लंदन गये। इस सम्मेलन में विभिन्न भारतीय राजनीतिक दलों और गुटों को प्रतिनिधित्व मिला हुआ था। गाँधीजी ने उन सबके साथ मिलकर भारत के संवैधानिक मुद्दे को आगे बढ़ाना चाहा, किंतु उन्हें निराशा तब हुई जब उन्होंने यह देखा कि मुस्लिम वर्ग के मॉडल पर दलित वर्ग, एंग्लो इंडियन, भारतीय ईसाई, यूरोपीय समूह सभी पृथक निर्वाचन की माँग करने लगे थे। गाँधी ने उन माँगों को ठुकरा दिया। फिर गाँधी को गहन निराशा तब हुई जब उन्होंने यह पाया कि रैम्जे मैकडोनाल्ड की सरकार कांग्रेस के साथ इस प्रकार का व्यवहार कर रही थी, मानो कांग्रेस भी अन्य भारतीय हित समूहों की तरह केवल एक हित समूह है। अत: गाँधी निराश होकर लंदन से वापस आ गये।

द्वितीय सविनय अवज्ञा आंदोलन :-

- इधर इर्विन की जगह एक अनुदारवादी वायसराय लॉर्ड विलिंग्डन का आगमन हो चुका था, जिसने कॉन्ग्रेस के प्रति दमनात्मक रुख अपनाया। उसने जवाहर लाल नेहरू तथा खान अब्दुल गफ्फार खान को गिरफ्तार कर लिया था। गाँधी ने आने के बाद वायसराय से साक्षात्कार के लिए समय की माँग की, किंतु वायसराय ने उन्हें साक्षात्कार देने से इंकार कर दिया। अब गाँधी के पास दूसरा कोई विकल्प नहीं था, अत: उन्होंने एक बार फिर 4 जनवरी, 1932 को सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ दिया। किंतु सरकार पहले से ही तैयार थी, कई प्रकार के दमनात्मक कानून बनाये जा चुके थे, कांग्रेस एक गैर कानूनी संस्था घोषित कर दी गई तथा सरकार का उग्र

दमन चक्र आरंभ हुआ, इस प्रकार आंदोलन की कमर टूटने लगी।

सांप्रदायिक पंचाट तथा पूना पैक्ट :-

- वस्तुत: द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में विभिन्न संप्रदायों एवं दलित वर्गों के लिये पृथक निर्वाचन मंडल के विषय पर कोई सहमति नहीं बन पायी थी। अत: इस समस्या के समाधान के लिये ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनाल्ड ने 16 अगस्त, 1932 ई. को एक घोषणा की, जिसे 'सांप्रदायिक पंचाट' कहा जाता है।
- मुसलमान, सिख तथा यूरोपियों को पहले से ही पृथक् निर्वाचन का अधिकार था, अब इस साप्रदायिक पंचाट के तहत दलितों को भी हिंदुओं से अलग एक अल्पसंख्यक वर्ग मानकर पृथक् निर्वाचन का अधिकार दे दिया गया। ब्रिटिश सरकार के इस निर्णय को गांधीजी ने एक राष्ट्र के रूप में भारत को तोड़ने के लिये ब्रिटिशों का एक षड्यंत्र माना। अत: गाँधीजी ने सांप्रदायिक पंचाट का विरोध करने के लिये यरवदा जेल में 20 सितंबर, 1932 ई. से आमरण अनशन प्रारंभ कर दिया।
- मदन मोहन मालवीय की मध्यस्थता में गाँधी एवं डॉ. अंबेडकर के बीच एक समझौता हुआ, जो 'पूना समझौता' के नाम से जाना जाता है। पूना समझौता के अनुसार, अंबेडकर ने पृथक् निर्वाचन पद्धति के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन पद्धति को स्वीकार कर लिया। इसके बदले केंद्रीय विधान परिषद् में दलित वर्ग के लिये सीटों की संख्या में लगभग 18% की वृद्धि की गई तथा प्रांतीय विधान मंडलों में सीटों की संख्या को 71 से बढ़ाकर 148 कर दिया गया।

प्रश्न :- अपसारी उपागमों एवं रणनीतियों के होने के बावजूद महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर का दलितों की बेहतरी का एक समान लक्ष्य था। स्पष्ट कीजिये। (UPSC-2015)

*(**प्रश्न विश्लेषण:** यह प्रश्न अपने स्वरूप में Hypothetical है। Key Words हैं- 'अपसारी', 'उपागम', 'रणनीतियों', 'महात्मा गांधी', 'भीमराव अंबेडकर', 'दलितों की बेहतरी', 'लक्ष्य', 'स्पष्ट'।)*

उत्तर: जब हमारे समक्ष दलित वर्ग के उत्थान का मुद्दा आता है तो हमारे मस्तिष्क में गांधी एवं अंबेडकर, दोनों की छवि उभरती है। दोनों आज़ादी को दलित वर्ग की दहलीज तक पहुँचाना चाहते थे। यद्यपि उनके सोचने के अंदाज तथा काम करने की पद्धति में अंतर था। इसे निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

- अंबेडकर दलित वर्ग के उत्थान के लिये आर्थिक पुनर्वितरण को आवश्यक मानते थे। उनका विचार था कि जब तक दलित लोग आर्थिक रूप से स्वावलंबी नहीं होंगे, तब तक वे सामाजिक शोषण से मुक्त नहीं हो सकेंगे। वहीं गांधी जी का मानना था कि अस्पृश्यता की समस्या सामाजिक मुद्दा है, इसलिये सामाजिक मोर्चे पर ही उसका हल ढूंढ़ा जाना चाहिये।
- उसी तरह अंबेडकर का मानना था कि दलित वर्ग का उत्थान तभी होगा, जब दलित वर्ग में अपने अधिकारों के प्रति सजगता होगी, परंतु गांधीजी, सवर्णों में करुणा का भाव जगाकर दलितों की दशा सुधारना चाहते थे। इसलिये दोनों अपनी सोच तथा अनुभव के आधार पर काम करते रहे।
- एक तरफ अंबेडकर ने जबरन मंदिर प्रवेश कार्यक्रम में दलित वर्ग का नेतृत्व किया, वहीं गांधीजी ने अछूतोद्धार कार्यक्रम पर बल दिया तथा सवर्णों को अपनी मानसिकता बदलने के लिये प्रोत्साहित किया।
- आरक्षण के मुद्दे पर भी गांधीजी तथा अंबेडकर के दृष्टिकोण में मतभेद था। गांधीजी आरक्षण को स्थायी विषमता उत्पन्न करने वाला कारक मानते थे, वहीं अंबेडकर दलित वर्ग के उत्थान के लिये आरक्षण को आवश्यक मानते थे। अंबेडकर के इस दृष्टिकोण को अंतत: संविधान में जगह मिली।
- अंत में, अंबेडकर एक बुद्धिजीवी थे तथा उन्होंने दलित उत्थान के मुद्दे पर संसद, संविधान सभा एवं अन्य प्रकार के राजनीतिक मंचों पर अकादमिक बहस छेड़ी, वहीं गांधीजी एक सामाजिक कार्यकर्त्ता थे, अत: वे गाँव-गाँव में घूमकर तथा दलितों के बीच जाकर उनके उत्थान के लिये कार्य करते रहे।

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में हम ऐसा कह सकते हैं कि भारत में जो दलित उत्थान कार्यक्रम है, वह गांधीजी तथा अंबेडकर, दोनों की विरासत से संबद्ध है।

गाँधीजी का हरिजन उद्धार कार्यक्रम :-

- पूना समझौते के बाद गाँधी को एक नया मुद्दा मिल गया, वह था हरिजन उद्धार कार्यक्रम। फिर गाँधी ने हरिजन यात्रा शुरू की तथा रचनात्मक ग्रामीण कार्यक्रम में लग गए। हरिजन यात्रा के दौरान उन्होंने छुआ-छूत उन्मूलन का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। इस समय गांधीजी ने स्वराज से अधिक अस्पृश्यता को महत्त्व दिया। उन्होंने 'अछूतों' को 'हरिजन' (ईश्वर की संतान) की संज्ञा देकर उन्हें मंदिरों, सार्वजनिक तालाबों, सड़कों एवं कुँओं

पर समान अधिकार दिलाने के लिये सत्याग्रह प्रारंभ कर दिया। उन्होंने 'हरिजन' नामक पत्र का संपादन आरंभ किया तथा 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की। अब उनका ध्यान सविनय अवज्ञा आंदोलन से हट गया। अत: मई, 1933 ई. में उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन को अस्थायी रूप से और अप्रैल, 1934 में स्थायी रूप से वापस ले लिया।

प्रश्न :- "ब्रिटिश के विरुद्ध गांधीवाद सबसे खतरनाक हथियार सिद्ध हुआ।" टिप्पणी कीजिये।

*(**प्रश्न विश्लेषण:** यह प्रश्न अपने स्वरूप में Hypothetical है। इसमें निम्नलिखित Key Words हैं- 'विरुद्ध', 'गांधीवाद', 'खतरनाक हथियार', 'टिप्पणी'।)*

उत्तर: पश्चिम साम्राज्यवाद की संपूर्ण संस्कृति हिंसा पर आधारित थी। प्रशासन एवं आंतरिक सुरक्षा दंड शक्ति पर आधारित थी। उत्पादन प्रणाली प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित थी और पूंजीवादी बाज़ार के विस्तार में भी युद्ध एवं संघर्ष का सहारा लिया जाता था। इस क्रम में साम्राज्यवादी शक्तियों के द्वारा अत्याधुनिक हथियारों के समक्ष गांधीवाद सबसे खतरनाक हथियार सिद्ध हुआ, क्योंकि साम्राज्यवादी शक्ति के पास उसकी कोई काट नहीं थी। इसे निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

- गांधीजी के अहिंसा एवं सत्याग्रह के विचार ने सभी वर्गों, जैसे- किसान, ज़मींदार, व्यापारी, बच्चों एवं महिलाओं आदि को आकर्षित किया और राष्ट्रीय आंदोलन को मज़बूत किया। इस प्रकार, गांधीजी ने इसके माध्यम से एक वैकल्पिक राजनीति की शुरुआत की। गांधीजी की यह पद्धति ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध सबसे खतरनाक हथियार सिद्ध हुई।
- इन्होंने व्यक्तिवाद से बढ़कर वर्ग समन्वय पर बल दिया, ताकि जनशक्ति को बढ़ाया जा सके।
- गांधीजी की स्वराज की अवधारणा भी विलक्षण थी। उन्होंने इसके माध्यम से नैतिक स्वतंत्रता पर बल दिया। उन्होंने 1909 में लिखित 'हिन्द स्वराज' नामक पुस्तक में 'स्वराज' शब्द को स्पष्ट करने का प्रयास किया।
- गांधीजी ने पश्चिम की उपभोक्तावादी संस्कृति की खुलकर आलोचना की और पश्चिम के विपरीत ग्राम स्वराज पर बल दिया तथा विकेंद्रीकृत प्रशासन का मॉडल प्रस्तुत किया।
- इन्होंने रचनात्मक ग्रामीण कार्यक्रम के माध्यम से लाखों गाँवों को कॉन्ग्रेस की राजनीति से जोड़ा।

सबसे बढ़कर गांधीवाद ने दुनिया के शोषित एवं वंचित लोगों को साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध लड़ने के लिये अहिंसा एवं सत्याग्रह के रूप में एक कारगर हथियार दिया, उदाहरणस्वरूप- USA के अश्वेत नेता मर्टिन लूथर किंग, दक्षिण अफ्रीका के नेता नेल्सन मंडेला आदि ने गांधीवादी तरीके को अपनाया।

इस प्रकार गांधीवादी विचारधारा, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ सबसे खतरनाक हथियार सिद्ध हुई।

भारत शासन अधिनियम, 1935

- गोलमेज सम्मेलन के पश्चात् सरकार द्वारा 1935 ई. का एक्ट लाया गया। कुछ प्रारंभिक आलोचनाओं के बावजूद कांग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया।

प्रमुख प्रावधान :-

- ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों को मिलाकर एक संघ का निर्माण किया जाना था, परंतु उसके लिये शर्त यह रखी गई कि कम-से-कम आधे राज्यों की स्वीकृति हो। चूँकि, यह स्वीकृति नहीं मिली, इसलिये व्यवहार में यह संघ अस्तित्व में नहीं आया।
- प्रांतों में द्वैध शासन को समाप्त कर प्रांतीय स्वायत्तता लागू की गई अर्थात् प्रांतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की जानी थी। परंतु इस अधिनियम के अनुच्छेद-93 के अधीन गवर्नर को अत्यधिक विवेकाधीन शक्तियाँ दी गई थीं।
- मताधिकार का विस्तार हुआ। धनी एवं मझोले किसानों को मताधिकार मिला। यहाँ ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य किसानों को अपनी ओर खींचकर कांग्रेस का जनाधार कमजोर करना था।
- इस अधिनियम के आधार पर बर्मा को भारत से पृथक् कर दिया गया।
- एक संघीय न्यायालय तथा रिजर्व बैंक की स्थापना का प्रावधान किया गया।

कॉन्ग्रेस सरकारों के 28 महीने एवं उसकी उपलब्धियाँ

- 1935 का भारत शासन अधिनियम कई बातों में कांग्रेस के लिए निराशाजनक था। उदाहरण के लिए, इस अधिनियम में डोमिनियन स्टेटस तथा वयस्क मताधिकार का कोई प्रावधान नहीं था। संघीय व्यवस्था भी कांग्रेस की प्रगति को रोकने की एक साजिश थी। इसलिए आरंभ में कांग्रेस ने इसकी आलोचना की, किंतु फिर भी इसने चुनाव लड़ने का निर्णय लिया।

- 1937 के चुनाव में कांग्रेस को व्यापक सफलता मिली। कुल 11 प्रातों में से 5 प्रांतों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत मिला तथा कांग्रेस 7 प्रांतों में सरकार बनाने की स्थिति में थी। ये प्रांत थे–बिहार, मध्य प्रांत, संयुक्त प्रांत, उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत, मद्रास, बॉम्बे तथा उड़ीसा। आगे कांग्रेसी प्रांतों की संख्या बढ़कर 8 हो गई। इन प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने अपना पदभार सभाला। किंतु तभी कांग्रेस के अंतर्गत वामपंथी तथा दक्षिणपंथी गुट के बीच सरकार बनाने के मुद्दे पर विवाद आरंभ हो गया। कांग्रेस के अंतर्गत वामपंथी गुट का यह कहना था कि कांग्रेस को चुनाव के माध्यम से अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहिए, किंतु उसे सरकार में शामिल नहीं होना चाहिए क्योंकि गवर्नर के हस्तक्षेप के कारण सरकार पंगु हो जायेगी और फिर भारतीय जनता के बीच सरकार की बदनामी होगी, किंतु दक्षिणपंथी गुट चुनाव लड़ने के साथ सरकार में शामिल होने के लिए भी तत्पर था। अंत में, गाँधी जी की मध्यस्थता एवं वायसराय के आश्वासन पर कि गवर्नर अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करेगा, कांग्रेस के द्वारा प्रांतीय सरकारें स्थापित की गईं।
- बंगाल में कृषक प्रजा पार्टी के फजलुल हक ने पहले कांग्रेस को गठबंधन सरकार बनाने का प्रस्ताव दिया, परंतु कांग्रेस के इंकार करने पर मुस्लिम लीग के साथ मिलकर सरकार बना ली।
- कांग्रेस ने अपने शासन के 28 माह में अपने घोषणापत्र में किए गए वायदे को निभाने का प्रयत्न किया। कांग्रेस अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस ने 1938 में राष्ट्रीय योजना समिति नियुक्त की थी। इसके माध्यम से कांग्रेस की सरकारों ने योजना के विकास में हाथ बंटाने के प्रयास किए।
- जेल से राजनीतिक कैदियों की रिहाई, प्रांतों में किसानों की सुरक्षा के लिए रैय्यतवाड़ी कानून बनाना, प्रेस की आजादी के संरक्षण को लागू किया गया। शिक्षा के विकास के लिए वर्धा बेसिक शिक्षा योजना लायी गई जिसे मुस्लिम लीग एवं हिंदू महासभा ने अस्वीकार कर दिया।

कांग्रेस की सरकारों का त्यागपत्र

- सितम्बर, 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध आरंभ होने के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने भारतीय दलों के साथ विचार–विमर्श किये बिना भारत को एक 'युद्धरत राष्ट्र' घोषित कर दिया। अत: कांग्रेस द्वारा इसका व्यापक विरोध आरंभ हुआ। गाँधी ने यह स्पष्ट कर दिया कि प्रथम विश्व युद्ध की तरह इस बार भारतीय जनता ब्रिटिश सरकार को बिना शर्त समर्थन नहीं देगी। गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस का यह कहना था कि सरकार को दो माँगें अविलंब पूरी करनी चाहिए। प्रथम, केंद्र में उत्तरदायी सरकार जैसा कोई प्रावधान हो। दूसरे, युद्ध के शीघ्र बाद भारतीयों के द्वारा निर्मित एक संविधान सभा का प्रावधान हो।
- चूँकि सरकार ने इस पर कोई स्पष्ट आश्वासन नहीं दिया। अत: नवम्बर, 1939 तक कांग्रेस की प्रांतीय सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया। फिर कांग्रेस तथा सरकार के बीच विवाद आरंभ हो गया।
- जिस दिन कांग्रेसी सरकार ने त्यागपत्र दिया था, उस दिन को मुस्लिम लीग ने 'मुक्ति दिवस' के रूप में मनाया। मुस्लिम लीग के साथ अम्बेडकर और उनकी पार्टी ने भी मुक्ति दिवस मनाने में सहयोग दिया।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में समाजवाद एवं वामपंथ का बढ़ता हुआ प्रभाव

- 1920 तथा 1930 के दशक में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर एक शक्तिशाली वामपंथी प्रभाव महसूस किया गया। इस प्रभाव से राष्ट्रीय आन्दोलन के चरित्र में ही परिवर्तन हो गया। अब तक कांग्रेस का मुख्य लक्ष्य जहाँ राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना था, वहीं अब सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता की माँग भी की जाने लगी।

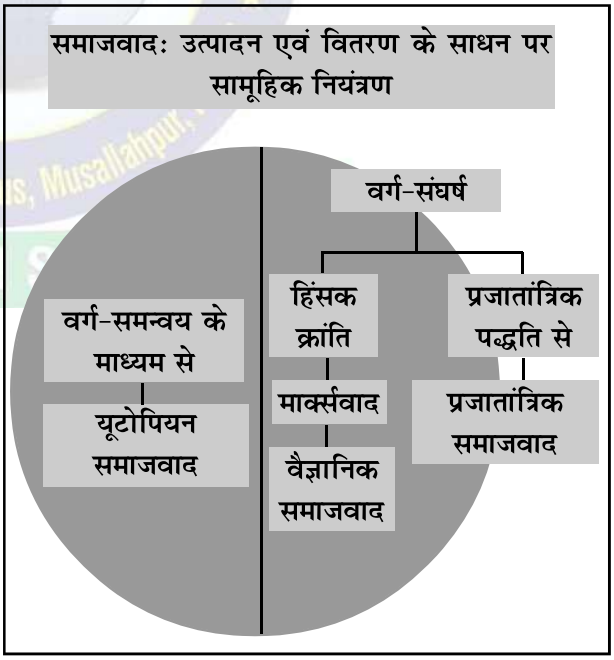

- **निम्नलिखित कारणों से समाजवाद को प्रेरणा मिली–**

1. भारत में वामपंथी विचार के उद्‌भव एवं प्रसार के पीछे मुख्य प्रेरक शक्ति 1917 की रूसी क्रान्ति को माना जाता है। 7 नवम्बर, 1917 को लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक

पार्टी ने जार के निरंकुश शासक को उखाड़ फेंका तथा रूस में विश्व के पहले समाजवादी राज्य की स्थापना की घोषणा की। रूस द्वारा शासन व्यवस्था में सर्वहारा को महत्त्वपूर्ण स्थान देने से उपनिवेशों की शोषित जनता में यह विचारधारा काफी लोकप्रिय हुई।

2. असहयोग आन्दोलन को अपेक्षित सफलता नहीं मिलने से निराश युवा वर्ग को मार्क्सवाद एक वैकल्पिक एवं तीव्र स्वतंत्रतागामी मार्ग लगा। इसके अतिरिक्त, युवाओं का एक वर्ग गाँधीवादी समाधान से संतुष्ट नहीं था।

3. 1929-30 की विश्व आर्थिक मंदी ने भी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की कमजोरी को उद्घाटित कर दिया। इस विश्वव्यापी मंदी से जिस प्रकार सोवियत रूस ने स्वयं को बचाए रखा, इससे भी साम्यवादी विचारधारा को लोकप्रियता मिली।

भारतीय राजनीति में समाजवादी एवं वामपंथी आंदोलन :

- **कम्युनिस्ट आंदोलन :** सर्वप्रथम एम. एन. राय ने 1920 ई. में ताशकंद में 'भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी' की स्थापना की थी, किन्तु भारत में औपचारिक रूप से कम्युनिस्ट आंदोलन की शुरूआत 1925 में कानपुर से हुई जब एम. सिंगारवेलु की अध्यक्षता में कम्युनिस्ट पार्टी की अखिल भारतीय बैठक हुई। इसमें श्रीपद अमृत डांगे, नेली सेनगुप्त, मुजफ्फर अहमद, शौकत उस्मानी आदि शामिल हुए।
- कम्युनिस्ट पार्टी ने कांग्रेस के साथ मिलकर काम करने का निर्णय लिया। उसका उद्देश्य था कांग्रेस की नीति को वामपंथ की दिशा में मोड़ना। कम्युनिस्टों के द्वारा श्रमिक एवं किसान पार्टी का गठन किया गया। इस प्रकार कम्युनिस्ट पार्टी के द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन में एक नए वामपंथी रूझान को प्रोत्साहन दिया गया।
- **कांग्रेस समाजवादी दल (CSP) :** 1933 में कांग्रेस के कुछ नेताओं ने नासिक जेल में एक कांग्रेस समाजवादी पार्टी गठित करने का निर्णय लिया। यह पार्टी कांग्रेस के अन्तर्गत ही कार्य करती। फिर 1934 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी का गठन हुआ। इसके कुछ महत्वपूर्ण नेता आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, अन्नपूर्णा नंद सिंह, मीनू मसानी, अशोक मेहता आदि थे। जवाहरलाल नेहरू ने इस पार्टी को आशीर्वाद जरूर दिया, लेकिन वे इसके सदस्य नहीं बने।
- इस पार्टी का लक्ष्य था संगठन एवं विचारधारा के स्तर पर कांग्रेस को समाजवाद की ओर मोड़ना। विचारधारा के स्तर पर कांग्रेस को रूपांतरित करने का अर्थ था- कांग्रेस जनों को धीरे-धीरे इस बात के लिए राजी करना कि वे स्वतंत्र भारत की प्राप्ति के लिए समाजवादी दृष्टिकोण अपनाएं तथा वर्तमान आर्थिक मुद्दों पर अपना रूख किसानों और मजदूरों के पक्ष में रखें। संगठन के स्तर पर रूपांतरण का अर्थ था- ऊपर से नेतृत्व का परिवर्तन क्योंकि इस पार्टी के नेता मानते थे कि वर्तमान नेतृत्व जनता के संघर्ष को चरम तक ले जाने में अक्षम है।

कांग्रेस पर समाजवादी विचारधारा से प्रेरित युवा नेताओं का प्रभाव :-

- कांग्रेस पर जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस जैसे युवा नेताओं का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। इनके द्वारा विभिन्न अधिवेशनों की अध्यक्षता की गई और उनमें सर्वाधिक कार्यक्रम बनाये गये। जवाहरलाल नेहरू ने 1929 के लाहौर अधिवेशन, 1936 के लखनऊ अधिवेशन और 1937 के फैजपुर अधिवेशन की अध्यक्षता की। 1929 के लाहौर अधिवेशन में उन्होंने घोषित किया कि 'मैं समाजवादी हूँ'। फिर 1936 के लखनऊ अधिवेशन में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि "मैं मानता हूँ कि भारत और विश्व की समस्या का एक मात्र हल समाजवाद है"।
- फिर 1938 तथा 1939 में सुभाष चंद्र बोस ने क्रमशः हरिपुरा तथा त्रिपुरी अधिवेशन की अध्यक्षता की। यद्यपि त्रिपुरी अधिवेशन ने संकट का रूप ले लिया क्योंकि इस अधिवेशन के मध्य कांग्रेस के वामपंथी तथा दक्षिणपंथी गुटों के बीच संघर्ष छिड़ गया। दक्षिणपंथी खेमे के विरोध के बावजूद भी सुभाष के द्वारा चुनाव जीतना, वामपंथी विचारों की प्रगति को दर्शाता है।

समाजवाद अथवा वामपंथ का योगदान :-

1. इसके प्रभाव से किसानों तथा मजदूरों की समस्या को प्रभावी ढंग से उभारा गया। इसने किसानों और श्रमिकों को संगठित किया तथा राजनीति में उनकी भागीदारी को प्रोत्साहन दिया।
2. इसने स्वतंत्रता की परिभाषा बदल दी तथा राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता पर भी बल दिया।
3. इसने कांग्रेस के कार्यक्रम को भी समाजवाद की दिशा दे दी। उदाहरण के लिए, 1931 का कराची अधिवेशन (20 सूत्री समाजवादी कार्यक्रम)। कराची प्रस्ताव में श्रमिकों के लिए सामान्य कार्यक्रम; जैसे- अधिक पारिश्रमिक, बंधुआ मजदूरी की समाप्ति एवं ट्रेड यूनियन बनाने के अधिकार आदि को शामिल किया गया था।
4. 1936 के लखनऊ अधिवेशन एवं 1937 के फैजपुर अधिवेशन में किसानों की दशा में सुधार के लिए प्रगतिशील

कृषि कार्यक्रम लाए गए। 1938 के हरिपुरा अधिवेशन में 'योजना समिति' का गठन हुआ, इसका अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू को बनाया गया।

5. महिलाओं के अधिकारों की रक्षा तथा राजनीति में धर्मनिरपेक्षता की बात लाना कम्युनिस्टों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक थी।

सीमाएँ :-

1. भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं ने चीन के कम्युनिस्ट नेताओं की तरह व्यावहारिक दृष्टिकोण नहीं अपनाया अर्थात् उन्होंने भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल रणनीति नहीं अपनायी, बल्कि हमेशा मॉस्को एवं लंदन से ही निर्देशित होते रहे।
2. कांग्रेस समाजवादी दल ने अपना पहला लक्ष्य राष्ट्रवाद को बनाया और फिर समाजवाद को।
3. संकट के समय भी विभिन्न समाजवादी संगठन संयुक्त मोर्चा बनाने में विफल रहे। उदाहरण के लिए, त्रिपुरी संकट। इस संकट के समय न केवल कांग्रेस समाजवादी दल एवं नेहरू ने सुभाष का साथ छोड़ दिया था, वरन् समाजवादी दल ने भी सुभाष को किनारे कर दिया था।
4. जब तक भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन आरंभ हुआ, तब तक गांधीजी के नेतृत्व में एक सशक्त बुर्जुआ आंदोलन स्थापित हो चुका था। अत: भारत में कम्युनिस्टों के लिये गांधीवाद भी एक बड़ी चुनौती बना रहा।

महिलाओं में जागृति

- डॉ. सरोजिनी नायडू एवं श्रीमती एनी बेसेंट के प्रयास से महिला मताधिकार के मुद्दे को प्रोत्साहन मिला था।
- प्रांतीय विधान मण्डलों के चुनाव में महिलाओं को मताधिकार 1930 तक मिल चुका था। फिर 1935 में केन्द्रीय विधान मण्डल में महिलाओं को मताधिकार मिला तथा उनके लिए सीटें भी आरक्षित की गईं।

किसानों में जागृति

- 1920 के दशक में प्रांतीय किसान सभा की स्थापना की गई। फिर 1930 के दशक में सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में अखिल भारतीय किसान सभा का गठन हुआ।
- 1937-38 में बिहार के बरहिया ताल में कार्यानंद शर्मा के नेतृत्व में बकाश्त आंदोलन हुआ।

सम्प्रदायवाद की प्रगति

- **1930 के दशक में मुस्लिम जमींदारों को समाजवाद का भय :-** 1930 के दशक में मुस्लिम जमींदार वर्ग बढ़ते हुए समाजवाद के खतरे से भयभीत थे। उन्हें डर था कि कहीं समाज आर्थिक आधार पर न बँट जाये, इसलिए उन्होंने साम्प्रदायिक विभाजन को प्रोत्साहन दिया।
- **1937 में चुनावी परिणामों का सम्प्रदायवाद पर प्रभाव :-**

1. 1932 ई. के साम्प्रदायिक पंचाट में मुस्लिम लीग की लगभग सभी माँगें मान ली गईं। अब उनके पास कोई मुद्दा नहीं रह गया था। अत: 1937 के चुनाव में मुस्लिम लीग की हार हुई। इस हार के पश्चात् मुहम्मद अली जिन्ना ने सबक सीखा। फिर जिन्ना ने मुस्लिम लीग को जन सामान्य पार्टी बनाने के लिए नई नीति और नये कार्यक्रमों को अपनाया।
2. दूसरी तरफ, हिन्दू महासभा को भी चुनावी विफलता का सामना करना पड़ा। अत: हिन्दू महासभा के अध्यक्ष मदन मोहन मालवीय ने स्वास्थ्य के आधार पर त्याग पत्र दे दिया, फिर 1938 ई. में नये अध्यक्ष वी.डी. सावरकर बने। उसी तरह, डॉ. हेडगेवार की मृत्यु के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नये अध्यक्ष गोलवलकर बने। इस प्रकार उग्र सम्प्रदायवाद का चरण अर्थात् जिन्ना, सावरकर और गोलवलकर का चरण प्रारंभ हुआ।

■■■

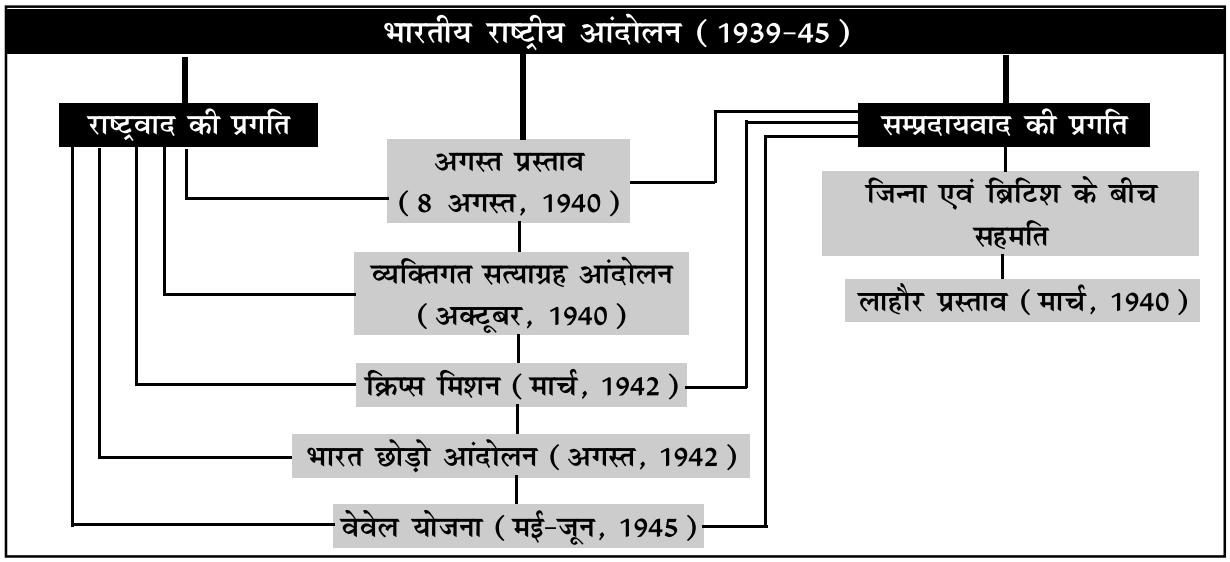

■ **द्वितीय विश्व युद्ध ने एक ही साथ राष्ट्रवाद एवं सम्प्रदायवाद की विचारधारा को प्रोत्साहन दिया।**

राष्ट्रवाद की प्रगति

अगस्त प्रस्ताव (8 अगस्त, 1940 ई.)

- कांग्रेस की प्रांतीय सरकारों से त्यागपत्र के बाद कांग्रेस को संतुष्ट करने तथा युद्ध में कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने के लिए लॉर्ड लिनलिथगो ने 8 अगस्त, 1940 ई. को एक प्रस्ताव रखा, जिसे 'अगस्त प्रस्ताव' का नाम दिया गया। इस प्रस्ताव में अंतरिम सरकार का गठन करने की माँग को खारिज कर दिया गया। अतः इस प्रस्ताव को कांग्रेस और मुस्लिम लीग (पाकिस्तान की माँग स्पष्टतः स्वीकार न करने के कारण) ने भी अस्वीकार कर दिया।

अगस्त प्रस्ताव में निम्नलिखित प्रावधान थे-

- इस प्रस्ताव में संविधान को लागू करने के लिये भारतीयों के अधिकार को स्वीकार किया गया और यह संविधान मुख्य रूप से भारतीयों द्वारा तैयार किया जाना था।
- इस प्रस्ताव के अनुसार एक युद्ध सलाहकार परिषद् का गठन भी किया जाना था।
- इसमें वायसराय की परिषद् के विस्तार का प्रावधान था, ताकि इसमें कुछ भारतीय सदस्यों को भी शामिल किया जा सके।

व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन (अक्टूबर, 1940)

- सरकार का विरोध करने के लिये गाँधी जी के नेतृत्व में 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू किया गया। वस्तुतः उस समय कांग्रेस के अंदर एक अखिल भारतीय आंदोलन आरंभ करने के मुद्दे कर परस्पर मतभेद था। नेहरू के साथ-साथ गाँधी भी एक अखिल भारतीय आंदोलन छेड़ने से कतरा रहे थे क्योंकि उनका मानना था कि इसके कारण फासीवादी शक्ति की स्थिति मजबूत हो जायेगी।
- व्यक्तिगत सत्याग्रह गांधीजी की विचारधारा पर आधारित सत्याग्रह था, जिसका मुख्य उद्देश्य वैश्विक स्तर पर यह बतलाना था कि द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीय जनता ब्रिटिश सरकार के साथ नहीं है। इस व्यक्तिगत सत्याग्रह में विनोबा भावे पहले सत्याग्रही बने तथा दूसरे सत्याग्रही जवाहरलाल नेहरू थे।

क्रिप्स मिशन (मार्च, 1942)

- द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्रिटिश के पाँव उखड़ रहे थे। साथ ही, ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल पर भारत के साथ समझौता करने के लिए मित्र राष्ट्रों का दबाव बढ़ रहा था। अतः मार्च, 1942 में ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री चर्चिल की सरकार ने भारतीय नेताओं से वार्ता करने के लिये स्टैफोर्ड क्रिप्स के अधीन एक मिशन भेजा। क्रिप्स मिशन प्रस्ताव में निम्नलिखित प्रावधान थे-
- युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत को डोमिनियन राज्य का दर्जा दिया जाएगा।
- युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत को संविधान निर्माण की शक्ति दी जायेगी और यह संविधान केवल भारतीयों के द्वारा निर्मित होगा। गाँधीजी ने इसे 'पोस्ट डेटेड चेक' कहा। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग, दोनों ने क्रिप्स प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

भारत छोड़ो आंदोलन (अगस्त, 1942)

रणनीति एवं कार्यक्रम :-

- 7 अगस्त, 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक बंबई में अबुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में आयोजित हुई। इस बैठक में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पेश किया गया और 8 अगस्त को कुछ संशोधन के बाद उसे पारित कर दिया गया। 8 अगस्त, 1942 को गांधीजी ने बंबई बैठक में जनता को 'करो या मरो' का नारा दिया। अगस्त संकल्प पर बोलते हुए गांधीजी ने अहिंसक जनांदोलन का आह्वान किया।

- इस प्रस्ताव के पारित होने के शीघ्र बाद सरकार सक्रिय हो गई तथा 9 अगस्त, 1942 के सुबह तक कांग्रेस के सभी महत्वपूर्ण नेता गिरफ्तार कर लिए गए, परंतु जनता अनियंत्रित हो गई। फिर 9 अगस्त से 14 अगस्त के बीच मुंबई एवं कलकत्ता अशांत रहे।
- 15 अगस्त तक यह ग्रामीण क्षेत्रों में फैल गया। बिहार के भोजपुर क्षेत्र से यह संयुक्त प्रांत के भोजपुर क्षेत्र में फैल गया तथा बलिया एवं गाजीपुर में चित्तू पांडे के अधीन एक समानांतर सरकार स्थापित हुई। उसी प्रकार, मिदनापुर में एक जातीय सरकार स्थापित हुई। वैसे तो इस आंदोलन का प्रभाव संपूर्ण भारत पर देखा गया, परंतु इसके चार प्रमुख केंद्र रहे थे- बिहार-उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, बंगाल, महाराष्ट्र-कर्नाटक।
- सरकार के द्वारा भी अभूतपूर्व दमन चक्र लगाया गया। इसलिए जब ग्रामीण क्षेत्रों में इस आंदोलन की कमर टूटने लगी, तो फिर छात्रों और बुद्धिजीवियों ने इसकी कमान संभाली और गोरिल्ला पद्धति से संघर्ष जारी रखा। यह स्मरणीय है कि यह एक ऐसा आंदोलन था जिसे कांग्रेस ने अधिकृत रूप में कभी भी वापस नहीं लिया था।

भारत छोड़ो आंदोलन का महत्व :-

- इस आंदोलन ने निम्नलिखित तरीके से स्वतंत्रता के मुद्दे को प्राथमिकता की पहली सूची में ला दिया-

1. इस आंदोलन से यह साबित हुआ कि राष्ट्रवाद समाज के निचले स्तर पर पहुँच गया है।
2. इसने बताया कि ब्रिटिश को अपना शासन बनाए रखने के लिये सेना और पुलिस पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है।
3. इस आंदोलन ने ब्रिटिश को बताया कि भारतीय पूर्ण स्वतंत्रता से कम किसी भी समझौते पर संतुष्ट नहीं होंगे।
4. भविष्य में किसी भी आंदोलन में हिंसक या अहिंसक तरीके के बीच सीमांकन की किसी भी रेखा को खींचना मुश्किल होगा।

प्रश्न :- "भारत छोड़ो आंदोलन ने भारत की स्वतंत्रता के मुद्दे को प्राथमिकता की पहली सूची में ला दिया।" टिप्पणी कीजिये।

*(**प्रश्न विश्लेषण:** यह प्रश्न अपने स्वरूप में Hypothetical है। Key Word हैं- 'भारत छोड़ो आंदोलन', 'भारत की स्वतंत्रता', 'प्राथमिकता', 'पहली सूची', 'टिप्पणी'।)*

उत्तर: भारत छोड़ो आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। यह आंदोलन न केवल ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ सबसे सशक्त व मुखर साबित हुआ, बल्कि इसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को प्राथमिकता की पहली सूची में लाकर रख दिया। इसे हम निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं-

- इस आंदोलन का स्वरूप इतना व्यापक रहा था कि इसने पूरे भारत को अपने आगोश में ले लिया। इतना ही नहीं, इस आंदोलन ने ब्रिटिश सरकार को यह स्पष्ट कर दिया कि अब भारतीय जनता स्वतंत्रता से कम किसी समझौते पर तैयार नहीं होगी।
- इस आंदोलन में काफी हद तक वर्गीय हितों के शून्य हो जाने का संकेत मिला था। अब भारतीय जनता वास्तविक शत्रु को पराजित करने के लिये आपसी भेदभाव भुलाने को तैयार थी।
- सबसे बढ़कर, अब तक ब्रिटिश को ऐसा विश्वास था कि महात्मा गांधी के नेतृत्व में जो आंदोलन होगा, वह अहिंसक आंदोलन होगा, परंतु भारत छोड़ो आंदोलन ने यह सिद्ध कर दिया कि भविष्य में जो आंदोलन होगा, उसमें हिंसा व अहिंसा के बीच स्पष्ट भेद करना मुश्किल हो जाएगा। अत: यह ब्रिटिश के लिये खतरे की घंटी थी।
- यह आंदोलन कॉन्ग्रेस के पूर्व आंदोलनों से भिन्न था, क्योंकि इस आंदोलन ने पहली बार राष्ट्रवादी तथा साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच समझौता रहित संघर्ष का चरम रूप दिखा दिया था। अब राष्ट्रीय आंदोलन की एकमात्र मांग स्वतंत्रता बन गई थी। अत: भारत छोड़ो के आह्वान के बाद पीछे नहीं मुड़ा जा सकता था। औपनिवेशिक सरकार के साथ भविष्य में जो भी वार्ता होनी थी, वह सत्ता के हस्तांतरण के मुद्दे पर होनी थी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस आंदोलन ने स्वतंत्रता को प्राथमिकता की पहली सूची में ला दिया।

वेवेल योजना

- नये वायसराय वेवेल ने एक योजना प्रस्तुत की, इस योजना के अनुसार-

1. वायसराय की परिषद् में वायसराय को छोड़कर बाकी सभी 10 सदस्य भारतीय होने थे।
2. वायसराय का कहना था कि यद्यपि उसकी विवेकाधीन शक्तियाँ बनी रहेंगी परन्तु उसने आश्वासन दिया कि वह उसका दुरूपयोग नहीं करेगा।
3. फिर 10 प्रतिनिधियों में से 5 कांग्रेस द्वारा दिए जाने थे और 5 मुस्लिम लीग द्वारा। यह अपने आप में एक प्रगतिहीन कदम था क्योंकि मुस्लिम लीग का राजनीतिक वजन कॉन्ग्रेस के बराबर का नहीं था।

- फिर भी कांग्रेस ने इसे स्वीकार किया, परन्तु मुख्य समस्या तब आई जब कांग्रेस ने अपने प्रतिनिधियों में 2 मुस्लिम प्रतिनिधियों, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद और खान अब्दुल गफ्फार खान को चुना। किन्तु जिन्ना ने इन

प्रतिनिधियों का विरोध कर दिया क्योंकि उनका कहना था कि मुस्लिम प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार केवल मुस्लिम लीग को है।

- इस मुद्दे पर 14 और 25 जून के बीच शिमला में एक सम्मेलन भी हुआ, किन्तु इसका समाधान नहीं निकला तथा वेवेल ने इस योजना को रद्द कर दिया। इस प्रकार जिन्ना का वीटो सफल हो गया।

संप्रदायवाद की प्रगति

- **जिन्ना एवं ब्रिटिश के बीच सहमति एवं लाहौर प्रस्ताव (मार्च, 1940) :-** जैसा कि ब्रिटिश सरकार ने अपने युद्ध प्रयासों में कॉन्ग्रेस का समर्थन खो दिया था, इसलिये मुस्लिम लीग का समर्थन पाने के लिये ब्रिटिश सरकार ने सांप्रदायिकता के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। औपनिवेशिक सरकार ने भारत में मुसलमानों के एकमात्र नेता के रूप में जिन्ना को स्वीकार किया। इससे पूर्व ही जिन्ना ने मार्च, 1940 में लाहौर प्रस्ताव लाकर पृथक् एवं स्वतंत्र मुस्लिम राज्य के लक्ष्य को स्वीकार कर लिया था।
- **संप्रदायवाद के क्षेत्र में अगस्त प्रस्ताव का योगदान:-** इसने मुस्लिम लीग को वीटो शक्ति दे दी क्योंकि इसमें यह प्रावधान लाया गया था कि भारत में कोई भी ऐसा संविधान मंजूर नहीं किया जाएगा, जिस पर मुस्लिमों (अल्पसंख्यक) की सहमति न हो।
- **मुस्लिम संप्रदायवाद में क्रिप्स मिशन की भूमिका:-** इसमें एक 'लोकल ऑप्शन' का प्रावधान लाया गया था अर्थात् युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारतीयों के द्वारा निर्मित होने वाली संविधान सभा से अगर कोई प्रांत अलग रहना चाहे, तो उसे एक पृथक् संविधान बनाने का अधिकार होगा। यह 'लोकल ऑप्शन' का प्रावधान भारत की एकता और अखंडता के लिए घातक था तथा यह गुप्त रूप में पाकिस्तान की योजना को प्रोत्साहन था।
- **मुस्लिम संप्रदायवाद के क्षेत्र में वेवेल योजना की भूमिका:-** 1945 की वेवेल योजना में मुस्लिम लीग को अपनी वीटो शक्ति का प्रयोग करने का पहला अवसर प्राप्त हुआ, जब वेवेल के प्रयासों से लीग के पाँच सदस्यों को मिलाकर एक अंतरिम सरकार का गठन किया जाना था। लेकिन जिन्ना अंतरिम सरकार में कॉन्ग्रेस द्वारा किसी भी मुस्लिम को नामित किये जाने के पक्षधर नहीं थे। अंत में, जिन्ना के वीटो के कारण वेवेल ने इस योजना को रद्द कर दिया।

■■■

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन (द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात्)

स्वतंत्रता की ओर

- भारत छोड़ने को प्रेरित करने वाले कारक-
- ब्रिटिश साम्राज्य का पतन।
- भारत में निम्न स्तर तक राष्ट्रवादी चेतना का प्रसार।
- आजाद हिन्द फौज का मुकद्दमा एवं नौसैनिक विद्रोह।
- ब्रिटेन में सरकार का परिवर्तन।
- मार्च, 1946 में अल्पसंख्यकों के प्रति सरकार की नीति में परिवर्तन।
- मई-जून, 1946 में 'कैबिनेट मिशन योजना'।
- सितम्बर, 1946 में अन्तरिम सरकार का गठन।
- 20 फरवरी, 1947 को एटली सरकार द्वारा भारत की स्वतंत्रता की घोषणा।
- मार्च, 1947 में माउण्टबेटन का आगमन तथा जून, 1947 में माउण्टबेटन योजना के आधार पर भारत की स्वतंत्रता।

विभाजन की ओर

- मुस्लिम बहुसंख्यक प्रांतों में जिन्ना का बढ़ता हुआ प्रभाव।
- 1945-46 के चुनाव में जिन्ना एवं लीग की सफलता।
- जुलाई, 1946 में कैबिनेट मिशन योजना की अस्वीकृति।
- 16 अगस्त, 1946 को लीग के द्वारा प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस की घोषणा। इसके साथ कलकत्ता, बंबई, बंगाल के नोआखली एवं बिहार के मुंगेर में दंगे छिड़े।
- मार्च, 1947 में पंजाब में दंगे।
- अन्तरिम सरकार में मुस्लिम लीग के द्वारा बाधा उपस्थित करना।
- जून, 1947 में माउण्टबेटन योजना तथा भारत का विभाजन।

स्वतंत्रता की ओर

1. **ब्रिटिश साम्राज्य का पतन :-** द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य ब्रिटिश साम्राज्य का पतन हो गया था। उसकी अर्थव्यवस्था में इतनी गिरावट आई कि ब्रिटिश, भारत में ज़्यादा समय तक बने रहने की स्थिति में नहीं थे। वस्तुतः ब्रिटेन को भारत से एक बड़ा लाभ प्राप्त था और वह था भारत से प्राप्त होने वाली गृहव्यय की एक बड़ी राशि, जिसके माध्यम से वह अपने व्यापारिक घाटे को पूरा करता। परंतु द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य स्वयं ब्रिटेन ही भारत का कर्जदार बन गया।

- द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भारत ही ब्रिटिश का सैनिक मुख्यालय था जहाँ से ब्रिटिश संपूर्ण एशिया में युद्ध का संचालन करते थे। इसी क्रम में ब्रिटिश ने भारत में 25 लाख सैनिकों की एक बड़ी सेना खड़ी कर दी और तोप खाना एवं अन्य विभागों को भी मजबूत बनाया। इस कारण अब भारत स्वयं ब्रिटेन से भी अधिक ताकतवर हो गया था। इसलिए भारत पर शासन करने का ब्रिटिश औचित्य समाप्त हो गया।

2. **भारत में निम्न स्तर तक राष्ट्रवादी चेतना का प्रसार :-** भारत में राष्ट्रीय आंदोलन तेज़ हो गया था। भारत छोड़ो आंदोलन ने साबित कर दिया था कि भारत से अंग्रेज़ों का जाना बस कुछ समय मात्र की बात है। इस आंदोलन ने भारत की स्वतंत्रता को प्राथमिकता की पहली सूची में ला दिया था।

- स्वतंत्रता के लिए नीचे से पड़ने वाले दबाव को भी कम करके नहीं आंका जा सकता। ट्रेड यूनियन और श्रमिक आंदोलन की घटनाओं में 1945-46 के बीच तेजी आ गई थी। इतना तक कि 1945 में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन ने सरकार से स्वतंत्रता की मांग की थी। दूसरी तरफ, 1946 में बंगाल में होने वाले तेभागा किसान आंदोलन तथा 1946 में होने वाले तेलंगाना किसान आंदोलन ने भी ब्रिटिश को भयभीत कर दिया और यह संकेत किया कि भारत में शासन करना उनके लिए बड़ा कठिन होगा।
- ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रमुख स्तंभ सेना एवं पुलिस में भी राष्ट्रवादी चेतना घर कर गई थी। इतना तक कि सिविल सेवा जैसा इस्पाती ढाँचा भी टूट चुका था।

3. **आजाद हिन्द फौज का मुकद्दमा एवं नौसैनिक विद्रोहः**- सुभाष चंद्र बोस ने आई.एन.ए. (आजाद हिंद फौज) एवं एक स्वतंत्र सरकार का गठन अक्टूबर, 1943 में जापान के समर्थन से सिंगापुर में किया था। हालाँकि सैन्य रूप से यह बहुत सफल नहीं रहा, लेकिन जब 1945 में आई.एन.ए. के सदस्यों के खिलाफ लाल किले में मुकदमा शुरू हुआ तो आई.एन.ए. के सदस्यों को पूरे भारत में सहानुभूति और समर्थन प्राप्त हुआ।

- नौसैनिक विद्रोह बॉम्बे के समुद्री तट पर स्थित एक जहाज़ एच.एम.आई.एस. तलवार से शुरू हुआ और बहुत जल्द ही यह सभी 22 जहाज़ों में फैल गया। यह विद्रोह फरवरी, 1946 में हुआ और एम.एस. खान इसके नेतृत्वकर्त्ता के रूप में उभरे। यह घटना भारत में ब्रिटिश शासन के लिये एक बड़ा खतरा थी।

4. **ब्रिटेन में सरकार का परिवर्तन तथा अल्पसंख्यकों के प्रति सरकार की नीति में परिवर्तन :**- ब्रिटेन में सरकार का परिवर्तन हुआ तथा कंजरवेटिव पार्टी की जगह लेबर पार्टी की सरकार स्थापित हुई। मार्च, 1946 में क्लीमेंट एटली की सरकार ने घोषणा की कि अल्पसंख्यकों की माँगें विचारणीय हैं, परंतु उन्हें बहुसंख्यकों के हितों की उपेक्षा करके पूरा नहीं किया जा सकता। यह घोषणा भारत के संदर्भ में दृष्टि परिवर्तन की परिचायक थी। जिस प्रकार पहले ब्रिटिश नीति का बल भारत में विभाजन को प्रोत्साहन देने पर रहा था, वहीं अब उसका बल इस बात पर हो गया था कि अगर संभव हो सके तो भारत के विभाजन को रोका जाए।

5. **कैबिनेट मिशन योजना :**- मार्च, 1946 में कैबिनेट मिशन भारत आया। इसने जून, 1946 में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें निम्नलिखित अनुशंसाएँ थीं-
   1. इसने विभाजन को अस्वीकार कर दिया क्योंकि यह एक व्यावहारिक निर्णय नहीं था।
   2. वैकल्पिक रूप से इसने एक तीन स्तरीय संरचना की अनुशंसा की-
      - **केंद्रीय सरकारः** एकीकृत कमज़ोर संघ, केवल रक्षा, विदेश नीति और संचार मामलों पर नियंत्रण रखेगा।
      - **प्रांतों का समूहः** प्रांतों को तीन समूह में विभाजित किया जाना था। समूह- 'A' में 6 हिंदू-बहुल प्रांतों को शामिल किया जाना था, जबकि समूह- 'B' में उत्तर-पश्चिम के तीन मुस्लिम-बहुल प्रांतों- सिंध, पंजाब एवं बलूचिस्तान को और समूह- 'C' में उत्तर-पूर्व के दो मुस्लिम-बहुल प्रांतों- असम एवं बंगाल को शामिल किया जाना था।
   3. निर्वाचित संविधान सभा का गठन किया जाना था।
   4. एक अंतरिम सरकार का गठन किया जाना था।

6. **अन्तरिम सरकार का गठन :**- सितंबर, 1946 में कैबिनेट मिशन योजना के आधार पर जवाहरलाल नेहरू के अधीन एक अंतरिम सरकार का गठन हुआ तथा 9 दिसंबर, 1946 को संविधान सभा की पहली बैठक बुलाई गई। शुरू में मुस्लिम लीग इस सरकार में शामिल नहीं हुई। आगे वायसरॉय वेवेल के विशेष अनुरोध पर वित्त मंत्री लियाकत अली खान के नेतृत्व में लीग अंतरिम सरकार में शामिल हुई।

7. **एटली सरकार द्वारा भारत की स्वतंत्रता की घोषणा :**- 20 फरवरी, 1947 को क्लीमेंट एटली की सरकार ने एक घोषणा की, जिसमें यह स्पष्ट किया गया कि जून, 1948 तक अंग्रेज़ी सरकार भारतवासियों को सत्ता सौंप देगी।

8. **माउण्टबेटन का आगमन तथा माउण्टबेटन योजना के आधार पर भारत की स्वतंत्रता :**- वायसरॉय के रूप में माउंटबेटन मार्च, 1947 में भारत आया। वह एक प्रत्यक्ष एजेंडे के साथ-साथ एक अप्रत्यक्ष एजेंडे को लेकर भारत आया था। प्रत्यक्ष एजेंडे के तहत कैबिनेट मिशन योजना को लागू करने के लिये गंभीर प्रयास करना था, किंतु उसके अप्रत्यक्ष एजेंडे के तहत सावधानी के साथ अंग्रेज़ों को भारत से वापस जाना था, ताकि ब्रिटिश सरकार की इस प्रवृत्ति को पलायनवाद न माना जाए।

- माउंटबेटन ने विभाजन के मुद्दे पर विभिन्न भारतीय नेताओं से वार्ता आरंभ की। सबसे पहले उसने पटेल से वार्ता की, फिर नेहरू, गांधी और अंततः जिन्ना से वार्ता की।

- माउंटबेटन की आरंभिक योजना **'डिक्की बर्ड योजना'** के नाम से जानी जाती है। इसे 'प्लान बाल्कन' भी कहते हैं। इसमें यह प्रावधान था कि ब्रिटिश भारत के विभिन्न प्रांत एवं देशी रियासतों को स्वतंत्र कर दिया जाए तथा उन्हें यह अधिकार प्राप्त हो कि वे अपनी इच्छानुसार भारत अथवा पाकिस्तान में शामिल हो जाएँ, किंतु जब माउंटबेटन ने यह योजना शिमला में जवाहरलाल नेहरू के समक्ष रखी तो उन्होंने इसे पूरी तरह अस्वीकार कर दिया।

- 3 जून, 1947 को माउंटबेटन योजना के रूप में जो प्रस्ताव रखा गया था, वास्तव में उसे वी.पी. मेनन के साथ मिलकर वल्लभभाई पटेल ने तैयार किया था। इसमें ब्रिटिश भारत को दो डोमिनियन राज्यों, यथा- भारत और पाकिस्तान में विभाजित करने का प्रावधान था तथा देशी राज्यों को अपनी क्षेत्रीय अवस्थिति के अनुसार भारत अथवा पाकिस्तान के साथ विलय करना था।

- इस योजना को 4 जुलाई, 1947 को ब्रिटिश संसद के द्वारा अनुमोदन मिल गया, फिर 18 जुलाई को इसे ब्रिटिश क्राउन की स्वीकृति मिली। फिर इसे क्रमशः 14 और 15 अगस्त को पाकिस्तान तथा भारत के संदर्भ में लागू किया गया।

विभाजन की ओर

- **मुस्लिम बहुसंख्यक प्रांतों में जिन्ना का बढ़ता हुआ प्रभाव :-** द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ होने के बाद कांग्रेस की प्रांतीय सरकारों का त्यागपत्र दिया जाना घातक सिद्ध हुआ क्योंकि उसके कारण जो राजनीतिक शून्य की स्थिति उत्पन्न हुई, उसे मुस्लिम लीग ने शीघ्र भर दिया अर्थात् मुस्लिम लीग की प्रगति हुई।
- **1945-46 के चुनाव में जिन्ना एवं लीग की सफलता:-** 1945-46 के चुनाव में कांग्रेस को बड़ी सफलता प्राप्त हुई परंतु साथ ही मुस्लिम लीग को भी सफलता प्राप्त हुई। पहली बार 2 मुस्लिम बहुल प्रांतों में उसकी सरकारें बनी और फिर केंद्रीय विधान मंडल की आरक्षित सीटें भी उसी को प्राप्त हो गईं। इसका अर्थ था कि 1937 एवं 1945 के बीच मुस्लिम लीग की अत्यधिक प्रगति हो चुकी थी और वह मुस्लिम संप्रदायवाद को अभिजात्य चरण से जन समुदाय के स्तर तक पहुंचा चुकी थी।
- **जुलाई, 1946 में कैबिनेट मिशन योजना की अस्वीकृति तथा प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस की घोषणा:-** शुरू में मुस्लिम लीग ने कैबिनेट मिशन योजना को स्वीकार कर लिया था, लेकिन प्रांतीय समूह के विभाजन के मुद्दे पर मतभेद सामने आए और मुस्लिम लीग इस योजना से पीछे हट गई। 16 अगस्त, 1946 को मुस्लिम लीग ने 'प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस' की घोषणा की। हालाँकि, प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस का उद्देश्य शांतिपूर्ण प्रदर्शन था, लेकिन इस दिन कलकत्ता में मुस्लिम लीग की सरकार द्वारा नरसंहार शुरू कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप बंबई, पूर्वी बंगाल के नोआखली और बिहार के मुंगेर ज़िले में हिंदू-मुस्लिम दंगे भड़क गए।
- **अन्तरिम सरकार में मुस्लिम लीग के द्वारा बाधा उपस्थित करना :-** इस तनाव के माहौल में जब सितंबर, 1946 में अंतरिम सरकार का गठन हुआ तो सरकार का संचालन कठिन हो गया। सरकार के अंतर्गत लीग के मंत्रियों का नज़रिया नकारात्मक रहा तथा उनका उद्देश्य कार्यवाहियों को रोकना रहा। अतः सर्वप्रथम कॉन्ग्रेसी नेताओं में सरदार वल्लभभाई पटेल अत्यधिक क्षुब्ध हो गए तथा वे विभाजन की सच्चाई को स्वीकार करने के लिये तैयार हो गए। इसी क्रम में 20 फरवरी, 1947 को एटली की सरकार की घोषणा आयी जिसमें यह आश्वासन दिया गया था कि जून, 1948 तक भारत को प्रत्येक स्थिति में स्वतंत्रता मिल जायेगी। साथ ही, यह भी संकेत दिया गया कि सत्ता के केंद्र एक से अधिक भी हो सकते हैं।
- **मार्च, 1947 में पंजाब में दंगे :-** ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वतंत्रता की तिथि घोषित करना घातक साबित हुआ, क्योंकि इसे मुस्लिम लीग ने एक अवसर के रूप में लिया। फिर मार्च, 1947 में मुस्लिम लीग ने पंजाब में सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ कर खिज्र हयात खान की सरकार को गिरा दिया। लेकिन, लीग के इस गैर-विधिक कार्य के परिणामस्वरूप पंजाब में दंगा भड़क गया।
- **जून, 1947 में माउण्टबेटन योजना तथा भारत का विभाजन :-** मार्च, 1947 में नए वायसराय के रूप में माउंटबेटन का आगमन हुआ जिसका घोषित रूप में उद्देश्य कैबिनेट मिशन योजना को लागू करवाना था, परंतु माउंटबेटन ने ऐसा महसूस किया कि तात्कालिक परिस्थितियों में कैबिनेट मिशन योजना को लागू करना कठिन था। अतः माउंटबेटन ने विभाजन को प्राथमिकता दी। फिर विभिन्न राजनीतिक नेताओं से वार्ता कर उसने 3 जून, 1947 को माउंटबेटन योजना प्रस्तुत की। इसी आधार पर 14 अगस्त को भारत का विभाजन हो गया।

प्रश्नः- "द्वितीय विश्वयुद्ध ने भारत की स्वतंत्रता के साथ-साथ विभाजन को भी प्रोत्साहन दिया।" इस कथन का सोदाहरण विश्लेषण कीजिये।

*(**प्रश्न विश्लेषणः** यह प्रश्न अपने स्वरूप में Hypothetical है। Key Words हैं- 'द्वितीय विश्वयुद्ध', 'स्वतंत्रता', 'विभाजन', 'प्रोत्साहन', 'सोदाहरण विश्लेषण'।)*

उत्तरः- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के मध्य स्वतंत्रता एवं विभाजन की दिशा में साथ-साथ प्रगति होती रही तथा द्वितीय विश्वयुद्ध इस प्रगति के मार्ग में एक निश्चित भू-चिह्न (Land Mark) बनकर आया।

द्वितीय विश्वयुद्ध ने निम्नलिखित रूप में स्वतंत्रता को प्रोत्साहन दिया-

- इसने भारत में एक व्यापक जन-असंतोष को जन्म दिया तथा इसका परिणाम था- भारत छोड़ो आंदोलन। इस आंदोलन ने भारत की स्वतंत्रता के मुद्दे को प्राथमिक राष्ट्रीय मुद्दा बना दिया।
- आज़ाद हिंद फौज एवं नौसैनिक विद्रोह ने यह सिद्ध कर दिया कि अब ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे मज़बूत स्तंभ 'सेना' भी राष्ट्रवाद से प्रभावित हो चुका है।

- द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य स्वयं ब्रिटिश साम्राज्य का पतन हो गया था, अत: भारत को स्वतंत्र करना ब्रिटेन की मज़बूरी थी।

परंतु, दूसरी तरफ द्वितीय विश्वयुद्ध ने भारत के विभाजन को भी बल प्रदान किया। युद्ध के मध्य मुस्लिम लीग की सहायता प्राप्त करने के लिये सरकार ने उसे भारत के संवैधानिक विकास के विरुद्ध वीटो की शक्ति दे दी। लीग ने इसका खुलकर उपयोग किया तथा वेवेल योजना जैसे महत्त्वपूर्ण संवैधानिक प्रस्ताव को ध्वस्त कर दिया।

इस प्रकार, द्वितीय विश्वयुद्ध ने भारत की स्वतंत्रता एवं इसके विभाजन, दोनों को प्रोत्साहन दिया।

प्रश्न:- 'विभाजन के कारणों को जानने से अधिक महत्वपूर्ण हो गया है भारत के विभाजन के परिणाम को समझना।' इस कथन का युक्तियुक्त विवेचन कीजिए।

उत्तर:- भारत के विभाजन के पश्चात् लगभग पाँच दशकों तक विद्वानों और इतिहासकारों ने भारत के विभाजन की पड़ताल करने में गहरी रूचि दिखाई थी। उनका पूरा ध्यान इस बात का पता लगाने पर रहा था कि विभाजन के लिए कौन उत्तरदायी था।

परंतु पिछले दो दशकों से विद्वानों और इतिहासकारों की सोच एवं बहस की दिशा बदल चुकी है तथा विभाजन के कारणों की जगह उसके प्रभावों के मूल्यांकन पर विशेष बल दिया जा रहा है क्योंकि इस विभाजन ने भारत और पाकिस्तान पर ही अपना प्रभाव नहीं छोड़ा, बल्कि लगभग सम्पूर्ण दक्षिण एशिया को प्रभावित किया। उसके प्रभाव को निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं–

1. दक्षिण एशिया में भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश के रूप में तीन भिन्न राष्ट्रों का निर्माण हुआ। फिर भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव ने परमाणु हथियारों की प्रतिस्पर्द्धा को भी जन्म दे दिया।
2. इन दोनों देशों के बीच तनाव के कारण SAARC जैसा संगठन भी विफल सिद्ध हुआ।
3. विभाजन ने भारत में संविधान के स्वरूप पर भी प्रभाव डाला। उदाहरण के लिए, भारत में संघीय व्यवस्था, नागरिकता, मौलिक अधिकार सभी प्रावधानों पर विभाजन का प्रभाव देखा जा सकता है।
4. सबसे बढ़कर इसने भारत के अन्दर भी हिन्दू एवं मुस्लिम जनसंख्या के बीच पारस्परिक अविश्वास का भाव पैदा कर दिया।

अन्त में, हम यह भी पाते हैं कि उसने भारत में गंगा-यमुनी संस्कृति अथवा समन्वित संस्कृति को भी दुष्प्रभावित किया।

■■■

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

स्वतंत्रता के उपरान्त भारत
(खंड-4)

- भारत का विभाजन, भारत में हिंदू-मुस्लिम दंगे और शरणार्थियों का संकट तथा इनका भारत की राजनीति एवं विदेश नीति पर प्रभाव
- भारतीय यूनियन में देशी रियासतों का विलय
- एक प्रजातांत्रिक संविधान के माध्यम से एक सामंती एवं औपनिवेशिक समाज को आधुनिक राष्ट्र के रूप में संगठित करना
- भारत के विशाल भौगोलिक आकार एवं सांस्कृतिक विविधता के बावजूद एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण जो 'विविधता में एकता' का उदाहरण बना।
- कमजोर वर्ग- अल्पसंख्यक समुदाय, महिलाएँ, दलित एवं पिछड़ी जातियों के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना।
- आर्थिक सुधार कार्यक्रम, नेहरूवादी आर्थिक मॉडल, कृषि सुधार, औद्योगीकरण, पंचवर्षीय योजना
- एक प्रगतिशील विदेश नीति के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में भारत का स्थान निर्धारण

भारत का विभाजन, भारत में हिंदू-मुस्लिम दंगे और शरणार्थियों का संकट तथा इनका भारत की राजनीति एवं विदेश नीति पर प्रभाव

- नवगठित पाकिस्तान और भारत के बीच जनसंख्या का आदान-प्रदान माउंटबेटन योजना का हिस्सा नहीं था, लेकिन भारत एवं पाकिस्तान की सरकारों को अपने-अपने अल्पसंख्यकों को पूरी सुरक्षा देने को स्पष्ट रूप से कहा गया था। परंतु 15 अगस्त, 1947 के दिन अचानक दंगे आरंभ हो जाने के कारण जनसंख्या का पलायन शुरू हो गया। पंजाब में ही लगभग 1.40 लाख जनसंख्या का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पलायन हुआ।
- 8 अप्रैल, 1950 ई. को भारत एवं पाकिस्तान के प्रधानमंत्रियों के बीच अल्पसंख्यकों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिये **'नेहरू-लियाकत समझौता'** हुआ। इस समझौते में अल्पसंख्यकों के संरक्षण का प्रावधान होने के बावजूद पाकिस्तान के दोनों हिस्सों से हिंदू, सिख आदि का आना सतत् रूप से जारी रहा। अत: जनसंख्या प्रवास स्वतंत्र भारत की सरकार के समक्ष एक चुनौतीपूर्ण घटना बनकर उपस्थित हुआ। इस घटना के कारण स्वतंत्रता पर काला धब्बा लग गया। विभाजन के दौरान लगभग 10 लाख लोग मरे और लगभग 2 करोड़ लोगों का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पलायन हुआ।

विभाजन का प्रभाव

संविधान पर प्रभाव :-

1. आरंभ में ऐसा सोचा जा रहा था कि भारत में एक संघीय व्यवस्था कायम की जाएगी, परंतु विभाजन ने संविधान निर्माताओं को भयभीत कर दिया। अत: नए संविधान में **'फेडरेशन'** की जगह **'यूनियन'** शब्द का प्रयोग किया गया। केन्द्रीय सरकार के समानांतर राज्य सरकार की स्थिति बहुत कमजोर कर दी गई, अवशिष्ट शक्तियाँ केंद्र में निहित कर दी गईं तथा आपातकाल का प्रावधान लाकर केंद्र के हाथ में एक बड़ा हथियार दे दिया गया।
2. भारत में जिस प्रकार दलित वर्ग को विधानमंडल में आरक्षण मिला, पृथक् निर्वाचन समाप्त करने के पश्चात् भी मुस्लिमों को कोई आरक्षण नहीं मिला।
3. राजभाषा के मुद्दे पर भी उर्दू अथवा हिंदुस्तानी भाषा की स्थिति नीची हो गई। राजभाषा के रूप में देवनागिरी लिपि में लिखित हिंदी को मान्यता मिली, उर्दू की दावेदारी समाप्त हो गई। पहले यह अनुमान किया गया था कि कम-से-कम संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित 14 भाषाओं में उर्दू को भी स्थान मिलेगा, परंतु ऐसा नहीं हुआ।

4. विभाजन के कारण नागरिकता का मुद्दा भी उलझ गया तथा यह बहुत लंबा खिंच गया। अंततः संविधान सभा इस पर निर्णय नहीं ले सकी और उसने यह मुद्दा भारत की नयी संसद पर छोड़ दिया। अंत में, 1955 में संसद में इस पर कानून बनाया गया।

भारत की घरेलू नीति पर प्रभावः-

- दंगे और विभाजन की स्मृति ने भारतीय राजनीति में विभाजन का स्थायी बीज बो दिया। हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच पारस्परिक अविश्वास बना रहा। अतः अल्पसंख्यक समूहों को राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल करना कठिन हो गया। फिर यह वैमनस्य समय-समय पर दंगों के रूप में भी प्रकट होता रहा, इसलिये अल्पसंख्यकों का मुद्दा भारतीय राजनीति का प्रमुख मुद्दा बना रहा।

भारत की विदेश नीति तथा दक्षिण-एशिया की राजनीति पर प्रभावः-

1. **शरणार्थियों की समस्याः-** भारत की पूर्वी सीमा पर चकमा शरणार्थी तथा रोहिंग्या शरणार्थी की समस्या विभाजन की स्थायी देन है।
2. **दक्षिण एशिया में तीन विभिन्न राष्ट्रों का गठन तथा उनके बीच तनावः-** दक्षिण एशिया में भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश तीन राष्ट्र बन गए तथा इनके बीच भौगोलिक सीमा रेखा का निर्धारण आज भी चुनौती बनी हुई है।
3. विभाजन की एक प्रमुख देन है **परमाणु हथियारों की होड़ तथा आतंकवाद की समस्या**। पाकिस्तान ने भारत से सामरिक समानता हासिल करने के लिए परमाणु हथियारों से लेकर आतंकवाद, सभी का सहारा लिया। यह आतंकवाद केवल दक्षिण एशिया के लिए ही नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए खतरा बन गया है।
4. विश्व के अन्य क्षेत्रों में क्षेत्रीय संगठन; यथा- आसियान, सेलाक (लैटिन अमेरिका में) आदि निरंतर प्रगति कर रहे हैं, परंतु सार्क का विकास अवरुद्ध हो गया और इसका कारण है- भारत-पाकिस्तान का तनाव।

भारतीय यूनियन में देशी रियासतों का विलय

- ब्रिटिश साम्राज्य के द्वारा विस्तार के क्रम में भारत के लगभग 3/5 भाग पर नियंत्रण स्थापित कर लिया गया था, जबकि 2/5 भाग उनके क्षेत्र से बाहर रहा और वहाँ देशी शासक शासन करते रहे। हालाँकि 1857 के पश्चात् भी ब्रिटिश ने भारत में अप्रत्यक्ष रूप में ब्रिटिश विस्तार की नीति जारी रखी और इन राज्यों पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित कर लिया था। अतः जब भारत से ब्रिटिश के जाने का समय आया, तो इन राज्यों के भविष्य का प्रश्न भी उपस्थित हुआ।
- माउंटबेटन योजना में देशी रियासतों के लिए यह प्रावधान था कि भारत और पाकिस्तान दो डोमिनियन होंगे तथा देशी रियासतों को अपना विलय इन्हीं में से किसी एक डोमिनियन के साथ करना होगा। किस डोमिनियन के साथ वे विलय करेंगे, यह उनकी भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करेगी।

देशी रियासतों की प्रजा में राष्ट्रीय जागृति का विकास-

- ब्रिटिश दबावों तथा देशी नरेशों की शत्रुतापूर्ण कार्यवाही के बावजूद देशी रियासतों की प्रजा भी आधुनिक विचारधारा तथा राष्ट्रवाद की भावना से अप्रभावी नहीं रह सकी। इसके लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी थे –

1. असहयोग तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन ने देशी रियासतों के आंदोलन को सर्वाधिक प्रभावित किया था क्योंकि इन आंदोलनों के परिणामस्वरूप जहाँ एक तरफ अनेक रियासतों में राज्य जन कॉन्फ्रेंस का गठन हुआ, वहीं दूसरी तरफ कांग्रेस ने रियासतों के संबंध में अग्रगामी नीतियाँ अपनाना स्वीकार कर लिया।
2. 1935 के भारत शासन अधिनियम ने भी उन्हें आकर्षित किया क्योंकि उसमें देशी रियासतों को मिलाकर संघ बनाने की बात कही गई थी।
3. 1937 में प्रांतीय सरकारों के गठन ने भी देशी रियासतों की प्रजा की आकांक्षा को जगाया तथा अनेक राज्यों में आंदोलन शुरू हो गया।
4. 1940 के दशक में क्रिप्स मिशन, कैबिनेट मिशन, अंतरिम सरकार का गठन, संविधान सभा का गठन आदि ने देशी रियासतों की प्रजा को स्वतंत्रता की ओर आकर्षित किया।

देशी रियासतों के आंदोलन के प्रति कांग्रेस का रुखः-

आरंभ में कांग्रेस ने अपने आप को देशी रियासतों के आंदोलन से दूर रखा था, लेकिन पहली बार 1920 के नागपुर अधिवेशन में इसने यह घोषित किया कि देशी रियासतें भारत की अभिन्न अंग हैं। परन्तु तब इसने आंदोलन चलाने की बात नहीं की, इसने केवल यह कहा कि अगर देशी रियासतों के लोग अपनी पहल पर आंदोलन चलाना चाहें, तो हमारी सहानुभूति उनके साथ होगी। अतः अब विभिन्न देशी रियासतों में प्रजा मण्डल का गठन होने लगा और फिर 1927 ई. में अखिल भारतीय जन कॉन्फ्रेंस का गठन, बलवंत राय मेहता, मणिलाल कोठारी तथा जी. आर. अभ्यंकर के नेतृत्व में हुआ। फिर 1937 ई. में जन कॉन्फ्रेंस ने अनेक राज्यों में आंदोलन आरंभ किया।

फिर, 1939 के त्रिपुरी अधिवेशन में कांग्रेस ने पहली बार यह घोषित किया कि अब भविष्य में जो भी आंदोलन होगा, वह ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों, दोनों में साथ-साथ होगा।

आगे कैबिनेट मिशन योजना (1946 ई.) में भी रियासतों की जनता के बारे में कोई प्रावधान न होने पर अखिल भारतीय राज्य जन कॉन्फ्रेंस ने प्रजा के द्वारा निर्वाचित सदस्यों को ही संविधान सभा में भाग लेने का अधिकार संबंधी एक प्रस्ताव पारित किया। उसकी इस माँग का समर्थन कांग्रेस द्वारा भी किया गया। आगे राज्य जन कॉन्फ्रेंस ने भी कांग्रेस में विलय का फैसला किया और कांग्रेस ने उसको मान्यता प्रदान कर दी।

देशी रियासतों के विलय में बाधाएँ:-

1. कुछ देशी रियासतों के शासक ब्रिटिश सर्वोच्चता की समाप्ति के पश्चात् स्वतंत्र होने की प्रतीक्षा में थे, वे तात्कालिक राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर अपनी स्थिति मज़बूत करना चाहते थे।
2. स्वयं ब्रिटिश काउंसलर (अधिकारी) के द्वारा देशी शासकों की महत्त्वाकांक्षा को प्रोत्साहन दिया जा रहा था क्योंकि ब्रिटिश सरकार स्वतंत्रता के बाद भी भारतीय उपमहाद्वीप में अपना प्रभाव बनाए रखना चाहती थी।
3. मोहम्मद अली जिन्ना ने भी भारतीय शासकों की महत्त्वाकांक्षा को प्रोत्साहित किया। 18 जून, 1947 को दिये गए अपने एक वक्तव्य में जिन्ना ने देशी शासकों के स्वतंत्र रहने के अधिकार को स्वीकार किया था।

भारत के साथ देशी रियासतों के विलय को प्रेरित करने वाले कारक:-

1. **जन-आंदोलन का दबाव:-** भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने केवल ब्रिटिश भारत पर ही अपना प्रभाव नहीं डाला था, बल्कि देशी रियासतों की जनता को भी आंदोलित कर दिया था। अब स्वयं देशी रियासतों की जनता स्वतंत्र भारत की प्रजातांत्रिक प्रक्रिया में शामिल होने के लिए उत्साहित थी।
2. **भारतीय राज्यों के विलय के मुद्दे पर कांग्रेस का असमझौतावादी रुख:-** कांग्रेस ने भारतीय शासकों के स्वतंत्र होने के अधिकार को अस्वीकार कर दिया तथा देशी रियासतों को अपनी क्षेत्रीय स्थिति के अनुकूल भारत अथवा पाकिस्तान के साथ अपना विलय करने को कहा। जवाहर लाल नेहरू ने यह घोषित किया कि अगर देशी रियासतें संविधान सभा की कार्यवाही में हिस्सा नहीं लेंगी, तो उनके इस कदम को शत्रुतापूर्ण माना जायेगा।
3. **सरदार वल्लभभाई पटेल के द्वारा अपनायी गयी छड़ी और पुरस्कार की नीति :** देशी रियासतों के विलय में वल्लभभाई पटेल तथा उनके सचिव वी. पी. मेनन की अहम भूमिका रही। पटेल ने इन शासकों को आकर्षित करने के लिए एक बड़ी ही व्यावहारिक रणनीति अपनाई, जिसे छड़ी एवं पुरस्कार की नीति का नाम दिया जा सकता है।

■ **पुरस्कार की नीति** के तहत देशी रियासतों को समझा बुझाकर विलय के लिए राजी करने का कार्य किया गया। इस नीति के तहत उन्होंने निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई-

- **स्टैंड स्टिल एग्रीमेंट:** स्टैंड स्टिल एग्रीमेंट से तात्पर्य है जो संबंध पहले भारतीय राज्यों के ब्रिटिश क्राउन के साथ बने हुए थे, वही संबंध भारतीय राज्यों के नव-स्थापित डोमिनियन के साथ बने रहेंगे। पटेल ने इन शासकों से अपील की कि आपको अपने सीमित अधिकार ही त्यागने होंगे। ये अधिकार हैं- प्रतिरक्षा, विदेश और संचार, आपके बाकी अधिकार अक्षुण्ण रहेंगे। फिर ये वे अधिकार हैं जिनका उपयोग आपने कभी नहीं किया है। इससे पूर्व इन अधिकारों का उपयोग ब्रिटिश के द्वारा किया जाता रहा था।
- **इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन:** इसके तहत संबंधित राज्य के शासक के द्वारा भारत सरकार को अपना भू-भाग सुपुर्द किया जाना था तथा उस भू-भाग पर भारत सरकार की संपूर्ण सत्ता को स्वीकृति देनी थी। इन शासकों के द्वारा न केवल अपनी तरफ से, बल्कि अपने भावी उत्तराधिकारियों की तरफ से भी भारत सरकार को संबंधित क्षेत्र पर पूर्ण प्रभुसत्ता की गारंटी दी जानी थी। बदले में, भारत सरकार के द्वारा उन्हें एक खास रकम प्रिवी पर्स के रूप में दी जानी थी। उन्हें अपनी निजी संपत्ति (पैसा, रूपया, आभूषण आदि) तथा अपनी उपाधियों को बनाए रखने का भी अधिकार दिया गया। उन्हें अपने उत्तराधिकारी को तय करने की भी पूरी छूट थी।

■ **छड़ी अथवा दण्ड की नीति :** दूसरी तरफ वल्लभ भाई पटेल ने इन शासकों पर दबाव भी बनाये रखने का प्रयास किया अर्थात् उन्होंने यह चेतावनी भी दी कि अगर भारतीय स्वतंत्रता तक आपने अपने राज्यों का विलय नहीं किया, तो स्वयं आपको अपनी जनता के आंदोलन का सामना करना होगा तथा फिर भारत सरकार की दृष्टि भी आपके प्रति कठोर हो जायेगी।

■ **भारतीय रियासतों के एकीकरण की प्रक्रिया में मुख्य प्रशासनिक मुद्दे एवं सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएँ :-**

प्रशासनिक समस्याएँ :

1. विलय होने वाले राज्य में शासक की स्थिति क्या होगी?
2. संबंधित राज्य के सैनिकों का क्या होगा?
3. संविधान सभा में देशी रियासतों का प्रतिनिधित्व किस प्रकार होगा?
4. देशी रियासतों का भौगोलिक आकार पृथक्-पृथक् था तथा वे विकास के विभिन्न स्तर पर थीं। जहाँ इन देशी रियासतों में हैदराबाद जैसी विशाल रियासत थी, वहीं 70 रियासतों का क्षेत्रफल 1 वर्ग मील से अधिक नहीं था।
5. कुछ देशी रियासतों में पिछड़े क्षेत्र को आरक्षण मिलता था।

अत: मुद्दा यह था कि उसकी भारतीय यूनियन में स्थिति क्या होगी? उदाहरण के लिए, हैदराबाद में तेलंगाना क्षेत्र।

सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएँ :

- उस समय सम्पूर्ण भारत साम्प्रदायिक विभाजन से ग्रस्त रहा था, देशी रियासतें इसका अपवाद नहीं थीं। शासक भी साम्प्रदायिक आधार पर बंटे हुए थे। उदाहरण के लिए, भोपाल एवं हैदराबाद मुस्लिम समूह का प्रतिनिधित्व कर रहे थे और उनका झुकाव पाकिस्तान की ओर था, वहीं बीकानेर तथा पटियाला का झुकाव भारत की ओर था।
- देशी रियासतों की प्रजा भी विभाजित थी। कहीं शासक मुस्लिम था, तो बहुसंख्यक प्रजा हिन्दू, जैसे- जूनागढ़, हैदराबाद। कहीं शासक हिन्दू था, तो बहुसंख्यक प्रजा मुस्लिम, जैसे- कश्मीर।

अभ्यास प्रश्न:- भारतीय रियासतों के एकीकरण की प्रक्रियाओं में मुख्य प्रशासनिक मुद्दों एवं सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं का आकलन कीजिए (150 शब्द, UPSC-2021)

देशी रियासतों का एकीकरण

- अधिकांश देशी रियासतों ने 15 अगस्त, 1947 तक भारत के साथ अपना विलय स्वीकार कर लिया। आरंभ में हैदराबाद, जूनागढ़, त्रावणकोर, भोपाल और कश्मीर ने इस विलय का विरोध किया। किंतु स्वतंत्रता से पूर्व भोपाल और त्रावणकोर ने भी विलय स्वीकार कर लिया। अब केवल तीन रियासतें शेष रह गईं- कश्मीर, जूनागढ़ एवं हैदराबाद।

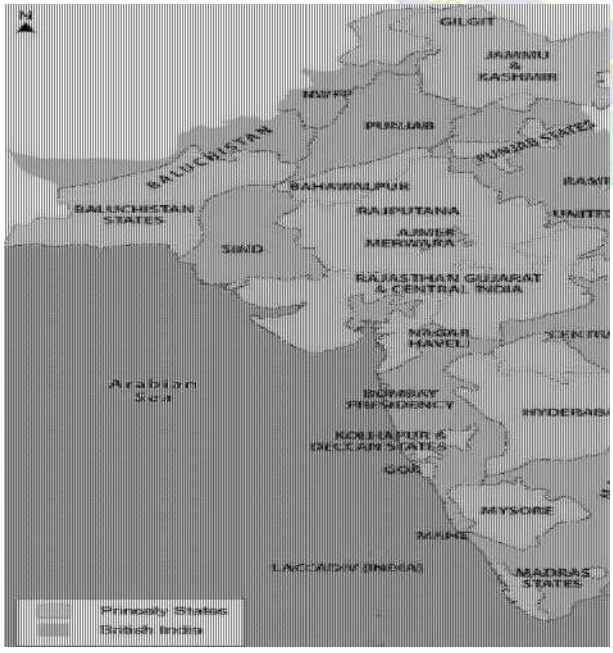

- **कश्मीर :-** आरंभ में कश्मीर के शासक हरिसिंह ने विलय के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था, किंतु जब 22 अक्टूबर, 1947 को पाकिस्तानी सेना के सहयोग से अफगान मुजाहिद्दीनों ने कश्मीर पर आक्रमण किया, तो 26 अक्टूबर, 1947 को राजा हरिसिंह ने विलय-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया।
- फिर कश्मीर मुद्दे पर भारत और पाकिस्तान के बीच एक युद्ध छिड़ गया, जिसमें भारत की सेना ने जल्द ही घाटी से कबीलाई आक्रमणकारियों को बाहर खदेड़कर कश्मीर के 2/3 भाग पर नियंत्रण कर लिया, लेकिन भारत इस मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले गया।
- कश्मीर समस्या के प्रति संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों, खासकर अमेरिका तथा ब्रिटेन, का रुख शत्रुतापूर्ण रहा। अत: उन्होंने भारत की दावेदारी को नज़रअंदाज़ कर कश्मीर समस्या को 'भारत-पाकिस्तान विवाद' का रूप दे दिया। विवश होकर भारत को 31 दिसंबर, 1948 को युद्ध विराम के प्रस्ताव को स्वीकारना पड़ा। अत: कश्मीर का 2/3 क्षेत्र भारत के कब्ज़े में तथा 1/3 क्षेत्र पाकिस्तान के कब्ज़े में रह गया।

- **जूनागढ़-** यहाँ का नवाब मुस्लिम तथा बहुसंख्यक आबादी हिंदू थी। नवाब जूनागढ़ को पाकिस्तान में विलय करना चाहता था, लेकिन यहाँ जन-आंदोलन शुरू होने के कारण वह पाकिस्तान भाग गया। तत्पश्चात् उसके प्रधानमंत्री शाहनवाज भुट्टो ने फरवरी, 1948 में एक जनमत संग्रह करवाया, जिसके आधार पर जूनागढ़ का विलय भारत के साथ हो गया।
- **हैदराबाद-** यहाँ के नवाब ने भारत सरकार के साथ एक वर्ष के लिये 'यथास्थिति समझौता' किया तथा इस काल में उसने प्रजातांत्रिक संस्थाओं का विकास करने का वादा किया। किंतु, दूसरी तरफ उसने अपने रज़ाकार सैनिकों के माध्यम से किसानों पर दमन चक्र जारी रखा। अंत में, 13 सितंबर, 1948 को भारत सरकार ने हैदराबाद के विरुद्ध पुलिस कार्रवाई का निर्णय लिया तथा 'ऑपरेशन पोलो' के तहत हैदराबाद का भारत में विलय कर लिया।
- **पांडिचेरी-** फ्राँस ने इसे भारत को शांतिपूर्वक 1954 में सौंप दिया।
- **गोवा-** गोवा पर पुर्तगीजों का कब्जा था तथा पुर्तगीज गोवा छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। चूँकि पुर्तगाल, अमेरिका तथा ब्रिटेन के साथ शीत युद्ध का सहयोगी रहा था, इसलिए उनकी ओर से भी उसे प्रोत्साहन दिया जा रहा था। अंत में, 1961 में भारत सरकार ने अपनी सेना भेज दी तथा गोवा का भारत में विलय कर लिया गया।

■ **वल्लभभाई पटेल की उपलब्धियों का मूल्यांकन :-**

• पटेल को 'बिस्मार्क ऑफ इण्डिया' कहा जाता है परन्तु अगर हम गौर से देखते हैं तो वल्लभभाई पटेल की उपलब्धियाँ बिस्मार्क से कहीं अधिक हैं। इसे निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं-

1. बिस्मार्क यूरोप में सबसे मजबूत एवं संगठित सेना का प्रतिनिधित्व कर रहा था, जबकि भारत की सेना असंगठित एवं विभाजित थी।
2. बिस्मार्क को यह कार्य पूरा करने में लगभग 15 वर्ष लगे, परन्तु वल्लभभाई पटेल ने इसे लगभग 15 महीनों में पूरा कर लिया।
3. सबसे बढ़कर, भारत की यह क्रांति एक रक्तहीन क्रांति के रूप में सिद्ध हुई, यह कार्य अहिंसक रूप में पूरा किया गया। सोवियत रूस के राष्ट्रपति ख्रुश्चेव ने भी आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा था कि आप भारतीय वास्तव में अनोखे हैं, आपने भारतीय शासकों को समाप्त किये बिना भारतीय रियासतों को समाप्त कर दिया।

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

एक प्रजातांत्रिक संविधान के माध्यम से एक सामंती एवं औपनिवेशिक समाज को आधुनिक राष्ट्र के रूप में संगठित करना

■ **पृष्ठभूमि :-**

- 15 अगस्त, 1947 को राजनीतिक आजादी प्राप्त हो गई थी, परंतु एक प्रजातांत्रिक संविधान के माध्यम से हमें आर्थिक और सामाजिक आजादी भी सुनिश्चित करनी थी। भारतीय संविधान उस आर्थिक एवं सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने का साधन था। इसलिए जहाँ अन्य देशों के द्वारा एक स्वतंत्रता दिवस मनाया जाता, वहीं भारत में दो स्वतंत्रता दिवस मनाए जाने की परंपरा है- 15 अगस्त, 1947 तथा 26 जनवरी, 1950।
- कैबिनेट मिशन योजना ने ही एक संविधान सभा का प्रावधान लाया था और 9 दिसंबर, 1946 को संविधान सभा की पहली बैठक आरंभ हो गई थी। परंतु विभाजन के कारण संपूर्ण प्रक्रिया रुक गई। लीग के सदस्य उससे बाहर हो गए तथा फिर संविधान सभा ने अपनी बैठक आरंभ की। 15 अगस्त की मध्य रात्रि में नेहरू के अभिभाषण के पश्चात् दूसरे दिन इसकी बैठक आरंभ हुई।
- अगर व्यावहारिक रूप में देखा जाए, तो भारत का संविधान संभवत: तृतीय विश्व का पहला प्रजातांत्रिक संविधान था। अत: भारत के संविधान निर्माताओं के समक्ष एक बड़ी चुनौती थी- एक प्रजातांत्रिक संविधान का गठन और इनके सामने प्रारूप पश्चिमी देशों के सविधानों का था।

1. **वैश्विक संविधानों का प्रभाव:-**

- विश्व का पहला संविधान ब्रिटिश संविधान था और ब्रिटेन का भारत से गहरा संबंध रहा था। इसलिए ब्रिटिश संसदीय परंपरा को अपनाया जाना बहुत ही स्वाभाविक था। किंतु संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह भारत का भी आकार लगभग महाद्वीपीय था, साथ ही इसका चरित्र भी विविधतामूलक था। इसलिए इसने अमेरिकी संविधान से भी बहुत कुछ लिया। यथा- स्वतंत्र न्यायपालिका, मौलिक अधिकार, निर्वाचित राष्ट्रपति का पद आदि। परंतु भारत के संविधान-निर्माता भारतीय संविधान को सबसे बेहतर बनाना चाहते थे और ब्रिटिश एवं अमेरिकी संविधान की कुछ मूलभूत खामियों को भी समाप्त करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अन्य संविधानों से भी कुछ-न-कुछ ग्रहण किया। यथा- आयरलैंड से नीति निर्देशक तत्व, जर्मनी के वाइमर गणतंत्र से आपातकाल का प्रावधान, सोवियत रूस के संविधान से मौलिक कर्त्तव्य आदि।

2. **राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव :-** स्वतंत्र भारत के संविधान को एक महत्वपूर्ण प्रेरणा राष्ट्रीय आंदोलन से मिली। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान कांग्रेस ने 'प्रतिनिधित्व के बिना कर नहीं' एवं 'स्वराज्य अथवा स्वशासन' जैसे नारे का उपयोग कर संविधानवाद को प्रोत्साहन दिया। फिर गांधी ने 'सत्याग्रह' एवं 'अहिंसा' की विधि अपनाकर संवैधानिकता के पक्ष को मजबूत किया। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में हिंसा की छिटपुट घटनाएं होती रही थीं, परंतु मुख्य धारा में अहिंसक आंदोलन ही प्रभावी रहा था। साथ ही, राष्ट्रीय आंदोलन के मध्य भी नेताओं एवं बुद्धिजीवियों के बीच वाद-विवाद के माध्यम से आपसी विवाद को सुलझाया जाता था। डॉ० अंबेडकर इसे संवैधानिक नैतिकता (Constitutional Morality) की संज्ञा देते हैं। इसके अतिरिक्त, कांग्रेस तथा विभिन्न दलों के द्वारा समय-समय पर संवैधानिक मांगें रखी जातीं। यथा- 1931 के कराची अधिवेशन में मौलिक अधिकार का प्रस्ताव। इससे भी संवैधानिकता का भाव मजबूत हुआ।

3. **ब्रिटिश सरकार के द्वारा समय-समय पर लाए गए संवैधानिक कानून, विशेषकर 1935 के भारत शासन अधिनियम का प्रभाव** :- 1892 के अधिनियम से लेकर 1935 के भारत सरकार अधिनियम तक औपनिवेशिक सरकार के द्वारा समय-समय पर अनेक संवैधानिक सुधार अधिनियम लाए गए थे। इसके साथ ही स्वयं भारत के राजनीतिक दलों के द्वारा नेहरू रिपोर्ट के रूप में अपना संविधान प्रस्तुत किया गया था। इन सबका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा। सबसे गहरा प्रभाव 1935 के भारत सरकार अधिनियम का देखा जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि अगर हमारे संविधान निर्माताओं के समक्ष 1935 का भारत सरकार अधिनियम नहीं होता, तो फिर लगभग 3 वर्षों में भारत के संविधान का निर्माण संभव नहीं होता।

4. **आर्थिक एवं सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने का लक्ष्य** :- हमने पश्चिमी संविधान की नकल पर व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्व देने का प्रयास किया, परंतु हम आर्थिक-सामाजिक पिछड़ेपन के शिकार थे। अत: इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें व्यक्ति की स्वतंत्रता के लक्ष्य को थोड़ा दरकिनार करना पड़ा। यही वजह है कि मौलिक अधिकार के समानांतर नीति निर्देशक तत्व का महत्व बढ़ता चला गया।

5. **भारत के विभाजन का प्रभाव** :- बहुत कम लोगों का ध्यान इस बात पर जाता है कि भारतीय संविधान को आकार देने में विभाजन, हिंदू-मुस्लिम दंगे, रक्तपात एवं हिंसा की बड़ी भूमिका रही थी। बताया जाता है कि विभाजन से पहले संविधान सभा ने राज्य को अधिक शक्ति प्रदान करने की बात की थी तथा निर्वाचित गवर्नर का प्रावधान लाया था। परंतु विभाजन ने सबसे अधिक संघीय ढाँचे को प्रभावित किया और राज्य की स्थिति कमजोर कर दी। इसके अतिरिक्त, आपातकाल का प्रावधान लाया गया और मौलिक अधिकार को भी सीमित कर दिया गया।

■ **भारतीय संविधान के विशिष्ट लक्षण** :-

1. हमारी संविधान सभा में लगभग 300 योग्य एवं प्रबुद्ध प्रतिनिधि एक साथ बैठे और उन्होंने इस संविधान पर अपनी छाप छोड़ी। शायद ही किसी दूसरी संविधान सभा में इतने योग्य एवं प्रबुद्ध प्रतिनिधि एक साथ बैठे हों।

2. हमारी संविधान सभा विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करती थी। इसमें दक्षिणपंथी, वामपंथी, धर्मगुरु, धर्मनिरपेक्ष, कुलीन एवं जनसामान्य सभी शामिल थे। इसलिए इसने अपेक्षाकृत एक वृहद् राष्ट्रीय दृष्टिकोण को व्यक्त किया।

3. भारतीय संविधान सभा ने खुली बहस को प्राथमिकता दी और सामान्य जनता की राय के लिए भी दरवाजा खोल दिया। किसी तृतीय विश्व के देशों में इतना तक कि अधिकांश पश्चिमी देशों में भी यह खुला वातावरण नहीं मिल सका था। इंडोनेशिया की सरकार ने एक अन्य संविधान के निर्माण के लिए इस तरह का वातावरण देने का प्रयास किया, परंतु वह विफल हो गया।

4. संविधान सभा में जिस बात पर सहमति नहीं हुई संविधान सभा ने उसे दबाने का प्रयास नहीं किया, बल्कि उसके निर्णय को भावी पीढ़ी पर छोड़ दिया। उदाहरण के लिए, नीति निर्देशक तत्व, यूनिफॉर्म सिविल कोड आदि।

5. **पश्चिमी संविधान का अंधानुकरण नहीं**- भारतीय संविधान पर एक आरोप यह है कि इसमें पश्चिमी मॉडल का अंधानुकरण किया गया है। किसी विद्वान ने तो यहाँ तक कहा है कि हम वीणा अथवा सितार की धुन सुनना चाहते थे, परंतु मिली अंग्रेजी बैंड की धुन।

परन्तु अगर हम सूक्ष्म परीक्षण करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि हमने पश्चिम का अंधानुकरण नहीं किया, बल्कि पश्चिम से ली गई प्रत्येक अवधारणा; जैसे- स्वतंत्रता, समानता एवं धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या भारतीय परिस्थितियों के अनूकुल की है।

6. **भारतीय संविधान तृतीय प्रजातांत्रिक क्रांति का माध्यम:**- सुनील खिलनानी नामक विद्वान ने इसे 'तृतीय प्रजातांत्रिक क्रांति' का नाम दिया। उन्होंने प्रथम प्रजातांत्रिक क्रांति अमेरिकी क्रांति को कहा है तथा उसे प्रजातंत्र के प्रसार का प्रथम चरण माना है। दूसरी प्रजातांत्रिक क्रांति फ्रांस की क्रांति को कहा है तथा उसे प्रजातंत्र के प्रसार का दूसरा चरण माना है। फिर भारत की प्रजातांत्रिक क्रांति को तीसरी क्रांति इसलिए कहा क्योंकि भारत में प्रजातांत्रिक संविधान के निर्माण के पश्चात् प्रजातंत्र का प्रसार एशियाई-अफ्रीकी देशों में भी हुआ।

वहीं दूसरी तरफ, योगेन्द्र यादव के अनुसार भारतीय संविधान के निर्माण से प्रजातंत्र की अवधारणा का प्रजातांत्रीकरण हुआ अर्थात् भारत की सफलता ने तृतीय विश्व के देशों को भी प्रजातंत्र की ओर आकर्षित किया। इससे पहले यह धारणा थी कि प्रजातंत्र शिक्षित एवं सम्पन्न देशों के लिए अर्थ रखता है, परन्तु भारत ने इस धारणा को अस्वीकार कर दिया।

■ **भारतीय संविधान की सीमाएँ** :-

1. कांग्रेस पार्टी के प्रतिनिधियों की संख्या देखते हुए इस पर उसका कुछ ज्यादा ही प्रभाव रहा (वर्तमान में यही कारक मोदी-शाह सरकार के असंतोष का कारण है)।

2. यह भी एक आश्चर्य का विषय है कि सार्वत्रिक वयस्क मताधिकार को सुनिश्चित करने वाली भारत की संविधान सभा स्वयं सीमित मताधिकार पर आधारित विधान मंडलों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में निर्वाचित हुई थी।

■ **संविधान का क्रियान्वयन तथा चुनौतियाँ :-**

- किसी भी संविधान की उत्कृष्टता का आधार केवल विधियों का संग्रह तैयार करना मात्र नहीं होता, बल्कि विधियों का व्यावहारिक क्रियान्वयन होता है। अत: जब भारत के संविधान को समकालीन राजनीति का सामना करना पड़ा, तब इसकी वास्तविक परीक्षा आरंभ हुई।
- **मौलिक अधिकार बनाम नीति निदेशक तत्व**- संविधान निर्माताओं ने भारत के उपलब्ध साधनों को देखते हुए प्राथमिकता मौलिक अधिकारों को दी थी। वहीं भारत की तात्कालिक जरूरत थी सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करना। लेकिन मौलिक अधिकार के समानांतर नीति निदेशक तत्व का महत्व बढ़ता चला गया। पहले सरकार के द्वारा ही नीति निदेशक तत्व के क्रियान्वयन के नाम पर मौलिक अधिकार के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप किया जाता रहा था। आरम्भ में, सुप्रीम कोर्ट के द्वारा इसका विरोध किया गया, फिर न्यायपालिका ने अपना रुख परिवर्तित कर लिया।
- **मंत्रिपरिषद् बनाम राष्ट्रपति** - हमारे संविधान निर्माताओं ने मंत्रिपरिषद् तथा राष्ट्रपति के संबंध को बहुत स्पष्ट नहीं किया था। 'अनुच्छेद-74' में बस इतना था कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह से काम करेगा, परंतु यह स्पष्ट नहीं था कि राष्ट्रपति उसे मानने के लिए बाध्य होगा अथवा नहीं। आगे भी इस पर अस्पष्टता बनी रही। आगे 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से श्रीमती इंदिरा गांधी यह प्रावधान जुड़वाने में कामयाब रहीं कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद् का परामर्श मानने के लिए बाध्य होगा।
- **विधानमण्डल बनाम न्यायपालिका**- यह बड़ा ही चुनौतीपूर्ण मुद्दा बनकर उभरा। जहाँ ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा बनाई गई विधि को न्यायपालिका में चुनौती नहीं दी जा सकती थी, वहीं भारत में संविधान के रक्षक के रूप में सुप्रीम कोर्ट विद्यमान था। इसलिए आगामी तीन दशकों तक संसद एवं न्यायपालिका के बीच खुली टकराहट हुई। टकराहट का एक मुद्दा था मौलिक अधिकार का मसला। पहले सुप्रीम कोर्ट का मानना था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं ला सकती (गोलकनाथ मुकद्दमा, 1967)। आगे केशवानन्द भारती मुकद्दमे में सुप्रीम कोर्ट ने संसद द्वारा मौलिक अधिकार में संशोधन लाने की शक्ति को स्वीकार कर लिया। एक तरफ जहाँ संसद, न्यायपालिका के न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति को काटना चाहती थी, वहीं सुप्रीम कोर्ट संसद की संवैधानिक संशोधन की शक्ति को सीमित करना चाहता था।

प्रश्न:- क्या भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने एक परिसंघीय संविधान निर्धारित कर दिया था। चर्चा कीजिए।

उत्तर:- ब्रिटिश पक्षधर विद्वान यह निर्धारित करने का प्रयास करते हैं कि 1935 के भारत शासन अधिनियम के रूप में ब्रिटिश ने भारत को एक ऐसा संविधान दिया था जो भारत में अधिकांश वर्गों को संतुष्ट कर सके। इसके माध्यम से ब्रिटिश भारत एवं देशी रियासत दोनों को एक-दूसरे से जोड़ने तथा संघ एवं राज्यों के बीच संबंधों को पुनर्निधारित करने का प्रयास किया गया था, परंतु राष्ट्रवादी जवाब यह है कि ब्रिटिश कंजरवेटिव पार्टी के दबाव में ब्रिटिश संसद ने भारत की संवैधानिक प्रगति में अवरोध डालने के लिए संघ का प्रावधान लाया था। अब अगर हम दोनों विचारों का परीक्षण करते हैं, तो दूसरा विचार अधिक विश्वसनीय लगता है।

1935 के अधिनियम के द्वारा स्थापित परिसंघीय व्यवस्था की निम्नलिखित सीमाएँ बनी रही थीं: -

1. केन्द्रीय विधानमंडल के दोनों सदनों में 30-40 प्रतिशत सीटें देशी रियासतों को दिया जाना, फिर इन पदों पर नियुक्ति निर्वाचन के माध्यम से नहीं, बल्कि मनोनयन के माध्यम से होनी थी।
2. इसका एक महत्त्वपूर्ण दोष था केन्द्रीय सरकार के स्तर पर उत्तरदायी शासन की अनुपस्थिति। इसने संपूर्ण परिसंघीय व्यवस्था को एक अप्रजातांत्रिक पद्धति के अंतर्गत ला दिया।
3. केन्द्रीय स्तर पर वायसराय को अत्यधिक विवेकाधीन शक्तियाँ प्राप्त थीं। वह किसी भी सरकार को अपने हाथों में ले सकता था। फिर प्राँतों में भी गवर्नर को अनेक विवेकाधीन शक्तियाँ प्राप्त थीं, साथ ही वह निर्वाचित सरकार को भी बर्खास्त कर सकता था।
4. अंत में, हम ऐसा कह सकते हैं कि यह परिसंघीय व्यवस्था भी महज कागज पर ही रह गई क्योंकि इसके लिए कम से कम 50% देशी राज्यों की स्वीकृति अनिवार्य थी, जो नहीं मिली।

इसलिए ऐसा कहा जा सकता है 1935 के भारत शासन अधिनियम के द्वारा एक छद्म व्यवस्था का प्रारूप प्रस्तुत किया गया था।

प्रश्न:- स्वतंत्र भारत के लिए संविधान का मसौदा केवल तीन साल में तैयार करने के ऐतिहासिक कार्य को पूर्ण करना संविधान सभा के लिए कठिन होता, यदि उनके पास भारत सरकार अधिनियम, 1935 से प्राप्त अनुभव

नहीं होता। चर्चा कीजिए।

(प्रश्न का अर्थ-अन्वेषण:- *यह प्रश्न स्तरीय है। अगर हम 1935 के संविधान तथा भारत शासन अधिनियम के बीच संबंधों की व्याख्या करते हैं तो इसके दो पहलू सामने आते हैं। प्रथम, 1935 के भारत शासन अधिनियम से हमारे संविधान ने बहुत कुछ ग्रहण किया है परंतु दूसरे, 1935 के भारत शासन अधिनियम का उद्देश्य (एक का साम्राज्यवादी उद्देश्य था तो दूसरे का उद्देश्य था राष्ट्र निर्माण) हमारे संविधान के उद्देश्य से पृथक था। इसलिए हमारे संविधान के अनेक उपबंधों की 1935 के भारत शासन अधिनियम से पृथकता बनी रही तथा जो उपबंध भारत शासन से लिए भी गए हैं उनमें भारत की राष्ट्रवादी जरूरत के अनुकूल बहुत हद तक परिमार्जन एवं परिशोधन लाया गया है। किंतु जैसाकि इस प्रश्न की मांग है प्रश्न के साथ सहमति जताना ही अपेक्षाकृत आसान होगा क्योंकि अन्य देशों के संवैधानिक अनुभव को देखते हुए भारत शासन अधिनियम, 1935 के महत्व को नकारना कठिन है। इस प्रश्न की प्रेरणा शेखर बंधोपाध्याय की बहुचर्चित पुस्तक 'प्लासी से विभाजन तक' से मिली है। बंधोपाध्याय ने 2015 में अपनी पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण में 'After independence and partition' नाम से एक नया अध्याय जोड़ा है।)*

मॉडल उत्तर:- भारतीय संविधान, संविधान-निर्माण की दिशा में एक बड़ा प्रयोग था। यह तृतीय विश्व का प्रथम एवं सफल संविधान है। यह सही है कि भारतीय संविधान सभा में विशेषज्ञों का एक बड़ा समूह कार्यरत था तथा भारतीय संविधान निर्माताओं ने विश्व भर के संविधानों से प्रेरणा लेकर एक चुस्त एवं सटीक संविधान निर्मित करने का प्रयास किया। फिर, यह भी सही है कि हमारे संविधान-निर्माताओं ने 1935 के संविधान से सभी प्रावधान ज्यों-के-त्यों नहीं लिए क्योंकि 1935 का संविधान ब्रिटेन की साम्राज्यवादी जरूरत के अनुकूल निर्मित हुआ था। स्वाभाविक रूप में भारत की राष्ट्रवादी जरूरत के अनुकूल हमारे संविधान निर्माताओं ने उन प्रावधानों में फेरबदल किया। फिर भी, 1935 के भारत शासन अधिनियम ने स्वतंत्र भारत के संविधान के आरम्भिक खाके के रूप में कार्य किया तथा हमारे संविधान-निर्माताओं के काम को अपेक्षाकृत आसान बना दिया।

कहा जाता है कि स्वतंत्र भारत के संविधान में लगभग 250 वाक्यांश (Clauses) सीधे तौर पर भारत शासन अधिनियम से लिए गए। उसी प्रकार, प्रान्तीय स्वायत्तता का प्रथम प्रयोग 1935 के भारत शासन अधिनियम में ही हुआ था। इसने संघीय व्यवस्था की भी रूपरेखा प्रस्तुत की, यद्यपि इसका क्रियान्वयन नहीं हो सका। उसी प्रकार, वर्तमान संविधान में अनुच्छेद 356 (प्रांत में राष्ट्रपति शासन) का प्रावधान 1935 के अधिनियम की 93वीं धारा से प्रेरित है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान सर्वोच्च न्यायालय की आधारभूत संरचना भी कहीं-न-कहीं 1935 के अधिनियम में उल्लिखित संघीय न्यायालय से प्रभावित रही है। साथ ही, संविधान सभा में अनेक ऐसे लोग बैठे हुए थे जिन्हें 1935 के संविधान के अंतर्गत कार्य करने का अनुभव था। अत: इस अनुभव का लाभ भी वर्तमान संविधान को मिला होगा।

अंत में, अगर हम अपने पड़ोसी राष्ट्रों के संवैधानिक अनुभव को साझा करते हैं तो बात और भी स्पष्ट हो जाती है। नेपाल सात वर्षों के अथक प्रयास के बावजूद भी एक बहुमान्य संविधान निर्मित नहीं कर सका, जबकि श्रीलंका चौथी बार संविधान निर्माण की दिशा में प्रयोग कर रहा है। संभवत: अगर उन देशों के समक्ष भी कोई पूर्व संविधान का खाका होता तो शायद स्थिति अलग हो सकती थी। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम यह समझ सकते हैं कि किस प्रकार 1935 के भारत शासन अधिनियम ने स्वतंत्र भारत में संविधान निर्माण कार्यक्रम में अपना योगदान दिया।

भारत के विशाल भौगोलिक आकार एवं सांस्कृतिक विविधता के बावजूद एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण जो विविधता में एकता का उदाहरण बना

- राष्ट्र निर्माण का आरंभिक मॉडल पश्चिमी यूरोप में तैयार हुआ था, परन्तु पश्चिमी यूरोप के देशों का आकार अपेक्षाकृत छोटा था और सांस्कृतिक विविधताएँ भी कम थीं, वहीं भारत का विशालकाय भौगोलिक आकार था और सांस्कृतिक विविधताएँ ज्यादा थीं। इसलिए जॉन स्ट्रैची से लेकर जॉन रूडयार्ड किपलिंग तक विभिन्न ब्रिटिश विद्वानों ने भारत के राष्ट्र बनने की क्षमता के विषय में अविश्वास प्रकट किया था। इसलिए भारत ने राष्ट्र निर्माण का अपना एक वैकल्पिक मॉडल विकसित किया।

■ **राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा का मुद्दा :**

- राजभाषा से तात्पर्य है सरकार की भाषा, जिसे काम-काज की भाषा के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा राष्ट्रभाषा का अर्थ है जिसे राष्ट्र की बड़ी जनसंख्या प्रयोग करती है। स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान सभा ने हिन्दी को राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया था, परन्तु गैर-हिन्दी प्रदेश के लोगों के विरोध को देखते हुए संविधान सभा ने समझौतावादी रूख अपनाते हुए सर्वप्रथम 1950 ई. में हिन्दी के साथ 15 वर्षों के लिए अंग्रेजी को सह-राजभाषा और फिर आगे 1963 ई. में अनिश्चित काल के लिए अंग्रेजी को सह-राजभाषा के रूप में स्थापित कर दिया। उसी प्रकार, संविधान की 8वीं अनुसूची में आरंभ में 14 भाषाओं को स्थान दिया गया था जो वर्तमान में बढ़कर 22 हो गई हैं। इस प्रकार, व्यवहार में भारत 22 भाषाओं का राष्ट्र बना।

■ **भाषायी आधार पर प्रांतों का गठन:**

- विभाजन से उत्पन्न भय के कारण कांग्रेस की सरकार ने अपने पुराने वायदे से पीछे हटते हुए भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन की मांग को अस्वीकार कर दिया। इसी क्रम में धर समिति और जे.वी.पी. समिति दोनों का गठन हुआ था तथा दोनों ने इसे अस्वीकृति प्रदान की थी। परंतु आंध्र प्रदेश में जन आंदोलन की स्थिति को देखते हुए 1953 में सरकार ने आंध्र प्रदेश को भाषायी आधार पर गठित पहला प्रांत बनाया तथा 1956 में प्रांतीय पुनर्गठन आयोग की अनुशंसा पर 14 प्रांत तथा 6 केंद्रशासित प्रदेशों का गठन किया गया। आगे 1960 में बम्बई को भी भाषायी आधार पर महाराष्ट्र और गुजरात में विभाजित किया गया। यह प्रक्रिया 1966 में पूरी हुई, जब पंजाबी भाषी पंजाब और हिंदी भाषी हरियाणा को एक-दूसरे से पृथक किया गया।

■ **यूनिफॉर्म सिविल कोड के लक्ष्य को टालना :**

- भारत के विविधतामूलक स्वरूप को देखते हुए यूनिफॉर्म सिविल कोड को स्थापित करने का दायित्व भावी पीढ़ी के ऊपर डाल दिया गया।

कमजोर वर्ग- अल्पसंख्यक समुदाय, महिलाएँ, दलित एवं पिछड़ी जातियों के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना

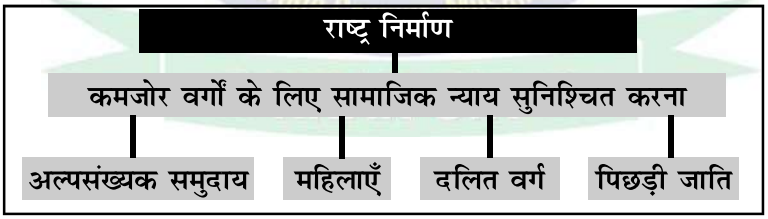

- हमारी संविधान सभा के समक्ष एक बड़ा दायित्व था सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना। इस क्रम में अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति, पिछड़ी जातियां एवं महिलाओं को सुरक्षा प्रदान की जानी थी। फिर अंत में, अल्पसंख्यक समूह की सुरक्षा की भी बात की गई।

■ **धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यकों को संरक्षण:-**

- धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों को सुरक्षा देने के लिए मौलिक अधिकार में प्रावधान लाया गया। मौलिक अधिकार में अनुच्छेद 25 से 28 के बीच धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए संरक्षण की व्यवस्था है, वहीं अनुच्छेद 29 और 30 में भाषायी अल्पसंख्यकों को सुरक्षा दी गई है। एक राष्ट्र के रूप में यह भारत की महान उपलब्धि रही।

■ **महिलाओं को सुरक्षा:-**

- स्वतंत्रता के पश्चात् महिला उत्थान कार्यक्रम स्वतंत्र भारत सरकार की एक प्राथमिकता थी। इस कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण पहलू था-विवाह, तलाक, उत्तराधिकार से संबंधित नियमों में स्पष्टता। महिलाओं की स्थिति को ऊँचा उठाने के लिये 1951 ई. में 'हिंदू कोड बिल' का प्रस्ताव लाया गया, परन्तु समाज के अनेक हिंदू सांप्रदायिक संगठनों द्वारा भारी विरोध के कारण नेहरू ने इस बिल को तात्कालिक

रूप से लागू करने पर रोक लगा दी तथा बाद में सरकार ने चार अलग-अलग कानूनों, जैसे- हिंदू विवाह अधि नियम, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, हिंदू नाबालिग एवं अभिभावक अधिनियम और गोद लेने तथा खर्चा देने संबंध ी अधिनियम पारित किया।

■ **दलित वर्ग/अनुसूचित जाति :-**

- दलित वर्ग को अनुसूचित जाति का दर्जा देकर संविधान में विशेष आरक्षण दिया गया। उनके विकास के लिए केन्द्रीय विधानमंडल एवं प्रांतीय विधान मंडलों में सीटों को आरक्षित किया गया, फिर सरकारी सेवा में भी उनके लिए सीटें आरक्षित की गईं। आरंभ में ये आरक्षण 10 वर्षों के लिए किए गए थे, किन्तु आगे इन्हें अनिश्चित काल के लिए कर दिया गया।

■ **अनुसूचित जनजाति :-**

- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती थी जनजातियों के विकास के लिए काम करना। अत: संविधान के अनुच्छेद-46 में जनजातीय लोगों के आर्थिक-सामाजिक विकास के प्रति प्रतिबद्धता दर्शायी गयी तथा उनके लिए संविधान में आरक्षण की व्यवस्था की गयी। फिर, जनजातीय विकास के लिए राष्ट्रपति को विशेष शक्तियाँ दी गईं तथा जनजातीय जनसंख्या की बहुलता वाले राज्य में राज्यपाल को भी विशेष अधिकार दिया गया।

■ **पिछड़ी जाति :-**

- मौलिक संविधान में पिछड़ी जातियों के लिए कोई प्रावधान नहीं लाया गया था, बल्कि जाति पहचान को अस्वीकार करने का प्रयास किया गया था। फिर, अन्य पिछड़ी जातियों के मुद्दे पर विचार करने के लिए 1953 में गठित काका कालेलकर समिति द्वारा इन जातियों को सरकारी सेवा में आरक्षण की अनुशंसा की गई, परंतु इसका क्रियान्वयन नहीं हुआ। फिर, अंत में 1990 में मंडल आयोग की रिपोर्ट के आधार पर अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान लाया गया।

प्रश्न:- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने विशाल भौगोलिक आकार एवं सांस्कृतिक विविधता को देखते हुए यूरोपीय मॉडल से पृथक् राष्ट्र निर्माण का मॉडल कैसे अपनाया? स्पष्ट कीजिये।

*(**प्रश्न विश्लेषण:** यह प्रश्न अपने स्वरूप में Hypothetical है। Key Words हैं- 'स्वतंत्रता', 'पश्चात्', 'विशाल भौगोलिक', 'सांस्कृतिक विविधता', 'यूरोपीय मॉडल', 'पृथक्', 'राष्ट्र', 'निर्माण', 'स्पष्ट कीजिये'।)*

उत्तर: राष्ट्र निर्माण का आरंभिक मॉडल पश्चिमी यूरोप में तैयार हुआ था, परंतु पश्चिमी यूरोप के राष्ट्र का भौगोलिक आकार छोटा था और उसमें सांस्कृतिक विविधता बहुत कम थी। परंतु, भारत एक महाद्वीपीय आकार वाला देश था। सबसे बढ़कर यहाँ सांस्कृतिक विविधता थी, इसलिये इसके राष्ट्र बनने की संभावना पर हमेशा प्रश्न लगाया जाता था। परंतु, भारत ने इस चुनौती को स्वीकार किया तथा स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्र निर्माण का एक पृथक् मॉडल विकसित किया, जो पश्चिमी मॉडल से अलग था। इसके तहत निम्नलिखित कदम उठाए गए-

- **विषम संघवाद को अपनाना:** भारत में क्षेत्रीय दबाव को देखते हुए अमेरिकी संघीय मॉडल से पृथक् हटकर कनाडाई विषमांगी संघ के मॉडल को अपनाया गया, अर्थात् अमेरिकी मॉडल में सभी राज्यों की समानता के सिद्धांत को स्वीकार किया गया, किंतु भारत में कुछ राज्यों की विशिष्ट स्थिति को भी स्वीकार किया गया। इसके उदाहरण अनुच्छेद 370 (जो अब रद्द हो चुका है।) तथा अनुच्छेद 371 हैं।

- **राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के मुद्दे पर व्यावहारिक दृष्टिकोण:** जहाँ पश्चिमी यूरोप के देशों ने 'एक भाषा, एक राष्ट्र' का नारा दिया तथा फ्रेंच भाषा के आधार पर फ्राँस तथा जर्मन भाषा के आधार पर जर्मन राष्ट्र का निर्माण हुआ, वहीं भारत ने हिन्दी को राजभाषा बनाते हुए अंग्रेज़ी को भी सह-राजभाषा के रूप में स्वीकृति दे दी। इसके अतिरिक्त संविधान की 8वीं अनुसूची में 14 भाषाओं को जगह दी गई थी। इस प्रकार व्यावहारिक रूप में भारत 14 भाषाओं का राज्य बना। वर्तमान में यह 22 हो गई हैं।

- **यूनिफॉर्म सिविल कोड के मुद्दे को टालना:** हमारे संविधान निर्माताओं में अनेक का झुकाव यूनिफॉर्म सिविल कोर्ट पर रहा, परंतु सांप्रदायिक विविधता को देखते हुए उसे भावी पीढ़ी के लिये टाल दिया गया।

- **भाषायी आधार पर प्रांतों का गठन:** विभाजन से भयभीत होकर भारत सरकार ने भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन की मांग को ठुकरा दिया था, परंतु राज्यों के दबाव को देखते हुए पहली बार 1953 में आंध्र प्रदेश का भाषायी आधार पर गठन किया गया तथा 1956 में 14 राज्य तथा केंद्रशासित प्रदेश का गठन किया गया।

- **धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यकों को सुरक्षा:** धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों को सुरक्षा देते हुए मौलिक अधिकार में अनुच्छेद 25 से 30 के बीच उन्हें संरक्षण प्रदान किया गया।

- **धर्मनिरपेक्षता:** भारत की सांस्कृतिक विविधता को देखते हुए राष्ट्र निर्माण के एक प्रमुख स्रोत के रूप में धर्मनिरपेक्षता के विचार को अपनाया गया, फिर आगे 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में 'पंथनिरपेक्षता' शब्द को विशेष रूप में जोड़ा गया।

सामान्यत: ऐसा माना जाता है कि स्वतंत्रता आंदोलन के मध्य भारत ने अहिंसा व सत्याग्रह के रूप में राष्ट्रीय पद्धति

विकसित की, परंतु सच्चाई यह है कि भारत ने दुनिया को केवल राष्ट्रीय प्रतिरोध की नई तकनीक ही नहीं दी, बल्कि राष्ट्र निर्माण का नया मॉडल भी दिया क्योंकि अधिकांश नव स्वतंत्र उपनिवेश अपने स्वरूप में बहुभाषा-भाषी, बहुनस्लीय तथा बहुसांप्रदायिक थे। उनके लिये राष्ट्र निर्माण का पश्चिमी मॉडल उतना उपयोगी नहीं था, जितना कि भारतीय मॉडल।

प्रश्नः क्या भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन ने भारत की राष्ट्रीय एकता को मजबूत किया? (UPSC-2016)

उत्तरः- वस्तुतः एक भाषा-भाषी क्षेत्र होने के बावजूद तेलंगाना का तटीय आंध्र प्रदेश से पृथक् होने की घटना ने भाषायी प्रांतों की उपयोगिता पर सवाल खड़ा कर दिया तथा स्वाभाविक रूप में यह वैचारिक मंथन आंरभ हो गया कि क्या भाषायी प्रांतों का गठन एक बुद्धिमत्तापूर्ण कदम था?

परंतु तथ्यों पर समग्रता से विचार किये जाने की जरूरत है। वस्तुतः स्वतंत्रता के पश्चात् भारत एक ऐसे राष्ट्र के रूप में गठित हो रहा था, जिसका महाद्वीपीय आकार था तथा जहाँ व्यापक सांस्कृतिक विविधता थी। फिर विभाजन ने संघीय व्यवस्था को बहुत प्रभावित किया था तथा राज्यों के समानांतर केंद्र को अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया गया था। ऐसी स्थिति में प्रांतों के बीच अपनी भाषायी सांस्कृतिक पहचान को लेकर आशंका उत्पन्न हुई। अब तक वह विभिन्न समूह के लोग ब्रिटिश प्रेसिडेंसी शासन के अंतर्गत दबे पड़े थे। अतः उनके लिये स्वतंत्रता का अर्थ भाषायी-सांस्कृतिक पहचान की स्वीकृति भी थी। ऐसी स्थिति में अगर केंद्र सरकार उस मांग को ठुकरा देती, तो फिर इस कारण पारस्परिक अविश्वास को बल मिलता तथा यह आपसी तनाव का रूप ले सकता था।

ऐसे उदाहरण हम पाकिस्तान एवं श्रीलंका के संदर्भ में पाते हैं, जब मुहम्मद अली जिन्ना ने पूर्वी पाकिस्तान के लोगों को यह संदेश दिया कि आप जितनी शीघ्रता से बंगाली को भूलकर उर्दू को अपना लें उतना अच्छा है, परंतु इसका परिणाम हुआ 1971 में स्वतंत्र बांग्लादेश का निर्माण। 1956 में जब भारत में भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन को स्वीकृति मिली थी, उस समय श्रीलंका तमिल लोगों पर बलपूर्वक सिंहली भाषा थोपने का प्रयास कर रहा था। अंततः श्रीलंका गृहयुद्ध का शिकार हो गया।

वहीं भारत सरकार ने भाषायी आधार पर प्रांतों का गठन कर व्यावहारिक बुद्धि का परिचय दिया। इसके परिणामस्वरूप केंद्र एवं राज्य के बीच पारस्परिक विश्वास को बल मिला। जैसा कि आशंका थी कि इससे मिट्टी के लाल (Son of the Soil) जैसी भावना को बल मिलेगा, वह निर्मूल सिद्ध हो गयी। इसके परिणामस्वरूप बहुरंगी क्षेत्रीय संस्कृतियाँ राष्ट्रीय संस्कृति में घुल-मिल गईं।

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

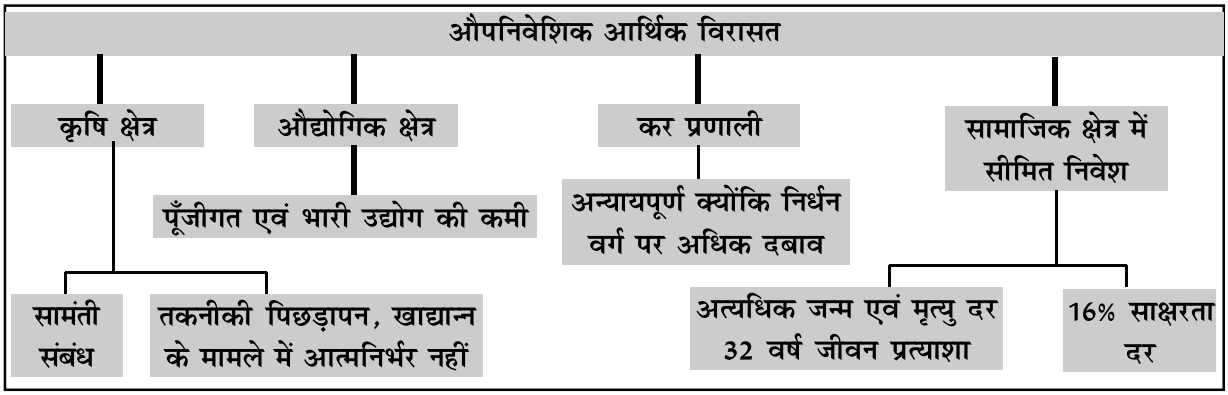

औपनिवेशिक आर्थिक विरासत

- औपनिवेशिक आर्थिक विरासत के रूप में भारत को गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, खाद्यान्न संकट, आर्थिक व तकनीकी पिछड़ापन मिला। इतना ही नहीं, भारत के आर्थिक विकास में औद्योगिक व तकनीकी पिछड़ेपन के अतिरिक्त पूँजी का अभाव एवं उद्यम की कमी भी एक महत्वपूर्ण समस्या थी।
- **कृषि क्षेत्र**– कृषि योग्य कुल 800 मिलियन हेक्टेयर भूमि में से मात्र 300 मिलियन हेक्टेयर में ही खेती होती थी, उसमें भी केवल 17 प्रतिशत भूमि ही सिंचित थी। फिर, कृषि के क्षेत्र में सामंती संबंध कायम थे तथा भूमि का वितरण असमान था। कृषि क्षेत्र तकनीकी रूप से पिछड़ा हुआ था। इनके कारण भारत खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर नहीं था।
- **औद्योगिक क्षेत्र**– औपनिवेशक शासन के अंतर्गत भारत में औद्योगीकरण को हतोत्साहित किया गया था। इस कारण भारत में पूँजीगत एवं भारी उद्योगों का अभाव तथा प्रशिक्षित मानव शक्ति की कमी थी।
- **कर प्रणाली**– कर प्रणाली भी अन्यायपूर्ण थी। समाज के धनी वर्ग को सीमित मात्रा में कर देना होता, जबकि निर्धन वर्ग पर कर का अधिभार अधिक था। उदाहरण के लिए, भू-राजस्व एवं नमक कर का अधिभार सबसे अधिक था।
- **सामाजिक क्षेत्र में सीमित निवेश**– शिक्षा एवं स्वास्थ्य का क्षेत्र अत्यंत पिछड़ा था। स्वतंत्रता के समय भारत की साक्षरता दर मात्र 16 प्रतिशत थी, जबकि जीवन प्रत्याशा मात्र 32 वर्ष थी।

नेहरूवादी विकास मॉडल को प्रेरित करने वाले कारक

- **सोवियत रूस का समाजवादी मॉडल** – यह मॉडल सर्वप्रथम सोवियत रूस में तैयार हुआ था तथा आगे चीन ने भी इस मॉडल को अपनाया। इस मॉडल के तहत अर्थव्यवस्था पर राज्य नियंत्रण की बात की जा रही थी। इसके तहत भूमि पर निजी स्वामित्व स्थापित कर भूमि के सामूहिकीकरण (Collectivisation of Land) पर बल दिया गया, अर्थात् भूमि पर से निजी स्वामित्व को समाप्त कर भूमि को सामूहिक नियंत्रण में रख दिया गया। इसका सीधा लाभ सोवियत रूस को मिला।
- **आर्थिक मंदी के पश्चात् केनेसियन अर्थशास्त्र पर आधारित पूँजीवादी मॉडल**– 1929-30 की विश्व आर्थिक मंदी ने मुक्त अर्थव्यवस्था (Lesseiz faire) पर आधारित पूँजीवाद के युग को समाप्त कर दिया था। फिर अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स ने अर्थव्यवस्था के संचालन में राज्य को बड़ी भूमिका दे दी थी। राज्य का

काम मांग प्रबंधन करना था तथा अर्थव्यवस्था को मंदी एवं मुद्रास्फीति के चक्र से बचाना था।

- **बम्बई प्लान (1944-1945):-** बंबई प्लान के माध्यम से भारत के 8 प्रमुख उद्योगपतियों ने भी यह संदेश दिया था कि अर्थव्यवस्था में राज्य की सक्रिय भूमिका होनी चाहिए तथा राज्य को निवेश के लिए आगे आना चाहिए, जिससे प्राथमिक शिक्षा, वयस्क शिक्षा एवं स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में विकास हो सके।
- **सोवियत रूस एवं जापान की औद्योगिक सफलता-** भारत के विकास के लिए व्यापक औद्योगीकरण को आवश्यक माना गया। स्वतंत्र भारत के समक्ष दो देशों के उदाहरण थे-प्रथम जापान, दूसरा, सोवियत रूस। जापान एक एशियाई देश होते हुए भी औद्योगीकरण के बल पर काफी आगे बढ़ गया था, जबकि सोवियत रूस भी सफलतापूर्वक नाजी आक्रमण का सामना कर सका था। जवाहरलाल नेहरू व्यक्तिगत तौर पर सोवियत रूस एवं जापान के औद्योगीकरण से बहुत प्रभावित थे।
- **नेहरू का समाजवाद-** स्वतंत्र भारत की सरकार औद्योगीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना तो चाहती थी, परंतु वह आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ सामाजिक न्याय को भी सुनिश्चित करना चाहती थी। इसलिए वह औद्योगीकरण को पूरी तरह पूँजीवादी संरक्षण में लाने के पक्ष में नहीं थी, बल्कि वह मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल को अपनाना चाहती थी, जिसमें निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों के लिए जगह हो। इसलिए औद्योगीकरण में राज्य को भी भूमिका दी गई।
- **आर्थर लेविस का आर्थिक मॉडल-** नेहरूवादी आर्थिक मॉडल कहीं-न-कहीं अर्थशास्त्री लेविस के मॉडल पर आधारित था। इस मॉडल के अनुसार एक अविकसित अर्थव्यवस्था में एक कृषि अर्थव्यवस्था का क्षेत्र होता है जहाँ अतिरिक्त श्रम (Surplus Labour) उपलब्ध होता है। अगर उस श्रम को दूसरे क्षेत्रक में लगा दिया जाए तो उससे कृषि उत्पादन कम नहीं होगा। वहीं औद्योगिक क्षेत्र में उन श्रमिकों की उत्पादकता काफी बढ़ जाएगी। इससे सभी क्षेत्रकों का परस्पर विकास होगा।

नेहरूवादी आर्थिक मॉडल का लक्ष्य तीव्र औद्योगीकरण (पंचवर्षीय योजना)

- **कृषि विकास :-** औद्योगीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक मजबूत कृषि आधार का होना आवश्यक था। कृषि सुधार के क्रम में दो प्रकार के कदम उठाना आवश्यक था- प्रथम, **संस्थागत सुधार तथा दूसरा, तकनीकी सुधार।**

संस्थागत सुधार:

1. **जमींदारी उन्मूलन :** 1949 में गोविन्द वल्लभ पंत समिति की अनुशंसा पर राज्य सरकारों को जमींदारी उन्मूलन के लिए निर्देश दिया गया, परंतु 1951 में संविधान के प्रथम संशोधन के बाद ही वास्तविक रूप में जमींदारी उन्मूलन संभव हो सका। फिर इसकी सबसे बड़ी सीमा यह रही कि जमींदारी उन्मूलन के बाद भी भूमि के एक बड़े भाग पर जमींदारों का नियंत्रण बना रहा।
2. **रैयतवाड़ी सुधार कानून :** इस कानून के दो प्रमुख लक्ष्य थे। प्रथम, रैय्यतों को भूमि पर नियंत्रण दिया जाना। द्वितीय, भू-राजस्व की राशि कुल उत्पादन के 1/4 से 1/6 करना, किंतु इस क्षेत्र में भी सीमित सफलता ही मिली।
3. **भूमि हदबंदी :** 1959 में कांग्रेस ने अपने नागपुर अधिवेशन में राज्य सरकारों को भूमि हदबंदी लागू करने

की अनुशंसा की, परंतु हदबंदी की निम्नलिखित सीमाएँ थीं-

- हदबंदी की सीमा बहुत अधिक निर्धारित की गई।
- बागवानी खेती को उससे बाहर रखा गया।
- परिवार के बदले निजी व्यक्ति पर सीमा निर्धारित की गई।
- फिर हदबंदी कानून के क्रियान्वयन में विलंब के कारण भूमि को संबंधियों के नाम पर हस्तांतरित कर दिया गया।

4. **भूमि चकबंदी :** ब्रिटिश शासन का एक दुष्प्रभाव था - भूमि का विखंडन। इसके कारण उत्पादन में ह्रास हुआ था। अत: इस दोष को दूर करने के लिये भूमि चकबंदी आरंभ की गई, किंतु चकबंदी का यह कार्यक्रम महज पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सफल हुआ, अन्य क्षेत्रों में नहीं।

सीमा :-भूमि सुधार के मोर्चे पर सरकार को अपेक्षित सफलता नहीं मिली। इस कारण औद्योगीकरण का प्रयास भी हतोत्साहित हुआ।

भूदान आंदोलन (1951):-

- एक महान गाँधीवादी नेता विनोबा भावे ने भूमि के पुनर्वितरण का बड़ा ही शांतिपूर्ण तरीका अपनाने का प्रयास किया। इसे 'भूदान आंदोलन' कहा जाता है। भूदान आंदोलन की यह घोषणा थी कि सभी भूमि गोपाल की है। अत: भूमिधारी व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी भूमि का छठा भाग निर्धन हेतु दान में दे। विनोबा ने यह आंदोलन आंध्र प्रदेश के पोचमपल्ली नामक स्थल पर आरंभ किया। यह आंदोलन उड़ीसा में सबसे अधिक सफल रहा तथा इसके तहत लगभग 4 लाख एकड़ भूमि अर्जित की गई।
- **उपलब्धि**- यह वर्ग-समन्वय के माध्यम से आर्थिक पुनर्वितरण का लक्ष्य प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण तरीका हो सकता था और अगर यह सफल हो जाता, तो शांतिपूर्ण आर्थिक रूपांतरण का एक मॉडल बन जाता।
- **सीमाएँ**-

1. भूदान में दी गई अधिकांश भूमि या तो खेती लायक नहीं थी अथवा विवादास्पद थी।
2. इसका एक महत्वपूर्ण उद्देश्य तेलंगाना में साम्यवादी आंदोलन को प्रतिसंतुलित करना था।
3. इसका एक उद्देश्य यह भी हो सकता था कि ग्रामीण मजदूरों को थोड़ी-सी भूमि देकर उसे गाँव में रोके रखना, ताकि वे जमींदारों के श्रमिक के रूप में काम कर सकें।

तकनीकी सुधार:-

- भूमि के क्षेत्र में संस्थागत सुधार के बाद तकनीकी सुधार को प्राथमिकता दी गई और इसी का परिणाम था हरित क्रांति। भारत-पाक युद्ध के समय अमेरिकी रुख तथा अमेरिका के द्वारा पीएल-480 के तहत आर्थिक सहायता रोके जाने की प्रतिक्रिया में भारत ने खाद्य सुरक्षा को अपनी पहली प्राथमिकता दी तथा इसी क्रम में 'जय जवान, जय किसान' का नारा आया। लालबहादुर शास्त्री की सरकार ने हरित क्रांति की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि निर्मित की, परंतु वास्तविक रूप में इसका क्रियान्वयन श्रीमती इंदिरा गाँधी के काल में हुआ। मैक्सिको के गेहूँ की प्रजाति के साथ रासायनिक खाद, कीटनाशक एवं व्यापक सिंचाई के माध्यम से हरित क्रांति को आगे बढ़ाया गया।

उपलब्धियाँ-

1. खाद्यान्नों का उत्पादन 50 मिलियन टन से बढ़कर 180 मिलियन टन हो गया।
2. ट्रैक्टर, रासायनिक खाद, कीटनाशक के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के क्रम में औद्योगीकरण को प्रोत्साहन मिला।
3. खाद्यान्न के मामले में भारत आत्मनिर्भर हुआ। अत: विदेश नीति में इसकी आवाज अधिक स्वतंत्र हुई।

सीमाएँ-

1. इसका वास्तविक लाभ भारत के सीमित क्षेत्रों को प्राप्त हुआ, यथा-पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश।
2. अब कृषि निवेश एक बड़ी चुनौती थी, इसलिए धनी एवं निर्धन किसानों के बीच विषमता बढ़ी।
3. अत्यधिक सिंचाई एवं रासायनिक खाद के कारण भूमि में लवणता बढ़ गई।
4. जैव विविधता का भी ह्रास हुआ।

■ **विज्ञान एवं तकनीकी का विकास, नवीन संस्थाओं की स्थापना:-**

- भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने तीव्र औद्योगीकरण को प्रोत्साहन देने के लिए विज्ञान एवं तकनीकी के विकास, इस्पात उद्योगों की स्थापना एवं बहुउद्देशीय सिंचाई परियोजना पर बल दिया।

विज्ञान एवं तकनीकी-

- पंडित नेहरू के लिए विज्ञान के दो पक्ष थे- प्रथम, दृष्टिकोण और दूसरा, तकनीकी। किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए यह दोनों आवश्यक हैं।
- **उद्देश्य**- जहाँ पश्चिमी देशों ने विज्ञान और तकनीकी का

उद्देश्य साम्राज्यवादी हितों का संवर्द्धन बनाया था, वहीं पंडित नेहरू ने इसका उद्देश्य राष्ट्र-निर्माण एवं गरीबी दूर करना निर्धारित किया।

संस्थागत विकास-

- C.S.I.R., पाँच I.I.T. कॉलेज की स्थापना, परमाणु ऊर्जा आयोग, परमाणु ऊर्जा विभाग का गठन किया गया। पहला परमाणु रिएक्टर बॉम्बे के ट्रॉम्बे में स्थापित हुआ। उसी प्रकार, थुम्बा में रॉकेट प्रक्षेपण केन्द्र की स्थापना की गयी। विज्ञान एवं तकनीकी के संवर्द्धन में पंडित नेहरू को अन्य व्यक्तियों का भी सहयोग मिला। ये व्यक्ति थे- होमी जहाँगीर भाभा, मेघनाथ शाहा तथा एम. विश्वैश्वरैय्या।

इस्पात उद्योगों की स्थापना का लक्ष्य-

- भारत की स्वतंत्रता के समय निजी क्षेत्र में 2 इस्पात उद्योग स्थापित थे। उनसे 1 मिलियन टन का उत्पादन होता था, परंतु नेहरू की सरकार ने 6 मिलियन टन इस्पात के उत्पादन का लक्ष्य रखा। इसके लिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना से पूर्व 3 राष्ट्रों के साथ इस्पात उद्योग स्थापित करने पर समझौता किया गया, यथा-ब्रिटेन के साथ दुर्गापुर में, जर्मनी के साथ राउरकेला में, सोवियत रूस के साथ भिलाई में।

बहुउद्देशीय परियोजना:-

- भारत में उत्तरी अमेरिका और सोवियत रूस की तरह अनेक नदियाँ थीं। अत: हमारे नीति निर्माताओं ने संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत रूस की बहुउद्देशीय परियोजनाओं के मॉडल से प्रभावित होकर भारत में भी इस परियोजना के लिए जगह बनाई। इसके तहत एक तीर से तीन शिकार करने की योजना बनाई गई, यथा-सिंचाई, बाढ़ नियंत्रण एवं विद्युत उत्पादन। इस प्रकार की पहली बड़ी परियोजना भाखड़ा नांगल परियोजना थी। यह विश्व की दूसरी बड़ी परियोजना थी। जवाहरलाल नेहरू ने यह घोषित किया कि 'बाँध भारत के मंदिर है'।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (तीव्र औद्योगीकरण तथा महालनोबिस आर्थिक मॉडल)

■ **द्वितीय पंचवर्षीय योजना:**

- द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने तीव्र औद्योगीकरण पर बल दिया और उसी योजना में यह मॉडल तैयार हुआ जिसे महालनोबिस मॉडल के नाम से जाना जाता है क्योंकि इसका मॉडल सांख्यिकी विभाग के प्रधान पी.सी. महालनोबिस ने तैयार किया था।

पी.सी महालनोबिस मॉडल की विशेषताएँ-

1. **मिश्रित अर्थव्यवस्था :** सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों की उपस्थिति।
2. **आयात प्रतिस्थापन की नीति पर बल :** अत्यधिक सीमा शुल्क लगाकर वस्तुओं के आयात को सीमित करना।
3. पूँजीगत अथवा भारी उद्योगों की स्थापना (सोवियत रूस के मॉडल पर)।
4. निवेश के लिए बचत को प्रोत्साहन तथा बचत को बढ़ाने के लिए कठोर मौद्रिक नीति।

5. रोजगार संवर्द्धन के लिए लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना पर बल दिया जाना।
6. कुछ पूँजीपतियों के हाथों में अधिक उद्योगों के संकेन्द्रण को रोकने के लिए औद्योगिक लाइसेंस नीति का आरंभ।।

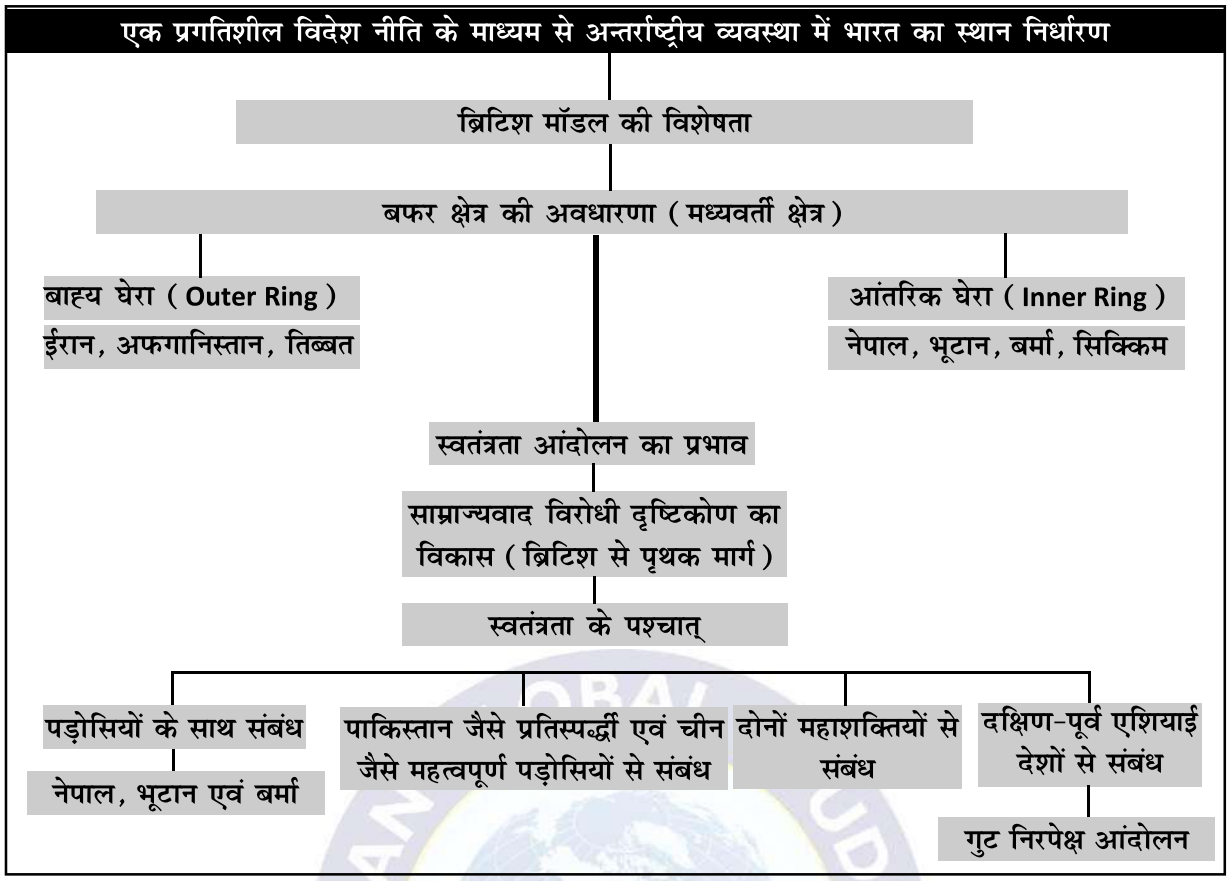

■ **ब्रिटिश मॉडल की विशेषता:-**

- भारत में अपने औपनिवेशिक हितों की रक्षा के लिए ब्रिटिश के द्वारा पहली बार बफर क्षेत्र की अवधारणा लायी गयी। बफर वह क्षेत्र था जो ब्रिटिश साम्राज्य और उसके प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्य के मध्य उपस्थित होता था। ब्रिटिश ने अपने साम्राज्य के इर्द-गिर्द दो घेरे निर्मित किये थे; यथा-बाह्य घेरा (Outer Ring) और आन्तरिक घेरा (Inner Ring)। पश्चिम से पूर्व की ओर आते हुए बाह्य घेरा था, जिसमें ईरान व अफगानिस्तान (रूस के विरूद्ध बफर क्षेत्र) तथा तिब्बत (रूस व चीन के विरूद्ध बफर क्षेत्र) शामिल थे, जबकि आंतरिक घेरे में नेपाल, भूटान, सिक्किम और बर्मा शामिल थे जोकि चीन के विरूद्ध बफर क्षेत्र का कार्य करते थे।
- ब्रिटिश ने रूसी विस्तार को नियंत्रित करने और उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा को सुनिश्चित करने हेतु भारत और अफगानिस्तान के बीच 1893 में डूरण्ड रेखा खींची। वहीं उत्तर-पूर्व में तिब्बत के साथ अपनी सीमा स्पष्ट करने के क्रम में 1914 में मैकमोहन रेखा खींची।

■ **स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की विदेश नीति**

- भारत की विदेश नीति एक लंबे अंतराल के विकास का परिणाम है। इसका आधार स्वतंत्रता आंदोलन के मध्य ही निर्मित हो गया था तथा भारत ने एक साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टि विकसित कर ली थी। 1927 में ब्रुसेल्स में आयोजित सम्मेलन की अध्यक्षता जवाहर लाल नेहरू ने की थी। विदेश नीति में भारत की एक स्वतंत्र सांस्कृतिक पहचान थी। अत: स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति ग्रहण की।
- भारत ने अपनी विदेश नीति के तहत नस्लवाद, नि:शस्त्रीकरण के मुद्दे को प्रमुखता से उठाया। भारत नि:शस्त्रीकरण को विश्व शांति की कुंजी मानता है।

■ **पड़ोसियों के साथ संबंध**

- **नेपाल :** जुलाई, 1950 में भारत ने नेपाल के साथ एक संधि की जिसके तहत भारत ने नेपाल की सम्प्रभुता, क्षेत्रीय अखंडता और स्वतंत्रता को मान्यता दी। यह भी समझौता हुआ कि किसी भी प्रकार के मनमुटाव एवं किसी भी समस्या पर हुई गलतफहमी से दोनों देश एक-दूसरे को अवगत करायेंगे।
- **भूटान :** भूटान हिमालय से घिरा और चीन की सीमा से लगा एक छोटा सा देश है तथा भारत के लिए सामरिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण है। अगस्त, 1949 में भारत तथा भूटान ने चिरस्थाई शांति और मित्रता के लिए एक संधि की। भारत ने यह वादा किया कि वह भूटान के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। दूसरी तरफ भूटान विदेशी संबंधों के लिए भारत के परामर्श पर चलने के लिए तैयार हो गया।

- **बर्मा :** यू. नू. के नेतृत्व में बर्मा के संबंध भारत से मधुर रहे, लेकिन यू. नू. को हटाकर वहाँ सैन्य सरकार स्थापित हो गई तथा 1962 के पश्चात् बर्मा की विदेश नीति अपने आप में सिमट कर रह गई, यद्यपि भारत ने बर्मा के साथ एक पड़ोसी होने के नाते मित्रता और सौहार्द्र का संबंध बनाये रखा।

■ **पाकिस्तान जैसे प्रतिस्पर्द्धी एवं चीन जैसे महत्वपूर्ण पड़ोसियों से संबंध**

- **भारत-पाकिस्तान संबंध :-** आरंभ से ही पाकिस्तान की नीति रही भारत के साथ सभी क्षेत्रों में बराबरी की कोशिश। इसलिए सभी अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर पाकिस्तान ने भारत से प्रतिस्पर्द्धा करनी शुरू कर दी। उदाहरण के लिए, पाकिस्तान ने पश्चिमी एशिया के मुस्लिम राज्यों से धार्मिक संबंध स्थापित करने शुरू किये। वह पश्चिमी गुट में भी शामिल होकर शीत युद्ध का भागीदार भी बना।
- अंततः पाकिस्तान ने अपनी भारत विरोधी नीति के तहत ही कश्मीर पर हमला कर दिया तथा उसके उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। सिंधु नदी जल विवाद दोनों देशों के मध्य एक अन्य प्रमुख समस्या रही।
- **भारत-चीन संबंध :-** 1949 में माओत्से तुंग के नेतृत्व वाली नई सरकार को सर्वप्रथम भारत ने ही मान्यता दी थी, परंतु प्रारंभ से ही चीन की इस सरकार का रुख कठोर रहा। 1950 में चीन ने बिना भारत को विश्वास में लिए तिब्बत पर अधिकार कर लिया। भारत को इससे धक्का लगा। इसके बावजूद भारत ने चीन से मित्रतापूर्ण व्यवहार बनाये रखा तथा 1954 में चीन से समझौता करके तिब्बत पर उसके अधिकारों को मान्यता दे दी। इस अवसर पर भारत ने चीन के साथ आपसी संबंधों के निर्धारण के लिए पंचशील समझौते पर हस्ताक्षर किया। इसमें किसी भी समस्या के निबटारे के लिए वार्ता करने तथा शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की बात की गई थी।
- फिर 1959 में तिब्बत के शासक दलाई लामा को भारत में राजनीतिक शरण के मुद्दे ने भारत-चीन के मध्य तनाव को जन्म दिया। आगे 1962 में चीन ने उत्तरी सीमा पर हमला कर लगभग 20000 वर्ग मील भारतीय भू-भाग पर कब्जा करने के बाद एक तरफा युद्धविराम की घोषणा कर दी।

■ **महाशक्तियों के साथ भारत का संबंध**

- **संयुक्त राज्य अमेरिका (USA) :** संयुक्त राज्य अमेरिका से भारत को राष्ट्र निर्माण में तकनीकी सहायता की अपेक्षा थी। परंतु अमेरिका ने कश्मीर के मुद्दे पर भारत विरोधी रुख दिखाया। दूसरी तरफ 1952 में उसने पाकिस्तान को कुछ सहायता भी प्रदान की। 1954 में पाकिस्तान को CENTO, SEATO जैसे सैनिक संगठनों का सदस्य बना दिया गया।
- अमेरिका ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन को एक अनैतिक आंदोलन कहा। उसी तरह 1961 में गोवा के मुद्दे पर भी अमेरिका ने भारत का विरोध कर पुर्तगीजों का समर्थन किया। निम्नलिखित कारणों से भारत एवं अमेरिका के बीच मतभेद था–
  1. शीतयुद्ध के संबंध में भारत एवं अमेरिका की सोच अलग थी। भारत ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन का समर्थन किया था।
  2. वस्तुतः अमेरिका का झुकाव ब्रिटेन की ओर था तथा ब्रिटेन का दृष्टिकोण भारत विरोधी था।
  3. भारत की विदेश नीति में उग्र साम्राज्यवाद विरोधी रुख था।
- **सोवियत रूस :** प्रारंभ में भारत एवं सोवियत रूस के बीच संबंध बहुत शिथिल रहे क्योंकि रूस को आशंका थी कि भारत अभी साम्राज्यवादी प्रभाव में है।
- परंतु स्वतंत्रता के पूर्व से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस रूस की आर्थिक सफलता का एक बड़ा प्रशंसक रहा था। आगे जब रूस ने महसूस किया कि भारत साम्राज्यवादी प्रभाव से मुक्त है, तब वह भारत की ओर झुका। 1951-52 में सोवियत रूस ने भारत में कुछ खाद्य सामग्री भेजी। कश्मीर के मुद्दे पर भी भारत को रूस का समर्थन मिला, विशेषकर स्टालिन की मृत्यु के बाद भारत एवं रूस के संबंधों में तेजी से सुधार हुआ। सोवियत रूस के नए प्रधानमंत्री ख्रुश्चेव और नेहरू के बीच प्रगाढ़ मित्रता हुई।
- रूस ने आर्थिक आयोजन तथा औद्योगीकरण को पूरा करने में भारत को मदद् करने की पेशकश की। दूसरी तरफ अमेरिका ने मदद् करने में अनिच्छा दिखायी।
- विशेषकर चीनी युद्ध के बाद अर्थात् 1963 में रूस ने भारत को सैनिक सामग्रियाँ प्रदान करना भी प्रारंभ किया।

■ **दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों से संबंध**

- **थाईलैंड :** थाईलैंड जो अतीत में कभी उपनिवेश नहीं रहा था, सितंबर, 1954 में दक्षिण-पूर्व एशियाई सहयोग संगठन (सीटो) का सदस्य बन गया। सीटो का मुख्यालय भी बैंकॉक में स्थापित हुआ। इसके बावजूद कुछ सांस्कृतिक साम्यता तथा सामान्य हितों के मद्देनजर भारत का संबंध इस देश से भी मधुर बना रहा।
- **कम्बोडिया :** प्रिंस नरोत्तम सिंहानुक की अध्यक्षता में

इस देश का संबंध भारत से मित्रतापूर्ण रहा। अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण आयोग का अध्यक्ष होने के नाते भारत ने संतोषजनक ढंग से इस देश की भारत तथा चीन से लगी सीमाओं का निर्धारण किया। 1955 के बांडुंग सम्मेलन में कम्बोडिया तथा भारत ने सक्रिय हिस्सा लिया।

- **वियतनाम (उत्तर तथा दक्षिण) :** भारत वियत मिन्ह की समाप्ति तथा इसके दो भागों में बंटने तथा इन दोनों वियतनामों के आपसी संघर्ष से काफी चिंतित था। भारत का एक परामर्शदाता के स्तर पर वियतनाम लोकतांत्रिक गणराज्य तथा वियतनाम गणराज्य दोनों से संबंध था। लेकिन दक्षिण वियतनाम जहाँ न्गो-दिन्ह-दियेम का शासन था, अमेरिका के प्रभाव में था। भारत ने क्रमशः 1957-58 में दिल्ली आने पर न्गो-दिन्ह-दियेम तथा हो-ची-मिन्ह का भरपूर स्वागत किया। हो-ची-मिन्ह तथा हिन्द-चीन में उसके स्वतंत्रता संग्राम को भारतीय जनता का पूरा समर्थन प्राप्त था।
- **फिलीपींस :** सीटो के सदस्य के रूप में फिलीपींस पश्चिमी गुट का मित्र था। भारत का इस देश से द्वैत संबंध स्थापित हुआ, परंतु इस देश से भारत के गहरे आर्थिक-राजनीतिक संबंध नहीं जुड़ पाए क्योंकि इसने पश्चिमी गुट से न केवल सैन्य संधि की, बल्कि अमेरिका को क्लार्क वायुसेना अड्डा तथा सुबिक सैन्य अड्डा भी प्रदान किया।
- **मलेशिया :** मलेशिया में मलय, चीनी और भारतीय समुदाय के लोग रहते थे तथा यहाँ लोकतांत्रिक सरकार स्थापित थी। इस देश ने दक्षिण-पूर्व एशियाई बंधुत्व को मजबूत करने की दिशा में भारत का समर्थन किया तथा अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत के साथ खड़ा नजर आया। भारत के साथ इस देश के गहरे आर्थिक संबंध स्थापित हुए। मलेशिया ने भारतीय संयुक्त उद्योगों का स्वागत किया। नेहरू तथा अब्दुल रहमान टुंकू दोनों का अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर दृष्टिकोण समान रहा था। भारत ने इण्डोनेशिया की मलेशिया को ध्वस्त करने की योजना का विरोध किया।
- **इण्डोनेशिया :** मार्च, 1951 में नेहरू तथा इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्णो ने चिरस्थाई शांति तथा अपरिवर्तनीय मित्रता को बढ़ाने के लिए मैत्री की संधि की। आरंभ में इण्डोनेशिया ने अफ्रीकी-एशियाई एकता को दृढ़ करने के भारतीय प्रयास का समर्थन किया। उसने उपनिवेशवाद समाप्त करने में भी भारत का साथ दिया तथा 1955 के बांडुंग में अफ्रीकी-एशियाई सम्मेलन के नेतृत्व में पुरानी स्थापित शक्तियों के खिलाफ नव उदित शक्तियों के संघर्ष की अवधारणा रखी। इसने उपनिवेशवाद, नव उपननिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के खिलाफ कठोर रुख अपनाया, परंतु भारत अपने विदेश संबंध में नरम रुख का पक्षधर रहा। इस तथ्य ने भारत-इण्डोनेशिया संबंध को प्रभावित किया। यही कारण है कि जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो इण्डोनेशिया चुप रहा। यहाँ तक कि सुकर्णो ने पश्चिमी गुट के विरोध में जकार्ता-पिन्डी-पेकिंग-प्योंग योंग के निर्माण का समर्थन किया।
- सितम्बर, 1964 में अयूब-सुकर्णो ने कश्मीर मामले में पाकिस्तान का समर्थन किया तथा नव उदित शक्तियों से पाकिस्तान का समर्थन करने को कहा।

■ गुटनिरपेक्ष आन्दोलन

- गुटनिरपेक्षता का साधारण अर्थ है दोनों गुटों (पूँजीवादी तथा समाजवादी) से अप्रभावित होकर महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय मसलों पर स्वतंत्र रूप से निर्णय लेना। परन्तु गुटनिरपेक्षता का अर्थ अंतर्राष्ट्रीय मामलों में तटस्थता नहीं है। गुटनिरपेक्ष देश अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रति तटस्थ नहीं रहते हैं, बल्कि एक ऐसी स्पष्ट और रचनात्मक नीति अपनाते हैं जो विश्व शांति कायम रखने में सहायक हो।
- 1955 के बांडुंग सम्मेलन के पश्चात् 'गुटनिरपेक्ष' शब्द सामने आया। आगे एशिया तथा अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों ने दोनों ध्रुवों के साथ संयुक्त हुए बिना अपने स्वतंत्र राष्ट्रीय विकास के लिए 1961 में बेलग्रेड में एक सम्मेलन का आयोजन किया। इसी के साथ गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की शरुआत हुई। मार्शल टीटो (यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति) ने इस सम्मेलन की अध्यक्षता की।
- प्रथम गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में गुटनिरपेक्ष देशों का जोर सहअस्तित्व और गुटनिरपेक्षता के आधार पर स्वतंत्र नीति अपनाने, राष्ट्रीय स्वतंत्रता का समर्थन करने, किसी बहुपक्षीय सैन्य संधियों में हिस्सा नहीं लेने, बड़ी शक्तियों को अपने यहाँ सैनिक अड्डा बनाने की अनुमति नहीं देने पर रहा।

■■■

मई, 1964 में जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के पश्चात् लाल बहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमंत्री बने। वे 1964 से 1966 तक अपने पद पर रहे। उनके काल में भारत आंतरिक स्तर पर आर्थिक संकट की समस्या से जूझ रहा था, जबकि बाह्य स्तर पर उसे अपने निकटस्थ पड़ोसी पाकिस्तान के साथ युद्ध का सामना करना पड़ा। लाल बहादुर शास्त्री अपनी आंतरिक नीति में हरित क्रांति के प्रवर्तक माने जाते हैं, जबकि बाह्य नीति में उन्हें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सैनिक दृष्टि से भारत की प्रतिष्ठा स्थापित करने का श्रेय मिलता है।

आर्थिक नीति

भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान लालबहादुर शास्त्री द्वारा दिया गया 'जय जवान, जय किसान' का नारा सैन्य सुरक्षा एवं खाद्य सुरक्षा के बीच आंतरिक संबंधों को रेखांकित करता है। वस्तुतः 1960 के दशक में भारत पीएल-480 के तहत अमेरिकी खाद्यान्न सहायता पर निर्भर था, किंतु अमेरिका के द्वारा आर्थिक सहायता रोके जाने की प्रतिक्रिया में भारत ने खाद्य सुरक्षा को पहली प्राथमिकता दी। उनका मानना था कि स्वतंत्र विदेश नीति के संचालन के लिये खाद्य सुरक्षा आवश्यक है। इसके तहत लालबहादुर शास्त्री की सरकार ने हरित क्रांति की नींव डाली, परंतु वास्तविक रूप में इसका क्रियान्वयन श्रीमती इंदिरा गाँधी के काल में हुआ क्योंकि इसका प्रभाव एक दशक बाद दिखलाई पड़ा। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के कृषि वैज्ञानिक एम. एस. स्वामीनाथन और मैक्सिको के नॉर्मन बोरलॉग के सहयोग से उच्च पैदावार वाली गेहूँ की प्रजाति के बीज को आयात किया गया। साथ ही, रासायनिक खाद, कीटनाशक एवं व्यापक सिंचाई के माध्यम से हरित क्रांति को आगे बढ़ाया गया।

हरित क्रांति के कई लाभ भारत को मिले। खाद्यान्नों का उत्पादन 50 मिलियन टन से बढ़कर 180 मिलियन टन हो गया, औद्योगीकरण को प्रोत्साहन मिला तथा खाद्यान्न के मामले में भारत आत्मनिर्भर बन गया।

विदेश नीति

नेहरू के शीघ्र बाद शास्त्री जी को विदेश नीति में दो प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ा। प्रथम- पाकिस्तान के आक्रमण का मुकाबला और दूसरा, परमाणु अप्रसार की नीति पर भारत का रूख तय करना।

भारत परमाणु अप्रसार की नीति का समर्थक था, किंतु जब तक विश्व में परमाणु हथियार नष्ट नहीं हो जाते, तब तक वह परमाणु अप्रसार का पूर्ण आश्वासन देने के लिए भी तैयार नहीं था या फिर परमाणु हथियार बनाने के अपने अधिकार को औपचारिक रूप में नहीं छोड़ना चाहता था। परंतु जब 1964 में चीन ने परमाणु परीक्षण कर लिया, तो भारतीय सरकार पर विभिन्न दलों के द्वारा परमाणु हथियार बनाने के लिए दबाव पड़ने लगा। परन्तु लाल बहादुर शास्त्री परमाणु हथियार बनाने के पक्ष में नहीं थे। बदले में वे चीन के परमाणु हथियारों के विरूद्ध भारत के पक्ष में अमेरिका की गारंटी चाहते थे। लेकिन उस समय अमेरिका क्यूबा प्रक्षेपास्त्र संकट से उत्पन्न स्थिति के कारण परमाणु हथियारों के प्रसार को रोकने के लिए संकल्पित था, इसलिए उसने स्वीकृति नहीं दी।

दूसरी तरफ पाकिस्तान ने अमेरिका से बड़ी संख्या में प्राप्त हथियारों से उत्साहित होकर 1965 में भारत पर आक्रमण कर दिया। लाल बहादुर शास्त्री ने इस युद्ध में बहुत ही व्यावहारिक बुद्धि का परिचय दिया। हालांकि, यह युद्ध अनिर्णीत रहा, किंतु इस युद्ध में भारत का पलड़ा अधिक भारी था। संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्तक्षेप के कारण यह युद्ध समाप्त हुआ। फिर जनवरी, 1966 में सोवियत रूस की मध्यस्थता में लाल बहादुर शास्त्री एवं जनरल अयूब खान के बीच ताशकंद समझौता हुआ। इस समझौते के निम्नलिखित मुख्य बिंदु थे-

1. भारत-पाकिस्तान शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे और अपने झगड़ों को शांतिपूर्ण ढंग से हल करेंगे।
2. दोनों देश 25 फरवरी, 1966 तक अपनी सेनाएं 5 अगस्त, 1965 की सीमा रेखा पर पीछे हटा लेंगे।
3. इन दोनों देशों के बीच आपसी हित के मामलों में शिखर वार्ताएँ तथा अन्य स्तरों पर वार्ताएँ जारी रहेंगी।
4. दोनों देशों के बीच राजनयिक सम्बंध फिर से स्थापित किए जाएंगे।

लाल बहादुर शास्त्री की उत्तराधिकारी इंदिरा गाँधी हुईं। सत्ता में आने के बाद उसके समक्ष एक बड़ी चुनौती थी विदेश नीति। उन्होंने भारत की विदेश नीति में यथार्थवाद को प्रोत्साहन दिया।

जिस समय उन्होंने भारत की बागडोर संभाली थी, उसी समय उन्हें पश्चिमी साम्राज्यवाद का कड़वा आस्वाद मिल गया। अमेरिका और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष दोनों का दबाव भारत पर था कि भारत अपने रूपये का अवमूल्यन करे। अतः सत्ता में आने के 4 महीने के अंदर ही उन्होंने भारतीय मुद्रा में 35.5% का अवमूल्यन कर दिया, किंतु अर्थव्यवस्था में सुधार लाने के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से भारत को सहायता नहीं मिल सकी।

इंदिरा गाँधी ने परमाणु हथियार के मुद्दे पर भारत के रूख को स्पष्ट करते हुए परमाणु अप्रसार संधि (NPT) पर हस्ताक्षर

करने से स्पष्ट मना कर दिया क्योंकि यह पक्षपातपूर्ण थी। फिर 1974 में पोखरण में भारत ने परमाणु परीक्षण किया और इसका शांतिपूर्ण उद्देश्य घोषित कर दिया।

इंदिरा गाँधी की विदेश नीति का एक पक्ष वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के संदर्भ में भारत के रूख को स्पष्ट करना भी था। संयुक्त राष्ट्र संघ की पहल पर 1972 में स्टॉकहोम में पर्यावरण के मसले पर आयोजित प्रथम विश्व सम्मेलन में इंदिरा गाँधी ने घोषित किया था कि 'गरीबी, पर्यावरण की सबसे बड़ी दुश्मन है' (Poverty is the worst polluter)।

■ **बांग्लादेश का स्वतंत्रता संग्रामः**

इंदिरा गाँधी की विदेश नीति की सबसे बड़ी चुनौती थी 1971 का भारत-पाक युद्ध तथा बांगलादेश का निर्माण। वस्तुतः 1971 में पाकिस्तान में हुए चुनाव में पूर्वी पाकिस्तान के नेता मुजीबुर्रहमान तथा उसकी पार्टी आवामी लीग को बड़ी सफलता मिली। इसके बावजूद सैनिक जनरल याहिया खान और जुल्फिकार अली भुट्टो की सरकार ने आवामी लीग को सरकार नहीं बनाने दी। इसके विरोध में आवामी लीग ने सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ दिया, तो फिर पाक की सरकार ने उसका उग्र दमन आरंभ कर दिया। मुजीबुर्रहमान को गिरफ्तार करके एक अज्ञात जगह पर ले जाया गया। पूर्वी पाकिस्तान में मुक्ति वाहनी सेना का गठन हुआ, ताकि पाक के क्रूर दमन का सामना किया जा सके।

- **भारत द्वारा बांग्लादेश के उदय में निर्णायक भूमिका निभाने के लिए जिम्मेदार परिस्थितियाँः-**

1. **पूर्वी पाकिस्तान में हो रहा नरसंहारः-** इसने भारत की पूर्वी सीमा को विचलित कर दिया था। साथ ही, वहाँ की जनता के द्वारा भारत से बार-बार सहायता की माँग करना भी भारत द्वारा मानवता के नाम पर हस्तक्षेप करने में उत्तरदायी कारक रहा था।
2. **शरणार्थियों की समस्याः-** पूर्वी पाकिस्तान की सीमा भारत से जुड़ी है तथा वहाँ पर पाक सेना के दमन तथा वहाँ की बदतर परिस्थितियाँ जनता को भारत जाने के लिए विवश करती थीं। शरणार्थियों के आने से उत्तर-पूर्व के राज्यों, पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा में असंतुलन सा आ गया था, जिसके समाधान के क्रम में इंदिरा गांधी की सरकार को इस ओर कदम बढ़ाना पड़ा।
3. **पाकिस्तानी वायुसेना का आक्रमणः-** पाकिस्तानी वायुसेना के द्वारा 2 दिसंबर, 1971 को भारतीय वायुसेना के कई हवाई अड्डों पर हमले किए गए, जिसकी वजह से भारत को युद्ध के लिए मजबूर होना पड़ा। हालांकि भारत इसके लिए पहले से ही तैयार था, तभी उसने युद्ध को दोनों सीमाओं यथा-पूर्वी एवं पश्चिमी सीमा पर आरंभ किया तथा 16 दिसंबर, 1971 को पाकिस्तानी सेना द्वारा आत्मसमर्पण के बाद एकतरफा युद्ध विराम की घोषणा भी कर दी। फिर पाक के नवनिर्वाचित प्रधानमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो और इंदिरा गाँधी के मध्य शिमला समझौत हुआ। इस समझौते में पाक के साथ रियायत बरती गई, सिवाय लद्दाख और लेह के बीच छोटे से भू-भाग को छोड़कर पाकिस्तान को सारा क्षेत्र वापस कर दिया गया तथा दोनों के बीच यह भी समझौता हुआ कि अब कश्मीर मुद्दे का समाधान संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में नहीं, अपितु द्विपक्षीय वार्ता से होगा।

■■■

Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna
KHAN SIR